तृतीय वर्ष (हिन्दी)

सत्र - VI (CBCS)

प्रश्नपत्र क्र. ४

आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास

(HISTORY OF MODERN HINDI LITERATURE)

पेपर कोड - UAHIN-601

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्रा. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
प्रभारी कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. डॉ. अजय भामरे
प्रभारी प्र-कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. प्रकाश महानवर
संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

कार्यक्रम समन्वयक : **प्रा. अनिल बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग व प्रमुख, मानव्य विद्याशाखा,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

अभ्यास समन्वयक संपादक : **डॉ. संध्या शिवराम गर्जे**
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), दूर व मुक्त अध्ययन संस्था (IDOL),
मुंबई विश्वविद्यालय, कलिना, सांताक्रुज (ई), मुंबई-४०० ०९८.

लेखक : **प्रोफेसर गौतम सोनकांबळे**
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
पाटकर वर्दे महाविद्यालय, एस. व्ही. रोड,
गोरेगांव (वेस्ट), मुंबई - ४०० ०१८.

: **डॉ. अजीत कुमार राय**
सहायक प्राध्यापक,
के. सी. महाविद्यालय, चर्चगेट,
एच. एस. एम. सी. महाविद्यालय, मुंबई -४०० ०५७.

एप्रिल २०२३, प्रथम मुद्रण

प्रकाशक
संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई - ४०००९८.

अक्षरजुळणी
मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
सांताक्रुझ, मुंबई.

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
१.	आधुनिक कालीन परिवेश	१
२.	भारतेन्दु युग	१३
३.	द्विवेदी युग	२५
४.	छायावाद	३५
५.	प्रगतिवाद	५१
६.	प्रयोगवाद	६२
७.	नई कविता	८३
८.	हिंदी उपन्यास : विकास यात्रा	९९
९.	हिंदी कहानी : विकास यात्रा	११५
१०.	आलोचना : विकास यात्रा	१२९
११.	आत्मकथा	१४५
१२.	जीवनी	१५५
१३.	संस्मरण	१६६

*****

NAME OF PROGRAM	T.Y.B.A. (C.B.C.S.) IV
NAME IF THE COURSE	T.Y.B.A. HINDI
SEMESTER	VI
PAPER NAME	HISTORY OF MODERN HINDI LITERATURE आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास
PAPER NO.	IV
COURSE CODE	UAHIN-601
LACTURE	60
CREDITS & MARKS	CREDITS-4 & MARKS-100

आधुनिक हिंदी कविता का विकास

इकाई – I (क) आधुनिक हिंदी कविता का विकास

- आधुनिक काल – हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियों का सामान्य परिचय
- भारतेन्दु युग
- द्विवेदी युग
- छायावाद

इकाई – II

- प्रगतिवाद
- प्रयोगवाद
- नई कविता

इकाई – III (ख) आधुनिक हिंदी साहित्य की गद्य विधाओं का विकास

- उपन्यास
- कहानी
- आलोचना

इकाई – IV

- आत्मकथा
- जीवनी
- संस्मरण

संदर्भ ग्रंथ सूची:

- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र (संपादक), मयूर पेपरबैक, नई दिल्ली
- हिंदी साहित्य का आदिकाल आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशन खंडेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर प्रकाशन, आगरा
- हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. माधव सोनटक्के, विकास प्रकाशन, कानपुर
- हिंदी साहित्य का इतिहास – सं. डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. विनिता कुमारी, जगतराम एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली
- हिंदी साहित्य की भूमिका, आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
- हिंदी साहित्य का इतिहास – सं. डॉ. नगेंद्र और डॉ. हरदयाल, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
- आधुनिक साहित्य – नंददुलारे वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
- आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- नई कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा, भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद
- हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

- पद्मावत में जायसी की लोकदृष्टि - डॉ. चंद्रलाल वरियलदास अच्छरा, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर
- मालिक मुहम्मद जायसी - डॉ. शिव सहाय पाठक, साहित्य भवन, इलाहाबाद
- संत साहित्य और समाज - डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र, आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली
- हिन्दी आलोचना का विकास - नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
- इतिहास और साहित्य - डॉ. डूबनाथ पांडेय, विद्यापीठ प्रकाशन, मुंबई

*****

१

आधुनिक कालीन परिवेश

इकाई की रूपरेखा

१.० इकाई का उद्देश्य

१.१ प्रस्तावना

१.२ आधुनिक काली परिवेश

- १.२.१ राजनीतिक परिवेश
- १.२.२ सामाजिक परिवेश
- १.२.३ आर्थिक परिवेश
- १.२.४ सांस्कृतिक धार्मिक परिवेश
- १.२.५ साहित्यिक परिवेश

१.३ सारांश

१.४ वैकल्पिक प्रभ

१.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१.६ बोध प्रश्न

१.७ संदर्भ ग्रंथ

१.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी निम्नलिखित बिन्दुओं से परिचित होगे।

- आधुनिक काल का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।
- आधुनिक कालीन राजनीतिक परिवेश का अध्ययन करेंगे।
- आधुनिक कालीन सामाजिक परिवेश का विस्तार से अध्ययन करेंगे।
- आधुनिक कालीन आर्थिक परिवेश का अध्ययन करेंगे।
- आधुनिक कालीन धार्मिक-सांस्कृतिक परिवेश को देखेंगे।
- आधुनिक कालीन साहित्यिक परिवेश का अध्ययन करेगे।

१.१ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में सर्वाधिक जटिल समस्या सीमाओं का निर्धारण करना रहा है। क्योंकि हर कालखंड में समय व परिस्थिति अलग-अलग रही है। यही कारण है कि हर कालखंड के साहित्य में बदलाव दिखाई देता है। यह बदलाव की प्रक्रिया प्राचीन काल से

चलती आ रही है। हमारे साहित्यिक विद्वान आ. रामचंद्र शुक्ल, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्र बन्धु विनोद, आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बाबू श्यामसुंदर दास, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार आदि विद्वानों ने हिंदी साहित्य के विविध काल क्रम को लेकर चर्चा की है। मुख्यतः आदिकाल भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल आदि कालों में विद्वानों ने इसे विभाजित किया है। इन्ही कालों में एक काल आधुनिक काल है। आधुनिक काल अर्थात आधुनिक शब्द एक विशेष कालखंड को दर्शाता है और मध्ययुगीन विचार पद्धति से एक नई विचारधारा तथा एक नई जीवन दृष्टि की ओर संकेत करता है। यहाँ पर इतिहास के साथ तत्र और श्रम, शासन व्यवस्था, कला, साहित्य एवं सौन्दर्यशास्त्र आदि के साथ बहुत सारी चीजें बदल जाती है। इस नये बोध के कारण यहाँ पुरानी रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना निर्माण होती है। यह नवीनता बाह्य विचारो से ही सबंधित न रहते हुए वैचारिक स्तर भी मनुष्य का संस्कार करती है। इसे ही साहित्य के इतिहास में 'आधुनिक काल के नाम से अभिहित किया गया है।

१.२ आधुनिक कालीन परिवेश

साहित्य पुर्णतः मानव और समाज से जुड़ा हुआ है इसीलिए किसी भी काल के अध्ययन के पूर्व उस काल के परिवेश अथवा पृष्ठभूमि का अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में कई साहित्यिक विधाओं का निर्माण हुआ । इन विधाओं के निर्माण में तत्कालीन समय की परिस्थिति का अमूल्य योगदान अनदेखा नही किया जा सकता क्योंकि समाज साहित्य की गतिविधियों का प्रारूप है और परिवेशजन्य स्थितियों का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान होता है। परिवेश को निर्माण करने में राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक सास्कृतिक और साहित्यिक परिवेश से परिपूर्ण होता है जो साहित्य के पूर्व पीठिका के स्वरूप में उपस्थित होता है। इसीलिए आधुनिक से परिचित होना बहुतआवश्यक है।

१.२.१ राजनीतिक परिवेश:

हिंदी साहित्य में आधुनिक काल को नवयुग की चेतना के विकास का युग कहा जाता है। यह काल राजनीतिक उथल -पुथल का काल रहा है। इसी काल मे राजनीतिक परिवेश से समाज में अनेक नव - नवीन विचारों का आविर्भाव होने लगा । राजनीतिक क्षेत्र में सन् १७५७ ई. में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों ने नवाब सिराजुद्दौला को हराया था । नवाब सिराजुदौला की हार के कारण संपूर्ण बंगाल पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया। उसके बाद धीरे-धीरे अंग्रेजों का प्रभाव पुरे भारत देश में बढ़ता ही चला गया। कंपनी का प्रभुत्व बढ़ने के कारण समाज के ऊपर अन्याय और अत्याचार बढ़ने लगे। सन १७६४ ई. में बक्सर के युद्ध में मुगल सम्राट शाहआलम भी अंग्रेजों के हाथों से पराजित हुआ। सन १७६५ ई. में कड़ा के युद्ध में देश के भीतर जो शक्ती बची थी वो भी समाप्त हो गयी। उसके बाद बंगाल, बिहार और उड़िसा की दीवानी अंग्रेजों के हवाले हो गई। फिर भी सपुर्ण देश में अंग्रेजो को अपना अधिपत्य स्थापित करने के लिए अन्य दो शक्तियों को पराभूत करना बाकी था। ये शक्तिया थी मराठा और सिक्ख। इसमें मराठो का प्रभाव भारत देश के व्यापक क्षेत्र पर था। परंतु सिक्ख तो पंजाब क्षेत्र तक ही सीमित थे। दोनों ही अपने पारस्परिक फूट के कारण सन् १८०३ और लासवारी सन् १८०३ के युद्ध में पराजित हो गये। इसी के साथ देश में बची हुई शक्ति कुछ ही समय के बाद समाप्त हो गई। सन् १८४९ में सिक्खो के साथ अंग्रेजों

का फिर से युद्ध हुआ और सिख फिर से पराजित हो गए। इसी तरह संपुर्ण भारत देश अंग्रेजों के अधीन हो गया। उसके बाद सन् १८५६ में अवध भी अंग्रेजों के हाथों में चला गया। इसी तरह ऐसे अनेक विजय मिलने के बाद अंग्रेज अपनी सत्ता मे मदोमन्त होने लगी। सन् १८५७ का प्रथम स्वतंत्रता युद्ध इस काल की एक महत्वपूर्ण तथा प्रमुख घटना है। कंपनी की राज्य स्थापना के समय अनेक नीतियों से देश के राजा और प्रजा असंतुष्ट होने लगे। भारत में अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह की आग भड़क उठी और एकजुट होकर सन् १८५७ में पूरे देश में व्यापक स्तर पर विद्रोह हुआ। लगभग एक वर्ष तक यह विद्रोह चलता रहा। अंग्रेज इस विद्रोह को फिर से दबाने में सफल हुए। अंग्रेजों की दमन नितियों के कारण और भारतीयों में संगठन के अभाव से यह विद्रोह असफल रहा परंतु इस क्रांति से पूरे भारत देश के लोगों में आज़ादी के प्रति जागरूकता निर्माण हुई। इसी का नतीजा अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी समाप्त कर दी जाती है और ब्रिटिश साम्राज्य का अधिपत्य पूरे भारत देश में शुरू हो जाता है। यही से भारत देश में आधुनिक काल के नवीनीकरण की शुरुवात हो जाती है।

सन् १८८५ मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो जाने से राजनैतिक घटनाओं में महत्वपूर्ण बदल होने लगे अंग्रेजों की आर्थिक नीति से भारत देश की जनता तथा ग्रामीण लोगों का शोषण होने लगा। अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक, शैक्षणिक नीतियों को अवलंबन करके देश के अंतर्गत काफी बदलाव देश में देखने को मिलता है साहित्य में भी आधुनिक साहित्य भी विभिन्न पत्रिकाओ के माध्यम से प्रकाशित होने लगा। आधुनिक साहित्य ऐसा साहित्य था जो मनुष्य के सुख-दुख के साथ पहली बार जुड़ा वह भी गद्य के माध्यम से , साहित्य में भारतेन्दु काल से आधुनिक साहित्य का उगम माना जाता है इस साहित्य में आधुनिक जीवन का आविर्भाव गद्व में दिखाई देता है। इस नये युग में अपनी अभिव्यक्ति के लिए नई भाषा की खोज करना सुधारको, विचारको तथा विद्वानों के लिए परिश्रम भरा कार्य था क्योंकि नयी व्यवस्था के लिए सिर्फ भाषा ही उपयुक्त नहीं थी। वरन इसके लिए आधुनिक काल में काव्य के माध्यम से पुरानी संवेदना की अभिव्यक्ति का भी सामने आना जरूरी था। क्योंकि नयापन प्राचीन की व्याख्या के बिना अधूरा है और उसे छोड़ देना संभव नहीं यही कारण है कि खड़ी बोली गद्य साहित्य में आधुनिक चेतना के रूप में अपनी अभिव्यक्ति करने का नया माध्यम बना।

आधुनिक कालीन राजनीतिक पृष्ठभूमि में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, भारत में विक्टोरिया शासन की प्रतिष्ठा, भारतीय कांग्रेस की स्थापना, मार्ले-मिण्टों सुधार द्वारा साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली, प्रथम महायुद्ध, रौलेट एक्ट जालियांवाल बाग हत्याकाड, गांधीजी का असहयोग आंदोलन, स्वराज्य पार्टी की स्थापना, जिन्ना का कांग्रेस से पृथक होना और मुस्लिम लोग की स्थापना करना आदि महत्वपूर्ण घटनाएँ राजनीतिक परिवेश से जुडी है और उक्त सभी घटनाओं ने राजनीतिक पृष्ठभूमि पर गहरा असर डाला है। इसी का नतीजा राजनीतिक परिवेश का आधुनिक काल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

१.२.२ सामाजिक परिवेश:

आधुनिक काल में यदि समाज पर दृष्टि डाले तो इस क्षेत्र में देश फिर से एक नया रूप धारण करने के लिए प्रयत्नशील था। अंग्रेजो ने देश के अंतर्गत नये-नये प्रयोग करके समाज को आधुनिकता की ओर प्रवृत्त होने के लिए अग्रसर कर दिया। इस मुहीम में कई विद्वान पाश्चात्य समाज और शिक्षा पद्धति ग्रहण करके इससे प्रभावित हुए। यही कारण है कि भारत में अंग्रेजी शासन की सत्ता एक महत्वपूर्ण घटना साबित होती हुई दिखाई देती है। भारत के सामाजिक जीवन में आधुनिक काल में जो नई चेतना आयी उसका प्रमुख कारण आंग्ल भारतीय संपर्क है। सामाजिक परिवेश के क्षेत्र में परम्पराओं एवं रूढ़ियों पर आंग्ल के संपर्क के माध्यम से आघात हुआ जो भारतीय दृष्टिकोण में परिवर्तन के कारण ही सम्भव था। मध्यकालीन हिन्दू-धर्म का कट्टरपन अब धीरे-धीरे दूर होने लगा। मुगलों के पतन से हिंदू की स्थिति और सुरक्षित हो गई थी। ऐसे में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने आर्य समाज के आन्दोलन के माध्यम से हिंदू समाज को जागृत करने का प्रयास किया। यदि आर्य समाज क्रांति नहीं करता तो हिंदू समाज पिछड़ जाता और दुर्बल बन जाता। इसका कारण स्पष्ट है कि भारतीय समाज ने पाश्चात्य संस्कृति का स्वीकार किया और साथ ही इसाई धर्म के प्रभाव में आकर उसे भी अपनाया। इसी को लेकर आर्य समाज ने आंदोलन को और तीव्र कर दिया। पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पुरे भारत देश के सामाजिक जीवन पर छाने लगा। अंग्रेजों की अंग्रेजी शिक्षा विशेषत विकास के लिए सहयोगी बनी हुई थी। परंतु प्राचीन वैदिक प्रेरणा को लेकर स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज के माध्यम से समाज में शांति निर्माण की सामाजिक जीवन से सबंधित रूढ़ियों का तिरस्कार होने से लोगों के जीवन के मूल्य बदल गए कही ना कही हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम उत्थान में सामाजिक जीवन से संबंधित यह द्रव का स्वरूप व्यक्त हुआ। दूसरी और विधवा विवाह के पक्ष में थे तो अन्य जगहों पर इसे 'अनहोनी' कहने वाले भी मौजूद थे। इसी प्रकार से एक और जाति- पति के विरोधी थे तो दूसरी ओर इसे जगत विदित फुलवा विचार धाराओं के बीच एक अन्य विचारधारा सामने आयी जो कल्याणकारी सामाजिक आदोलन की दाद देने के लिए हमेशा तत्पर थे।

आधुनिक काल में समाज सुधारक, विचारक तथा विद्वान अंधविश्वास, जातिभेद तथा जाति का बहिष्कार, विधवा विवाह, बाल विवाह, धार्मिक विवाद, स्त्री-शिक्षा का निषेध आदि सामाजिक दोषों से बचने के लिए दक्ष रहने लगे और इन दोषो से किस तरह से सुलझा सकते है इसके बारे में विचारों का आदान-प्रदान करके सुझावों को प्रस्तुत करते थे। आर्य समाज की विचारधारा से संबंधित व्यक्तियों ने इसका विरोध किया और प्राचीन परम्पराओं एवं रूढ़ियों को 'पोप लीला' में मानकर उसकी कटू आलोचना भी की। इसी कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप बड़ा ही धूमिल हो गया। किंतु यही विद्वान इस वाद-विवाद को छोड़कर समाज सुधार तथा देश के विकास के लिए योजनाएँ प्रस्तुत करते है तब उनकी प्रशंसा भी की जाती थी। यही परिवर्तन हमे भारतेन्दु युग में देखने को मिलता है। उसके बाद सामाजिक परिस्थितियों में बड़ी अशांति निर्माण हुई।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल अर्थात सन् १९०० से सन् १९५८ के समय में सामाजिक क्षेत्र में निर्माण हुई अशांति दूर हुई और व्यापक दृष्टिकोण के साथ जीवन के नवीन मूल्य स्थापित हो गए इस युग के विचारकों तथा विद्वानों ने समाज सुधार की आवश्यकता को

बहुत महत्व देने के साथ बड़े शान्त चित्त से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के सुझावों को प्रस्तुत किया गया। इसमें शिक्षा के साथ बाल विधवाओं के प्रति व्यापक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रहा है। इसी प्रकार अछूतों के प्रति सद्व्यवहार, हृदय की विशालता, दहेज की कुप्रथा को दूर करने का प्रयत्न समाज-सुधारकों में विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। लेकिन पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण का भी विरोध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता हुआ यहाँ पर दिखाई देता है। यहीं से एक नवीन युग के प्रवृत्ति का दर्शन होता है। वह है मानवतावादी की प्रवृत्ति देश के महान विचारको में मानवता के प्रति एक विस्तृत दृष्टिकोण बदलता हुआ दिखाई देता है। विचारधाराओं से संबंधित देश के महान विचारको ने निर्धन और शोषित समाज के प्रति संवेदना और नारी की स्थिति के प्रति करुणा व्यक्त की।

आधुनिक काल में मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर सामाजिक क्षेत्र में अधिक से अधिक विकास होने लगा और इसी विकासग्राम के कारण मानवतावादी दृष्टिकोण का महत्व बढ़ने लगा। इस समय गांधीजी की मानवतावादी भावना सामाजिक उत्थान के लिए बड़ी ही शक्तिशाली सिद्ध हुई सामाजिक क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन हुआ जैसे कि राजनीतिकता, अछुतोद्धार हिन्दु- मुस्लिम एकता, अहिंसा, सत्याग्रह, जमींदारी का विरोध धार्मिक समय आदि। धीरे -धीरे देश की जनता पश्चिमी संस्कृति का विरोध करने लगी और दूसरी और खादी को भारतीय संस्कृति की अर्थात समाजिक भावनाओं का प्रतीका बनाया गया। आर्य समाज के आधार पर वैदिक युग का पुनरुत्थान हुआ इसी वैदिक उत्थान काल में आध्यात्मिक भावनाओं का विकास हुआ और मानव सेवा के साथ ईश्वर प्राप्ति की अवधारणा भी समाज में जागृत होने लगी। दूसरी और महात्मा गांधी ने ग्रामोद्धार को महत्वपूर्ण बताकर पूँजीपती का विरोध किया। इसी मशीनीकरण से किसान के जीवन पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। यही अभिशाप को दूर करने के लिए देश में कृषक वर्ग की जागृति के प्रति महान सुधारको तथा विचारकों का अनुमोदन रहा। जाति-भेद और अछूतो के प्रति देश में अत्याचार बढ़ता ही जा रहा था। उन्हें भगवान के मन्दिरों से दूर रखने की मानसिकता समाज के अंतर्गत निर्माण होने लगी। इसी कारण आध्यामिकता के महत्व का भी आधुनिक काल में प्रतिपादन किया गया है। यही आध्यामिकता भारतीय समाज के जनभावनाओं मे प्रतिष्ठापित हो चुकी थी।

आधुनिक काल के सामाजिक परिवेश में मानवतावाद का समर्थन करने वाले महान विचारक, समाज सुधारक विश्व कवि रवींद्रनाथ टैगोर का नाम ले सकते है। इन्होने अपनी कविताओं में मानवतावाद के दर्शन को प्रस्तुत किया है। उसमे आध्यात्मिकता, मानव दुःख निवारण, विश्व-संस्कृति और जाति-भेद को मिटाने में तत्परता आदि मानवतावादी भावना कविताओं में दिखाई देती है। इसीलिए ये विश्वक के रूप में पहचाने जाते है। साथ ही ब्रह्म समाज को स्थिरता देने में उनका सबसे बड़ा योगदान रहा है। इन पर विवेकानन्द का गहरा प्रभाव था। मानवता की उपासना में विवेकानन्द का स्पष्ट रूप से प्रभाव दिखाई देता है। दुःख को मानवता की एकसूत्रता के सूत्र में स्वीकारते हुए उसे साधनात्मक रूप प्रदान किया। हृदय की करुण भावनाएँ समाज को लक्ष्य बनाकर अभिव्यक्ति की गई। मानवता का विकास यही एकमात्र सबका लक्ष्य है और विश्व शांति के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीयता की भावना विकसित होने पर ही इसे प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिक काल के युग में इसी विचारधारा को मानने वाला और प्रभावित करने वाला महान व्यक्ति है। श्री. योगिराज अरविन्द श्री. योगिराज अरविन्द मानव जाति के विकास के लिए योग साधना करने में तत्पर

थे। उन्होंने अपना जीवन सिर्फ मानव की सेवा करने में ही समर्पित किया था। मानवतावाद में ही अध्यात्मवाद की अनुभूति होती है। इसी को लेकर उनका साधनात्मक जीवन और इच्छाशक्ति की अध्यात्मवाद की अनुभूति होती है। इसी को लेकर उनका साधनात्मक जीवन और इच्छाशक्ति की दृढ़ता मानव को पूर्ण मानव बनाने में सलग्न थी।

आधुनिक युग में समाज-सुधारक तथा विचारकों के माध्यम से समाज और सामाजिक व्यवस्था में काफी हद तक परिवर्तन हुआ था। समाज के साथ-साथ साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ रहा था। सामाजिक अवस्था में भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग दोनों में सामाजिक व्यवस्था का अंतर दिखाई देता है। इसी कारण भारतेन्दु युग में नवयुग चेतना का विकास हुआ और सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए बड़ी अशांति निर्माण हुई। यह सब कुछ द्विवेदी युग में शांत हो गया। समाज सुधारक सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों का खण्डन करते हुए सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए तत्पर थे। धीरे-धीरे मानवतावादी भावनाओं का विकास हो रहा था। विधवा विवाह, एक विवाह, नरः नारी की समानता आदि समाज से संबंधित भावनाओं का विकास पश्चिमी विचाराधारा के प्रभाव आधुनिक काल में संभव हुआ।

१.२.३ आर्थिक परिवेश:

आधुनिक काल की सामाजिक परिवेश के बाद हमे आर्थिक परिवेश का अध्ययन करना आवश्यक है। यहाँ पर देख सकते है कि साहित्य बदलती हुई संवेदनाओ की अभिरुचि बनकर हमारे सामने आया, जिसका सीधा संबंध आर्थिक और चिन्तनात्मक परिवर्तन से है क्योंकि आर्थिक परिवर्तनों के साथ साहित्यिक परिवर्तन का तालमेल बैठा देना साहित्य के इतिहास की गवाही से हमे ज्ञात होता है। आधुनिक काल के पूर्व भारतीय गावों का आर्थिक ढाँचा और स्थिर रहा। गाँव में ही आर्थिक व्यवहार चल रहे थे अपनी आवश्यकताएँ अपने ही गाँव में पूरी हो रही थी। उनका बाहरी दुनिया से कोई लेना-देना नहीं था।लेकिन आधुनिक काल में यह परिस्थिति कुछ अलग थी। आधुनिक काल का समय सन् १८५० से माना जाता है। परंतु उसी समय भारत देश में अंग्रेजो ने सत्ता स्थापित की थी। इसलिए भारत देश तथा समाज की आर्थिक स्थिति का विवेचन करना आवश्यक है। देश के समाज सुधारक तथा विद्वानों को लग रहा था कि अब अंग्रेजों की सत्ता आने से देश की आर्थिक स्थिति में बदलाव आ जाएगा। परंतु यह आशा करना देश की जनता के लिए ठीक नहीं था। प्रारंभ में देश की स्थिति को देखते हुए अंग्रेजों की औद्योगिक विकास में बिलकुल रुचि नहीं थी। फिर भी देश का धन पूरी तरह विदेश में चला जा रहा था। इसी सदर्भ भारतेन्दु कहते है-

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अतिख्यारी।"

देश का धन विदेश जाने से समाज सुधारक, विद्वान तथा विचारकों के लिए यह चिन्ता का विषय बन गया। आर्थिक स्थिति के परिवर्तन के साथ अन्य ढांचे में भी बदलाव करने की जरूरत बनी। अंग्रेजी राज्य की स्थापना से देश की सामाजिक संघटना में विघटन और परिवर्तन लक्षित होने लगा अंग्रेजों के विजय की जिम्मेदारी यहाँ की स्थिर आर्थिक व्यवस्था

पर ही नहीं है ।बल्कि देश की अनेक जातियों-उपजातियों में एकता का अभाव था । इसी कारण विदेशी मुसलमानों को युद्ध में सफलता मिलती गयी और अंग्रेजो को भी विजय की सफलता मिली । आज भी देश में आधुनिकरण हो गया फिर भी स्थिति यही रही है। पुरातन आर्थिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने पर भी जाति प्रथा। शिथिल तो हो गई परंतु नष्ट नहीं हुई । आधुनिक साहित्य के भीतर इसके ऊपर करारा व्यंग्य किया गया। है। जो आर्थिक परिवर्तन अंग्रेजो के द्वारा हुआ और उसमें सफलता भी हासिल की । परंतु यही आर्थिक परिवर्तन मुसलमानों के द्वारा सम्भव नहीं था । मुसलमानों के आगमन से सामाजिक रीति-नीतियों में संकोच दिखाई दिया और कही अपनी नीतियों का विस्तार दिखाई पडा। मुसलमान सामाजिक विकास की दृष्टि से पिछड़े रहे । उनकी पूर्व की सामंतीय स्थिति शक्तिशाली थी । फिर भी देश की व्यवस्था, उन्नति, जनता तथा समाज में कोई परिवर्तन नहीं ला सके आज सामंतीय व्यवस्था से आगे बढ़कर अपनी स्वतंत्र पूजीवादी व्यवस्था को अपना चुके उनके सामाजिक विकास की दृष्टि देश के लोगों से आगे थी । इसी कारण उनके द्वारा अपनायी गई आर्थिक व्यवस्था सफल हो गई कही न कही इसमे उनका स्वार्थ छिपा था । उसी स्वार्थ को पूरा करने के लिए अंग्रेजो ने धीरे-धीरे कदम उठाना प्रारंभ किया व नए-नए तरीके अपनाने लगे ।

अंग्रेजों के द्वारा गांव के जमीन का बंदोबस्त करने के बाद उन्हें लोगों से थोड़ी-सी मालगुजारी मिलती थी। इसी में जमीदार और बड़े-बड़े जोतदारों का एक ऐसा वर्ग निर्माण हुआ जो हर समय सहायता करने में तत्पर था । अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ को साधने के लिए इस देश को लूटा और देश के भीतर स्थापित हुए व्यापार को भी नष्ट किया । सबसे पहले लॉर्ड कॉर्नवालिस ने देश के भीतर १७९३ में बंगाल, बिहार और उड़िसा में जमीदारी की प्रथा लागू की थी। उसके बाद मुंबई, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश आदि के कुछ भागों में जमींदारी की प्रथा आरंभी की गयी । यही प्रथा सन् १८२० टॉमस मुनरो ने 'इस्तमरारी बदोबस्त' लागू करके जमीन को व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में बदलना प्रारंभ। किया। इसी का नतीजा जमीदार और जोतदार दोनों ही जमीन का क्रय-विक्रय किया करते थे। इसके पहले जमींन को खरीदा नहीं जाता था और ना ही बेचा जाता था। क्योंकि उसके ऊपर व्यक्ति का अधिकार नहीं था। इसी का फायदा यह हुआ कि खेत व्यक्तिगत संपत्ति हो जाने पर खेती का व्यावसायिक हो जाना स्वाभाविक हुआ। खेतों में से उत्पादन निकालकर अब बाजारों में आने लगा। यातायात कि सुविधा बढ़ने से उत्पादन की किस्म पर प्रभाव पड़ा जिसका ज्यादा फायदा हो उसका उत्पादन अधिक किया जाने लगा। इसी का नतीजा रूपयों के चलन से व्यावसायिकता की वृद्धि हुई। परंतु किसानों की स्थिति वैसी ही रही। क्योंकि उन्हें एक तरफ से सरकारी मालगुजारी अदा करने की परेशानी रहती थी तो दूसरी तरफ से महाजन की ऋण अदायगी की। किसान बेचारा दो पाटों के बीच में पिसता जा रहा था और ऊपर से अंग्रेज भी समय-समय पर मालगुजारी का दर बढ़ा दिया करते थे। इसी कारण किसान महाजनों के चंगुल में बुरी तरह से फस जाते थे और यह सभ्यता अंग्रेजों की कूटनीति का ही नतीजा है। उसी समय अकाल भी पड़ता रहता था। परंतु इस अकाल की स्थिति में अंग्रेज अधिकारी अकाल पीड़ितों की रक्षा करने में असमर्थ हो गए कर का बोझ, अकाल और महामारी आदि की वजह से देश की जनता त्रस्त हो चुकी थी इसका उल्लेख भारतेन्दु और उनके समसामायिक । लेखकों के साहित्य में मिलता है ।

देश के विभिन्न प्रांतों में गाँवों की पंचायत होती थी। इसी पंचायतों में झगड़ों का निपटारा किया जाता था परंतु आधुनिक काल में अंग्रेजों के द्वारा नयी व्यवस्था लागु होने के कारण लोगों में एक-दूसरे से संबंध जटिल हो गए। अब पंचायातों में फैसला नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में नयी संस्थाओं का जन्म होना तय था। पंचायतो में कचहरियों को स्थापित किया गया। अंग्रेजो की नयी व्यवस्था के प्रति जनता को घोर संकट का सामना करना पड़ा। अनेक किसानों के खेत टुकड़ों-टुकड़ों में बट गए। खेतों की संख्या कम होने लगी। किसान और सरकार के बीच में मध्यस्थों की संख्या बढ़ती ही गयी। इसी कारण किसानों का उत्पादन घटता ही गया। देश के सभी किसानों के जीवन का गुजारा खेती पर निर्भर था गाँव और शहर में स्थापित किए उद्योग वे भी अंग्रेजों की कृपा से काल-कवलित हो गए अर्थव्यवस्था के स्थान पर अंग्रेजों ने नई अर्थव्यवस्था लागू की। उससे अनजाने में ही भारतीय विकास की ओर असर हुआ गाँव-गाँव की जड़ता टूटने लगी। गाँव और शहर एक-दूसरे के सम्पर्क में आने लगे।गाँव को एकसूत्रता में बाँधने वाली अर्थव्यवस्था पुरे देश में अब राष्ट्रीय एकता में आधुनिक युग में देश धार्मिक एकता में बंधा हुआ था यही देश बाद में जाति प्रथा के कारण अलग-अलग पुटों में बँटने लगा। इसी का नतीजा जाति आर्थिक गुटों में बदलने लगी। परंतु जाति प्रथा की जड़ता को तोड़ना आधुनिक काल में संभव नहीं हुआ। आर्थिक वर्गों का उदय होने से उसमें उच्च वर्ग तथा उच्च जाती के लोगों का समावेश हुआ। अंग्रेजो के द्वारा दी गई सुविधाओं का लाभ उच्च जाति के लोगों ने ही लिया। उस समय राष्ट्रीय आंदोलन भी उन्हीं के हाथ में था। राजनीतिक दलों के सुधार भी वहीं रहे ऊँच-नीच का भेदभाव होने लगा। इसी का फायदा अंग्रेजों के द्वारा उठाया गया। बेरोजगारी, महंगाई. पूंजी का कुछ लोगों के पास जमा होना और देश में फैली हुई दरिद्रता से स्थिति और बिगड़ी हुई थी। पूँजीवाद ने मानव समाज में शुद्ध आर्थिक संबंध स्थापित कर दिए थे। इसी कारण श्रमिक वर्ग की चेतना का आधार भी शुद्ध आर्थिक स्वार्थ था। धीरे-धीरे इस आधुनिक युग के विचारको का ध्यान पुरी तरह से निर्माण हुई कठोर परिस्थितियों एवं निम्न वर्ग दारुण दशा ने पूर्ण रूप अपनी ओर केन्द्रित कर लिया। वर्ग संघर्ष से व्यापक जागृति हुई और दलित वर्ग विद्रोह करने के लिए तत्पर हुआ। आर्थिक संबंधों में कल्पना और भावुकता का स्थान न्युनतम हो गया और यथार्थवाद को महत्व मिला।

१.२.४ सांस्कृतिक धार्मिक परिवेश:

आधुनिक काल की आर्थिक स्थिति के बाद सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश का विवेचन करना महत्वपूर्ण है। भारत में अंग्रेजों के आगमन से सांस्कृतिक और धर्म को लेकर देश के अनेक भागों में क्रांतिकारी के रूप में बदलाव हुए। अर्थव्यवस्था, औद्योगिकता, संचार सुविधा, प्रेस आदि को अंग्रेजों ने अपने नीजी स्वार्थ के लिए स्थापित किया। परन्तु आधुनिक युग में इससे देश का हित ही साध्य होने लगा। समाज अपने नए तरीके से खुद को ढालने लगा। परिस्थितियाँ बदलने लगी। परम्पराएँ टूटने लगी। इसके पूर्व धर्म पारलौकिक आकांक्षाओं से सबंधित था किन्तु इस आधुनिक काल के युग में धर्म इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बना हुआ है। पूँजीवादी समाज की भौतिकता के फलस्वरूप धर्म- सुधारकों को इस तरह का बाना धारण करना पड़ा था या यह कह सकते है कि इसके लिए उन्हें बाध्य होना पड़ा।

आधुनिक काल में धर्म और संस्कृति के संबंध में अंग्रेजो को ईसाई मिशनरियों के आक्रमक रूख के कारण विचारकों तथा समाज सुधारको को इस धारदार मार्ग से गुजरना आवश्यक हुआ। उन्हें अंग्रेजों के सामने अपनी संस्कृति की वकालत करनी पड़ी और दूसरी ओर देश की जनता के सामने धर्म का नया अर्थापन करना आवश्यक हुआ। यह इस आधुनिक काल में जो पहल चली थी वह किसी हद तक सिद्ध भी हुई। धार्मिकता कहीं ना कहीं समाज सुधारकों के साथ जुड़ी हुई थी। पुराणपन्थी और सुधारक दोनों ही अपने-अपने मत के प्रचारार्थ धर्मशास्त्र को शरण लिया था। इस काल में राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा को उन्मूलित करने के लिए धर्मशास्त्र का आधार लिया था। दयानंद सरस्वती ने सामाजिक सुधारों को वैधता देने के लिए भी वेदों की ओर चलने के लिए कहा था और वेदों का नया अर्थ भी प्रस्तुत किया था धीरे-धीरे इस देश में तर्क की संगति पर विशेष बल दियाली रूढ़ियों से काफी विधा हुई इसाई और धर्म सुधार सभी अतीत के गौर देश के लोगों को सम्मान का बोध होने लगा। विदेशी संस्कृति के स्वतंत्रता की माँग करने का विश्वास जनता में प्राप्त हुआ। डा. नगेन्द्र कहते है 'इनके दो और व्यवहारों में एकरूपता मिलती है । उदाहरणार्थ, टैगोर परिवार ब्राह्म था। ब्रह्म समाज में मूर्तिपूजा के लिए कोई स्थान नहीं है. पर टैगोर-परिवार खूब धूमधाम के साथ दुर्गाउत्सव मनाता था समाज में वर्ण व्यवस्था जन्मना नही कर्मणा मानी जाती है, पर आयोजियों में ऐसे बहुत कम लोग मिलेंगे, जो जाति के बाहर विवाह संबंध स्थापित करने में संकोच का अनुभव न करते रहे हो। दूसरा अंतर्विरोध यह था कि राजा राममोहन राय, रानाडे आदि बहुत से लोग ब्रिटिश राज्य को देश के लिए वरदान समझते थे, लेकिन प्रजा के दोहन, शोषण आदि का विरोध करते थे। समाज में एक और संस्कृतीकरण बढ़ रहा था तो दूसरी और लौकिकीकरण" अंग्रेजो के सामने सभी विद्वानों तथा समाज सुधारको को अपने देश की संस्कृति और धर्म का समर्थन करना पड़ा इसीलिए देश की जनता के सामने एक नए धर्म का बोध होने लगा।।

आधुनिक काल मे मानवतावाद का महत्व बढ़ने लगा था। विशेषतः धर्म को लेकर मानवतावाद को आधार बनाया गया। इसलिए इसकी मान्यता अधिक बढ़ गई। मानवतावाद ईश्वरवाद से संबंधित है, क्योंकि मानवतावाद संस्कृत के शास्त्र और मध्यकालीन संतो भक्तो की बानियों में भी मिलता है। कबीर हिन्दू-मुसलमान को लेकर यह प्रहार करते हैं कि सभी ईश्वर के संतान है। कर्मकाण्ड की निंदा वे इसलिए करते है कि वह ईश्वर प्राप्ति के बाचक है। वैसे तुलसीदास की भी स्पष्टोक्ति है नाते सबै राम का मानियता आधुनिक युग में मनुष्य-मनुष्य की समता, स्वतन्त्रता आदि को सामाजिक न्याय के आधार पर समर्थित किया गया है। मानवतावाद को लेकर गांधीजी में धार्मिक समन्वय का रूप दिखाई देता है। वे मानवतावाद को अपनाते है। गांधीजी ने कहा है "वैष्णव जन तो जेने कहिए पीर पराई जाने रे" उनके अनुसार वही वैष्णव जन है जो भगवान का भक्त है जो पराई पीर को जानता है और भगवान के विभिन्न नाम धर्मों का आधार बने हुए है।

आधुनिक युग में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज आदि ने पुराने धर्म को लेकर नये तरीके से समाज को ढालने का प्रयास किया है। इसमें ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज ने आधुनिक युग के अनुसार खुद को स्वीकार कर लिया, लेकिन आर्य समाज वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को बनाये रखना चाहता था। परंतु पुराने रीति-नीतियों में लौटना नहीं चाहता था। उस समय की परिस्थितियों की वजह से आर्य समाज पर काफी प्रभाव पड़ा। इसमें ब्रह्म

समाज', 'प्रार्थना समाज', 'रामकृष्ण मिशन', 'आर्य समाज और थियोसोफिकल सोसाइटी आदि का सहयोग प्रमुखतः देखने को मिलता है।

१.२.५ साहित्यिक परिवेश:

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का विशेष महत्व है। इसी आधुनिक काल के परिवेशों के अंतर्गत राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदि सभी परिवेश आते हैं। इसी के साथ साहित्यिक परिवेश में अन्य साहित्यों का प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। आधुनिक काल की पृष्ठभूमि में हिंदी साहित्य का श्रृंगारकाल है। इस श्रृंगारकाल में साहित्य का विकास विशेषतः राजदरबारों में तथा सौन्दर्यपूर्ण वातावरण में निर्मित हुआ था। कलाकार तथा कवियों को अपना जीवनयापन चलाने के लिए राजदरबारों का आश्रय लेना पड़ा। अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करके उनसे पुरस्कार पाना तथा सौन्दर्य-चित्रण करना उस काल के कवियों का मुख्य उद्देश्य था। राजदरबार में रहने वाले कवि श्रृंगारी काव्य करते हुए रीति और अलंकार को प्राधान्य देते थे। इसमें जो कवि दरबारी संस्कृति से दूर रहावे "प्रेम की पुकार के स्वरूप रीति से मुक्त है । इसीका नतीजा श्रृंगारकाल का साहित्य मध्यकालीन दरबारी संस्कृति का प्रतीक है। यहाँ श्रृंगार रस का प्राधान्य, अलंकरण का प्राधान्य, मुक्तक शैली, ब्रजभाषा, नारी के प्रति प्रेमिका का स्वरूप, लक्षण ग्रंथों की प्रधानता, प्रकृति के उद्दीपन का चित्रण और वीर रस की कविता आदि श्रृंगार कालीन साहित्य रहा है।

रीतिकालीन काव्य परंपरा आधुनिक परिवेश के अनुकूल खुद को स्थापित करने में पुरी तरह से असमर्थ रहा साहित्य के क्षेत्र में भाषा का परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होता है। इसी का परिणाम रीतिकालीन परंपराओं की रक्षा करते हुए साहित्य के क्षेत्र में नवीन दिशा और विधाओं का जन्म हुआ इसके के साथ-साथ काव्य के लिए खड़ीबोली गद्य का प्रयोग करना आरंभ हुआ। इसी के साथ चम्पू काव्य का भी निर्माण हुआ। उपन्यास कहानी नाटक की निबंध एवं आलोचना आदि सभी का निर्माण हुआ इस काल में नया नया साहित्य सामने आने लगा पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी यह इसी युग की देन है। देश के अनेक भागों में छापखाने खुलने लगे। साहित्य का अनेक विधाओं में विकास होने लगा। साहित्य इन बहुत-सी विधाओं का रूप विधान पाश्चात्य साहित्य के अनुकरण पर हुआ वर्ण्य सामग्री की दृष्टि से न सही पर विभिन्न काव्य रूपों के लिए जिस प्रकार से हिंदी साहित्य गुजराती और मराठी भाषाओं के साहित्य का ऋणी है उसी प्रकार से अंग्रेजी साहित्य का भी ऋणी है।

आधुनिक काल में 'भारतेंदु युग' आधुनिक हिंदी साहित्य प्रवेश द्वार के रूप में पहचाना जाता है। क्य इसी युग में काफी सीमा तक संधि-साहित्य का निर्माण हुआ है। भारतेंदु युग में हिंदी साहित्य का प्रसार काफी हुआ। द्विवेदी के युग में भाषा का परिमार्जन हुआ। उसके बाद हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में छायावाद को स्वर्ण युग' के रूप में पहचान प्राप्त हुई। छायावादी युग के साहित्य को अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्पराओं के प्रतिक्रियात्मकता एक चिरस्मरणीय महान आदोलन ही समझना चाहिए प्रगतिवादी साहित्य में विश्व-मानवता का स्वर विशेष रूप से मुखरित हुआ है। उसके बाद नई कविता, समकालीन कविता, कहानी-समांतर कहानी के दौर महत्वपूर्ण रहे है।

१.४ सारांश

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल की युग स्थितियों तथा परिवेशों का विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल में अनेक विद्वानों ने कालक्रम को लेकर चर्चा की है। परंतु इसमें रामचंद्र शुक्ल जी के कालक्रम को बहुत सारे विद्वानों ने माना है। इसी समय पर कई परिवेशों का निर्माण होना तय था। जैसे कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेशों के माध्यम से आधुनिक काल के विकास को दर्शाया है। इस विकास क्रम में अंग्रेजों की सत्ता का भारतीय लोगों को सामना करना पड़ा । अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ा । अतः हम कह सकते हैं कि साहित्य केवल हृदय की अनुभूति की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है। बल्कि विचारों और सिद्धांतो की अभिव्यक्ति की भी आवश्यकता साहित्य के अंतर्गत हुई है और इसी विचारों की सफल व्यंजना गद्द मे विकसित होती गई । यह कहीं ना कही आधुनिक काल के विकास के लिए अनिवार्य था । इसमे सुधारक, विचारक और विद्वानों तथा संगठनों के माध्यम से आधुनिक काल के विकास को दर्शाया है ।

१.५ वैकल्पिक प्रश्न

१. "अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी ।

पै धन विदेश चलि जात यहै अतिख्यारी ॥" अंग्रेजी शासन के विषय में उक्त पंक्तियाँ किस विद्वान ने कही है ?

उत्तर - 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र'

२ . आधुनिक काल में ब्रजभाषा की बदले में किस भाषा का निर्माण हुआ?

उत्तर - खड़ी बोली

३. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को क्या नाम दिया?

उत्तर - गद्द काल

४. संपूर्ण देश में अंग्रेजों को अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए किन दो शक्तियों को पराभूत करना बाकी था?

उत्तर - मराठा और सिख

५. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कब हुई?

उत्तर - सन १८८५

१.७ बोध प्रश्न

१. आधुनिक काल को स्पष्ट करते हुए उसके परिवेश पर विस्तार से प्रकाश डालिए?

१.८ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

२

भारतेन्दु युग

इकाई की रूपरेखा

२.० इकाई का उद्देश्य

२.१ प्रस्तावना

२.२ भारतेन्दु युग

२.३ भारतेन्दु युग के काव्य की प्रवृत्तियाँ

२.४ भारतेन्दु युग के कवि और उनकी रचनाएँ

२.५ भारतेन्दु युग का साहित्यिक महत्व

२.६ सारांश

२.७ बोध प्रश्न

२.८ अतिलघुत्तरीय प्रश्न / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

२.९ संदर्भ ग्रंथ

२.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम भारतेन्दु युग का विस्तार से अध्ययन करेंगे। यह इस प्रकार से होगा:

- भारतेन्दु युग की प्रवृत्तियों को जानेंगे।
- भारतेन्दु युग के कवि और उनकी रचनाओं का अध्ययन करेंगे।
- हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु काल का महत्व जान सकेंगे।

२.१ प्रस्तावना

किसी भी साहित्य का विभाजन अत्यंत कठिन है। आधुनिक हिन्दी साहित्य भी दीर्घकालीन साहित्य धारा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का सूत्रपात (आरम्भ) कब से माना जाये, यह विद्वानों में पर्याप्त मतभेद का विषय है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आधुनिक काल का आरंभ सम्वत १९०० से मानते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी १९ वीं शताब्दी के आरंभ से इसे स्वीकार करते हैं। हिन्दी साहित्य मे आधुनिक जीवन चेतना के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिशचंद्र को दिया जाता हैं, अतः कुछ इतिहासकार उनकी जन्म तिथि अर्थात सन १८५० से आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरंभ मानते है। साहित्य के क्षेत्र में नई विचारधारा का आरंभ भारतेन्दु के रचनाकार अर्थात सन १८६८ से होने के कारण कुछ विद्वान इसे ही आधुनिक काल का आरंभ वर्ष मानने का प्रस्ताव करते है।

२.२ भारतेन्दु युग (१८५०-१९००)

आधुनिक हिंदी काव्य के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और "हरिश्चंद्र पत्रिका'भी निकाली। इसके साथ ही अनेक नाटकों आदि की रचना भी की। भारतेन्दु युग में निबंध, नाटक, उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई। भारतेंदु काल को "नवजागरण काल' भी कहा गया है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के संक्राति काल के दो पक्ष हैं। इस समय के दरम्यान एक और प्राचीन परिपाटी में काव्य रचना होती रही और दूसरी ओर सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में जो सक्रियता बढ़ रही थी और परिस्थितियों के बदलाव के कारण जिन नये विचारों का प्रसार हो रहा था, उनका भी धीरे-धीरे साहित्य पर प्रभाव पड़ने लगा था। प्रारंभ के २५ वर्षों (१८४३ से १८६९) तक साहित्य पर यह प्रभाव बहुत कम पड़ा, किन्तु सन १८६८ के बाद नवजागरण के लक्षण अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे थे। विचारों में इस परिवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। इसलिए इस युग को 'भारतेन्दु युग' भी कहते हैं। भारतेन्दु के पहले ब्रजभाषा में भक्ति और श्रृंगार परक रचनाएँ होती थीं और लक्षण ग्रंथ भी लिखे जाते थे। भारतेन्दु के समय से काव्य के विषय चयन में व्यापकता और विविधता आयी। श्रृंगारिकता, रीतिबद्धता में कमी आई। राष्ट्र-प्रेम, भाषा-प्रेम और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम कवियों के मन में भी पैदा होने लगा। उनका ध्यान सामाजिक समस्याओं और उनके समाधान की ओर भी गया। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में गतिशील नवजागरण को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रोत्साहित किया। भारतेन्दु युग के कवियों की सबसे बड़ी साहित्यिक देन केवल यही मानी जा सकती है कि उन्होंने कविता को रीतिकालीन परिवेश से मुक्त करके समसामयिक जीवन से जोड़ दिया। भारतेन्दु युग में परंपरागत धार्मिकता और भक्ति भावना को अपेक्षातः गौण स्थान प्राप्त हुआ। भारतेन्दु ने काव्य क्षेत्र को आधुनिक विषयों से सम्पन्न किया और रीति की बँधी-बँधायी परिपाटी से कविता-सुन्दरी को मुक्त करके ताजी हवा में साँस लेने का सुअवसर प्रदान किया।

२.३ भारतेन्दु युग के काव्य की प्रवृत्तियाँ

भारतेंदु युग ने हिंदी कविता को रीतिकाल के श्रृंगारपूर्ण और राज-आश्रय के वातावरण से निकाल कर राष्ट्रप्रेम, समाज-सुधार आदि की स्वस्थ भावनाओं से ओत-प्रेत कर उसे सामान्य जन से जोड़ दिया। इस युग की काव्य प्रवृत्तियाँ निम्नानुसार हैं:

१. देशप्रेम की व्यंजना:

अंग्रेजों के दमन चक्र के आतंक में इस युग के कवि पहले तो विदेशी शासन का गुणगान करते नजर आते हैं:

परम दुखमय तिमिर जबै भारत में छायो,

तबहिं कृपा करि ईश ब्रिटिश सूरज प्रकटायो ॥

किंतु शीघ्र ही यह प्रवृत्ति जाती रही। मननशील कवि समाज राष्ट्र की वास्तविक पुकार को शीघ्र ही समझ गया और उसने स्वदेश प्रेम के गीत गाने प्रारम्भ कर दिए:

बहुत दिन बीते राम, प्रभु खोयो अपनो देस।

खोवत है अब बैठ के, भाषा भोजन भेष॥

- (बालमुकुन्द गुप्त)

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, ईश्वर से स्वतंत्रता की प्रार्थना आदि रूपों में भी यह भावना व्यक्त हुई। इस युग की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक राष्ट्रीयता है, जिसमें हिंदू राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है।

देश-प्रेम की भावना के कारण इन कवियों ने एक ओर तो अपने देश की अवनति का वर्णन करके आंसू बहाए तो दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की आलोचना करके देशवासियों के मन में स्वराज्य की भावना जगाई। अंग्रेजों की कूटनीति का पर्दा फाश करते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा:

सत्रु सत्रु लड़वाइ दूर रहि लखिय तमाशा।

प्रबल देखिए जाहि ताहि मिलि दीजै आसा॥

इसी प्रकार जब काबुल पर अंग्रेजों की विजय होने पर भारत में दिवाली मनाई गई तो भारतेंदु ने उसका विरोध करते हुए लिखा:

आर्य्य गनन को मिलयौ, जो अति प्रफुलित गात।

सबै कहत जै आजु क्यों, यह नहिं जान्यौ जात॥

सुजस मिलै अंग्रेज को, होय रूस की रोक।

बढ़े ब्रिटिश वाणिज्य पै, हमको केवल सोक॥

२. सामाजिक चेतना और जन-काव्य:

समाज-सुधार इस युग की कविता का प्रमुख स्वर रहा। इन्होंने किसी राजा या आश्रयदाता को संतुष्ट करने के लिए काव्य-रचना नहीं की, बल्कि अपने हृदय की प्रेरणा से एकता तक अपनी भावना पहुंचाने के लिए काव्य रचना की। ये कवि पराधीन भारत को जगाना चाहते थे, इसलिए समाज-सुधार के विभिन्न मुद्दों जैसे स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, विदेश-यात्रा का प्रचार, समाज का आर्थिक उत्थान और समाज में एक दूसरे की सहायता आदि को मुखरित किया; यथा:

निज धर्म भली विधि जानें, निज गौरव को पहिचानें।

स्त्री-गण को विद्या देवें, करि पतिब्रता यज्ञ लेवें॥

- (प्रताप नारायण मिश्र)

३. भक्ति-भावना:

इस युग के कवियों में भी भक्ति-भावना दिखाई पड़ती है, लेकिन इनकी भक्ति-भावना का लक्ष्य अवश्य बदल गया। अब वे मुक्ति के लिए नहीं, अपितु देश-कल्याण के लिए भक्ति करते दिखाई देते हैं:

कहाँ करुणानिधि केशव सोए।

जगत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए।

- (भारतेंदु हरिश्चंद्र)

४. हिंदू-संस्कृति से प्यार:

पिछले युगों की प्रतिक्रिया स्वरूप इस युग के कवि-मानस में अपनी संस्कृति के अनुराग का भाव जाग उठा। यथा:

सदा रखें दृढ़ हिय मूँह निज साँचा हिन्दूपन।

घोर विपत हूँ परे दिगे नहिं आन और मन॥

- (बालमुकुन्द गुप्त)

५. प्राचीनता और नवीनता का समन्वय:

इन कवियों ने एक ओर तो हिंदी-काव्य की पुरानी परम्परा के सुंदर रूप को अपनाया, तो दूसरी ओर नयी परम्परा की स्थापना की। इन कवियों के लिए प्राचीनता वंदनीय थी तो नवीनता अभिनंदनीय। अतः ये प्राचीनता और नवीनता का समन्वय अपनी रचनाओं में करते रहे। भारतेंदु अपनी प्रबोधिनी शीर्षक कविता में स्प्रभातीर के रूप में प्राचीन परिपाटी के अनुसार कृष्ण को जगाते हैं और नवीनता का अभिनंदन करते हुए उसमें राष्ट्रीयता का समन्वय करके कहते हैं :

डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो.

६. निज भाषा प्रेम:

इस काल के कवियों ने अंग्रेजों के प्रति विद्रोह के रूप में हिंदी-प्रचार को विशेष महत्त्व दिया और कहा:

क) निज-भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

- (भारतेंदु)

ख) जपो निरंतर एक जबान, हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान।

- (प्रताप नारायण मिश्र)

यद्यपि इस काल का अधिकतर साहित्य ब्रजभाषा में ही है, किंतु इन कवियों ने ब्रजभाषा को भी सरल और सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास किया। खड़ी बोली में भी कुछ रचनाएँ की गई, किंतु वे कथात्मकता और रुक्षता से युक्त हैं।

७. श्रृंगार और सौंदर्य वर्णन:

इस युग के कवियों ने सौंदर्य और प्रेम का वर्णन भी किया है, किंतु उसमें कहीं भी कामुकता और वासना का रंग दिखाई नहीं पड़ता। इनके प्रेम-वर्णन में सर्वत्र स्वच्छता एवं गंभीरता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के काव्य से एक उदाहरण दृष्टव्य है:

हम कौन उपाय करै इनको हरिचन्द महा हठ ठानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँकियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं॥

८. हास्य-व्यंग्य:

भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं उनके सहयोगी कवियों ने हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति भी मिलती है। उन्होंने अपने समय की विभिन्न बुराइयों पर व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। भारतेंदु की कविता से दो उदाहरण प्रस्तुत हैं:

क) भीतर भीतर सब रस चूसे
हंसि-हंसि कै तन-मन-धन मूसे
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज॥

ख) इनकी उनकी खिदमत करो,
रुपया देते-देते मरो।
तब आवें मोहिं करन खराब,
क्यों सखि सज्जन नहीं खिताब॥

९. प्रकृति-चित्रण:

इस युग के कवियों ने पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा प्रकृति के स्वतंत्र रुपों का विशेष चित्रण किया है। भारतेंदु के "गंगा-वर्णन" और "यमुना-वर्णन" इसके निदर्शन हैं। ठाकुर जगमोहन सिंह के स्वतंत्र प्रकृति के वर्णन भी उत्कृष्ट बन पड़े हैं। प्रकृति के उद्दीपन रूपों का वर्णन भी इस काल की प्रवृत्ति के रूप जीवित रहा।

१०. रस:

इस काल में श्रृंगार, वीर और करुण रसों की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति प्रबल रही, किंतु इस काल का श्रृंगार रीतिकाल के श्रृंगार जैसा नग्न श्रृंगार न होकर परिष्कृत रुचि का श्रृंगार है देश की दयनीय दशा के चित्रण में करुण रस प्रधान रहा है।

११. भाषा और काव्य-रूप:

इन कवियों ने कविता में प्रायः सरल ब्रजभाषा तथा मुक्तक शैली का ही प्रयोग अधिक किया ये कवि पद्य तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि गद्यकार भी बने। इन्होंने अपनी कलम निबंध, उपन्यास और नाटक के क्षेत्र में भी चलाई। इस काल के कवि मंडल में कवि न केवल कवि था बल्कि वह संपादक और पत्रकार भी था।

इस प्रकार भारतेंदु-युग साहित्य के नव जागरण का युग था, जिसमें शताब्दियों से सोये हुए भारत ने अपनी आँखें खोलकर अंगड़ाई ली और कविता को राजमहलों से निकालकर जनता से उसका नाता जोड़ा। उसे कृत्रिमता से मुक्त कर स्वाभाविक बनाया, श्रृंगार को परिमार्जित रूप प्रदान किया और कविता के पथ को प्रशस्त किया ।भारतेंदु और उनके सहयोगी लेखकों के साहित्य में जिन नये विषयों का समावेश हुआ, उसने आधुनिक काल की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। इस प्रकार भारतेंदु युग आधुनिक युग का प्रवेशद्वार सिद्ध होता है।

२.४ भारतेन्दु युग के कवि और उनकी रचनाएँ

भारतेंदु युग (सन १८६८ से १९०२) आधुनिक कविता का प्रवेश द्वार है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कविता को रीतिकालीन दरबारी तथा श्रृंगार-प्रधान वातावरण से निकाल कर उसका जनता से नाता जोड़ा। इस युग के कविमंडल पर भारतेंदु जी के महान व्यक्तित्व की गहरी एवं स्पष्ट छाप है। इस समय का काव्य चक्र भारतेंदु के व्यक्तित्व रूपी धुरी पर ही घुम रहा है। उन्होंने कवियों को दान व मान, दोनों तरह से प्रोत्साहन दिया। उन्होंने बहुत से कवि-समाज स्थापित किए,जिनमें उपस्थित की हुई समस्याओं की पूर्ति में बड़ी उत्कृष्ट कविता की सृष्टि हुई। भारतेंदु युग की कविता में प्राचीन और आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों का समन्वय मिलता है उसमें भक्ति-कालीन भक्ति भावना और रीतिकालीन श्रृंगार-भावना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना, सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक एवं आर्थिक शक्तियाँ, काव्य की विषय सामग्री को प्रभावित करने लगी। राजभक्ति, देश-प्रेम, सामाजिक व्यवस्था के प्रति दुख प्रकाश, सामाजिक कुरीतियों का खंडन, आर्थिक अवनति के प्रति क्षोभ, धन का विदेश की ओर प्रवाह, विधवा विवाह, विधवा-अवनति, बालविवाह, रुढ़ियों का खंडन एवं सामाजिक आन्दोलनों एवं स्त्री-स्वातंत्र्य की हिमायत आदि आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों के दर्शन हुए। हास्य और व्यंग्य तथा प्रकृति चित्रण में भी इस युग की कविता में विकास दिखाई पड़ता है। इस युग की कविता में देश और जनता की भावनाओं और समस्याओं को पहली बार अभिव्यक्ति मिली। कवियों ने सांस्कृतिक गौरव का चित्र प्रस्तुत कर लोगों में आत्म-सम्मान की भावना भरने का प्रयत्न किया ।बहुत से संस्कृत महाकाव्यों का अनुवाद हुआ इस युग में काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही यद्यपि खड़ी बोली में भी छुट-पुट प्रयत्न हुए, पर वे नगण्य ही थे।

युग के मुख्य कवि थे- भारतेंदु हरिश्चंद्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, ठाकुर जगमोहन सिंह, अम्बिकादत्त व्यास, नवनीत लाल चतुर्वेदी, बाबू राधाकृष्णदास, लाला सीताराम बी.ए., मिश्रबंधु, इस जगन्ननाथदास 'रत्नाकर', राय

देवीप्रसाद पूर्ण, वियोगी हरि, सत्यनारायण 'कविरत्न', श्रीनिवास दास, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट आदि।

१. भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचनाएँ (१८५० १८५५ ई.):

भारतेंदु के काव्य ग्रंथों की संख्या ७० है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने इनका संकलन भारतेंदु ग्रंथावली (दो खंडों में) में किया है इसमें से कुछ प्रमुख रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं : भक्त सर्वस्व, प्रेम-सरोवर, प्रेम-माधुरी, प्रेम-तरंग, सतसई-श्रृंगार, होली, वर्षा-विनोद, विजय-वल्लरी, मधुमुकुल, उत्तरार्ध, भक्तमाल, प्रेम- फुलवारी, दानलीला।

नाटक:

१. रत्नावली (१८६८), संस्कृत से अनुवाद,

२. विद्या सुन्दर (१८६८), बंगला से छायानुवाद,

३. पाखंड विडम्बन (१८७२) कृष्ण मिश्र रचित प्रबोध चन्द्रोदय के तृतीय अंक का अनुवाद,

४. धनंजय विजय (१८७३), कांचन कवि के संस्कृत नाटक का अनुवाद।,

५. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (१८७३),

६. प्रेमयोगिनी (१८७५),

७. सत्यहरिश्चन्द्र (१८७५),

८. कर्पूर मंजरी (१८७५), प्राकृत में राजशेखर रचित सट्टक का अनुवाद

९. विषस्य विषमौषधम? (१८७६),

१०. चन्द्रावली (१८७६),

११. मुद्रा राक्षस (१८७८), संस्कृत के विख्यात नाटककार विशाखदत्त के मुद्राराक्षस का अनुवाद,

१२. दुर्लभ बन्धु (१८८०) शेक्सपियरके नाटक ह्यमर्चेण्ट आफ वेनिसह्न का अनुवाद।,

१३. भारत दुर्दशा (१८८०),

१४. अंधेर नगरी (१८८४),

१५. नील देवी (१८८१), गीति रूपक,

१६. भारत जननी (१८७७),

बंगला नाटक ह्यभारतमाताह्न का भारतेन्दु जी के मित्र ने अनुवाद किया था जिसे उन्होंने संशोधित किया। चूंकि संशोधित नाटक का सम्पूर्ण रूप ही बदल गया था, इसलिए उसने

अपना नाम इसके मुख्य पृष्ठ पर देना उचित नहीं समझा। कुछ विद्वान इसे भारतेन्दु जी की मौलिक रचना मानते हैं।

१७. सती प्रताप (१८८४)।

२. बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' की मुख्य काव्य रचनाएँ (१८८५-१९२२ ई.):

जीर्ण जनपद, शुभ सम्मिलन काव्य, वर्षा बिंदुगान, संगीत सुधाकर, हार्दिक हर्षादर्शकाव्य।

(१) भारत सौभाग्य

(२) प्रयाग रामागमन, संगीत सुधासरोवर, भारत भाग्योदय काव्य।

गद्य पद्य के अलावा आपने लोकगीतात्मक कजली, होली, चैता आदि की रचना भी की है जो ठेठ भावप्रवण मीरजापुरी भाषा के अच्छे नमूने हैं और संभवतः आज तक बेजोड़ भी। कजली कादंबिनी में कजलियों का संग्रह है।

३. अम्बिका दत्त व्यास की मुख्य काव्य रचनाएँ (१९५८-१९०० ई.):

पावन पचासा, बिहारीबिहार, चांद की रात।

४. जगन्नाथदास रत्नाकर की मुख्य रचनाएँ:

हरिश्चंद्र, गंगालहरी, कलकाशी, उद्धवशतक, गंगावतरण।

५. प्रतापनारायण मिश्र (सितंबर, १८५६ - जुलाई, १८९४):

नाटक:

भारत दुर्दशा, गोसंकट, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर, जुआरी खुआरी। सांगीत शाकुंतल (अनुवाद)। मौलिक गद्य कृतियाँ : चरिताष्टक, पंचामृत, सुचाल शिक्षा, बोधोदय, शैव सर्वस्व।

अनूदित गद्य कृतियाँ:

नीतिरतावली, कथामाला, सेनवंश का इतिहास, सूबे बंगाल का भूगोल, वर्णपरिचय, शिशुविज्ञान, राजसिंह, इंदिरा, राधारानी, युगलांगुलीय।

कविता:

प्रेमपुष्पावली, मन की लहर, ब्रैडला स्वागत, दंगल खंड, कानपुर महात्म्य श्रृंगारविलास, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।

६. पंडित बालकृष्ण भट्ट (३ जून १८४४ - २० जुलाई १९१४):

'सौ अजान एक सुजान', 'रेल का विकट खेल', “नूतन ब्रह्मचारी', 'बाल विवाह' तथा “भाग्य की परख'। मौलिक नाटक दमयंती, स्वयंवर, बाल-विवाह, चंद्रसेन, रेल का विकट खेल, आदि।

७. राधाचरण गोस्वामी (२५ फरवरी १८५९ - १२ दिसम्बर १९२५):

बाल विधवा (१८८३-८४ ई.), सर्वनाश (१८८३-८४ ई.), अलकचन्द (अपूर्ण १८८४-८५ ई.) विधवा विपत्ति (१८८८ ई.) जावित्र (१८८८ ई.) आदि । वे हिन्दी में प्रथम समस्यामूलक उपन्यासकार थे, प्रेमचन्द नहीं । वीरबाला उनका ऐतिहासिक उपन्यास है । इसकी रचना १८८३-८४ ई. में उन्होंने की थी । हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास का आरम्भ उन्होंने ही किया । ऐतिहासिक उपन्यास दीप निर्वाण (१८७८-८० ई.) और सामाजिक उपन्यास विरजा (१८७८ ई.) उनके द्वारा अनूदित उपन्यास है । लघु उपन्यासों को वे नवन्यास कहते थे । कल्पलता (१८८४-८५ ई.) और सौदामिनी (१८९०-९४ ई.) उनके मौलिक सामाजिक नवन्यास हैं ।

८. ठाकुर जगमोहन सिंह (१८५७-१९९९ ई.):

(१) प्रेम-संपत्ति-लता (सं. १९४२ वि.),

(२) श्यामालता, और

(३) श्यामासरोजिनी (सं. १९४३), देवयानी, ऋतुसंहार ।

इसके अतिरिक्त इन्होंने कालिदास के मेघदूत का बड़ा ही ललित अनुवाद भी ब्रजभाषा के कबित्त सवैयों में किया है । हिंदी निबंधों के प्रथम उत्थान काल के निबंधकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है ।

९. बालमुकुंद गुप्त (१८६५ १९०७ ई.):

हरिदास, खिलौना, खेलतमाशा, स्फुट कविता, शिवशंभु का चिट्ठा, बालमुकुंद गुप्त निबंधावली ।

१०. बद्रीनारायण चौधरी "प्रेमघन' (भाद्र कृष्ण षष्ठी, संवत १९९२ - फाल्गुन शुक्ल १४, संवत १९७८):

(१) भारत सौभाग्य

(२) प्रयाग रामागमन, संगीत सुधासरोवर, भारत भाग्योदय काव्य, जिर्ण जनपद, आनंद अरुणोदय, हार्दिक हर्षदर्श, मयंक महिमा, अलौकिक लीला, बदरी, वर्षा-बिंदु, लालित्य लहरी, बृजचंद पंचकत्र ।

गद्य पद्य के अलावा आपने लोकगीतात्मक कजली, होली, चैता आदि की रचना भी की है जो ठेठ भावप्रवण मीरजापुरी भाषा के अच्छे नमूने हैं और संभवतः आज तक बेजोड़ भी । कजली कादंबिनी में कजलियों का संग्रह है ।

११. अम्बिका दत्त व्यास (१८४८ ई. - १९०० ई.):

पावस पचासा, सुकवि सतसई, हो हो होरी, बिहारी बिहार (१८९८ ई.), ललिता (नाटिका) १८८४ ई. गोसंकट (१८८७ ई.), आश्चर्य वृतान्त १८९३ ई. गद्य काव्य मीमांसा १८९७ ई.,

१२. राधा कृष्ण दास (१८६५- २ अप्रैल १९०७):

दुःखिनी बाला' (रूपक), 'निस्सहाय हिंदू' (सामाजिक उपन्यास), 'आर्यचरितामृत' (बाप्पा रावल की जीवनी),'महारानी पद्मावती' (रूपक), 'दुःखिनी बाला', 'पद्मावती' तथा 'महाराणा प्रताप' (नाटक), कंस वध, भारत बारहमासा, देश दशा।

२.५ भारतेन्दु युग के साहित्यिक महत्व

आधुनिक हिंदी काव्य के प्रथम चरण को भारतेन्दु युग की संज्ञा प्रदान की गई है। यह नामकरण सुकवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के महिमा मण्डित व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर किया गया। भारतेन्दु युग के पूर्व कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। अतिशय श्रृंगारिकता, अलंकार मोह, रीति निरुपण एवं चमत्कारप्रियता के कारण कविता जन-जीवन से कट गई थी। देशी रियासतों के संरक्षण में रहने वाले कविगण रीतीकाल के व्यामोह से न तो उबरना चाहते थे और न ही उबरने का प्रयास कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में भारतेन्दु जी का काव्य-द्षेत्र में पदार्पण वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य के लिये वरदान सिध्द हुआ। उन्होंने काव्य क्षेत्र को आधुनिक विषयों से संपन्न किया और रीति की बँधी-बँधायी परिपाटी से कविता-सुन्दरी को मुक्त करके ताजी हवा में साँस लेने का सुअवसर प्रदान किया।

भारतेन्दु युग में परंपरागत धार्मिकता और भक्ति भावना को अपेक्षतया गौण स्थान प्राप्त हुआ, फिर भी इस काल के भक्ति काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं - निर्गुण भक्ति, वैष्णव भक्ति और स्वदेशानुराग-समन्वित ईश्वर-भक्ति। इस युग में हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं की भी प्रचुर परिणाम में रचना हुई ।

काव्य-रूप की दृष्टि से भारतेन्दुयुगीन कवियों ने प्रधानतः मुक्तक काव्य की रचना की है। खडी बोली की कविताओं में व्यावहारिकता पर बल होने के फलस्वरुप ब्रजभाषा के कवि अन्य भाषाओं से शब्द चयन के विषय में क्रमशः अधिक उदार होते गए, अतः भोजपुरी, बुंदेलखंडी, अवधी आदि प्रांतीय भाषाओं के अतिरिक्त उर्दू और अंग्रेजी की प्रचलित शब्दावली को भी अपना लिया गया। दोहा, चौपाई, सोरठा, कुंडलिया, रोला, हरिगीतिका आदि मात्रिक छंद और कवित्त, सवैया, मंदाक्रांता, शिखरिणी, वंशस्थ, वसंततिलका आदि वर्णिक छंद कवि-समुदाय में विशेष प्रचलित रहे।

भारतेन्दु युग के कवियों की सबसे बडी साहित्यिक देन केवल यही मानी जा सकती है कि इन्होंने कविता को रीतिकालीन परिवेश से मुक्त करके समसामयिक जीवन से जोड दिया । भारतेन्दु आधुनिक काल के जनक थे और भारतेन्दु युग के अन्य कवि उनके प्रभामंडल में विचरण करने वाले ऐसे नक्षत्र थे जिन्होंने अपनी खुली आँखों से जन-जीवन को देखकर उसे अपनी कविता का विषय बनाया । इस काल में कविता और जीवन के निकट का संबंध स्थापित हुआ और यही इस कविता का महत्व है ।

२.६ सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हमने जाना कि भारतेन्दु युग साहित्यकारों की प्रतिभा और उनकी रचनाओं से प्रभावित रहा। छंद, भाषा और अभिव्यंजना में प्राचीनता को अपनाते हुए भाषा गत दृष्टि से ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ। इस समय खड़ी बोली का प्रयोग भी चरम सीमा पर था इस कारण साहित्य खड़ी बोली से भी ओत-प्रोत रहा। देश भक्ति, राष्ट्रीय भावना और सामाजिक मुद्दों को लेकर भारतेन्दु युग फला-फूला। इस इकाई में हमने भारतेन्दु युग की प्रवृत्तियाँ, कवि, रचनाएँ और महत्व आदि मुद्दों का अध्ययन किया है?

२.७ बोध प्रश्न

१. भारतेन्दु युग की प्रवृत्तियों को सउदाहरण समझाइए।

२. भारतेन्दु युग के प्रमुख कवि व उनकी रचनाओं का वर्णन कीजिए।

३. भारतेन्दु युग का महत्व उदाहरण सहित रेखांकित कीजिए।

२.८ अतिलघुत्तरीय प्रश्न / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. भारतेन्दु युग कब से कब तक माना जाता है?

उत्तर: १८५०-१९००

२. भारतेन्दु जी ने हिन्दी की कौनसी पत्रिकाओं का संपादन किया?

उत्तर: 'कवि वचन सुधा' और हरिश्चंद्र मैगजीन

३. भारतेन्दु काल को और किस नाम से अभीहित किया गया है?

उत्तर: 'नवजागरण काल'

४. बहुत दिन बीते राम, प्रभु खोयो अपनो देस।

खोवत है अब बैठ के, भाषा भोजन भेष॥ उक्त कविता किस कवि की है?

उत्तर: बालमुकुन्द गुप्त

५. 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।' भाषा के संबंध में यह पक्तियाँ किस कवि ने कही है?

उत्तर: 'भारतेन्दु हरीशचंद्र'

२.९ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

३

द्विवेदी युग

इकाई की रूपरेखा

३.० इकाई का उद्देश्य

३.१ प्रस्तावना

३.२ द्विवेदी युग

३.३ द्विवेदी युग के कवि और उनकी रचनाएँ

३.४ द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ

३.५ सारांश

३.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

३.७ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

३.८ संदर्भ ग्रंथ

३.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य द्विवेदी युग, द्विवेदी युग की मूल प्रवृत्तियों व द्विवेदी काल के कवि व उनकी रचनाओं का विस्तार से अध्ययन करना है।

३.१ प्रस्तावना

१९ वी सदी के उत्तरार्ध में नवचेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुआ है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ऐसे पहले साहित्यकार थे जिन्हे आचार्य की पदवी मिली। गंभीर साहित्यिक विषयों का विवेचन द्विवेदी युग में हुआ। खड़ी बोली का विकास और नये-नये विषय इस काल के साहित्य में संजोये हुए थे जिनसे साहित्य सुखद और संपन्न हुआ।

आधुनिक कविता के दूसरे पड़ाव को द्विवेदी-युग के नाम से जाना जाता है । यह आधुनिक कविता के उत्थान व विकास का काल है | द्विवेदी युग का समय सन १९०० से १९२० तक माना जाता है । बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक के पथ-प्रदर्शक, विचारक और साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस काल का नाम “द्विवेदी युग” पड़ा । इसे "जागरण सुधारकाल” भी कहा जाता है । महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के ऐसे पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, अपितु उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा । उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नजरिया अपनाया । इस समय ब्रिटिश दमन-चक्र बहुत बढ़ गया था । जनता में असंतोष और क्षोभ की भावना प्रबल थी । ब्रिटिश शासकों द्वारा

लोगों का अर्थिक- शोषण भी चरम पर था। देश के स्वाधीनता संग्राम के नेताओं द्वारा पूर्ण-स्वराज्य की मांग की जा रही थी। गोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य गंगाधर तिलक जैसे नेता देश के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कर रहे थे। इस काल के साहित्यकारों ने न सिर्फ देश की दुर्दशा का चित्रण किया, बल्कि देशवासियों को आजादी की प्राप्ति की प्रेरणा भी दी। राजनीतिक चेतना के साथ-साथ इस काल में भारत की आर्थिक चेतना भी विकसित हुई। कविता की दृष्टि से द्विवेदी युग 'इतिवृत्तात्मक युग' था। इस समय आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम आदि कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण श्रृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि थे। जगन्नाथदास 'रत्नाकर'ने इसी युग में ब्रजभाषा में सरस रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

३.२ द्विवेदी युग

सन १९०३ में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। जाति-हित की अपेक्षा देशहित को महत्त्व दिया। हिंदू होते हुए भी भारतीय कहलाने की गौरवमयी भावना को जागृत किया। अतीत के गौरव को ध्यान में रखते हुए भी वर्तमान को न भूलने की प्रेरणा दी। खड़ीबोली को शुद्ध व्याकरण-सम्मत और व्यवस्थित बना कर साहित्य के सिंहासन पर बैठने योग्य बनाया। अब वह ब्रजभाषा रानी की युवराज्ञी न रहकर स्वयं साहित्यिक जगत की साम्राज्ञी बन गई। यह कार्य द्विवेदी जी के महान व्यक्तित्व से ही सम्पन्न हुआ और इस काल का कवि-मंडल उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके बताए मार्ग पर चला। इसलिए इस युग को द्विवेदी-युग का नाम दिया गया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ। इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्णसिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है। हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास "द्विवेदी युग' से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी को कुछ विद्वान हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की 'दुलाई वाली', रामचन्द्र शुक्ल की "ग्यारह वर्ष का समय', जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा भी कुछ नाटक लिखे गए।

३.३ द्विवेदी युग के कवि और उनकी रचनाएँ

इस काल के प्रमुख कवि हैं – सर्व श्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही, 'रामनरेश त्रिपाठी, नाथूराम शर्मा 'शंकर', सत्यनारायण 'कविरत्न', गोपालशरण सिंह, मुकुटधर पाण्डेय और सियारामशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, जगन्नाथ दास रत्नाकर,लोचन प्रसाद पाण्डेय,रूपनारायण पाण्डेय

आदि।

इन कवियों की प्रमुख काव्य - रचनाएँ इस प्रकार हैं:

१. मैथिलीशरण गुप्त (१८८६-१९६५ ई.):

१. रंग में भंग

२. यशोधरा

३. साकेत

४. पंचवटी

५. द्वापर

६. जयद्रथ वध

७. जयभारत

८. गुरुकुल

९. शकुंतला

१०. चंद्रहास

११. भारत-भारती।

२. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध (१८६५-१९४१ ई.):

१. प्रियप्रवास

२. वैदेही

३. बनवास

४. चौखे-चौपदे

५. चुभते-चौपदे

६. परिजात

७. काव्योपवन

८. प्रेम-प्रपंच

९. पद्यप्रसून।

३. श्रीधर पाठक (१८५९- १९२८ ई.):

१. एकांतवासी योगी

२. उजड़ा ग्राम

३. श्रांत-पथिक ।

४. महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८ ई.):

१. काव्य-मंजूषा

२. कविता कलम

३. सुमन।

५. रामचरित उपाध्याय (१८७२-१९४३ ई.):

१. राष्ट्रभारती

२. देवदूत

३. भारतभक्ति

४. मेघदूत

५. सत्य हरिश्चंद्र

६. रामचरित

७. चिंतामणि (प्रबंध-काव्य)

६. रामनरेश त्रिपाठी (१८८९-१९६२ ई.):

१. पथिक

२. स्वप्न

३. मिलन

४. मानसी ।

७. सियाराम शरण गुप्त (१८९५-१९६३ ई.):

१. मौर्य-विजय

२. नकुल

३. अनाथ

४. आत्मोत्सर्ग

५. बापू

६. विषाद

७. आर्द्रो

८. पाथेय

९. पाथेय

१०. मृण्मयी

११. दैनिकी |

८. लोचन प्रसाद पाण्डेय:

१. मेवाड़ प्रेम ।

इन कवियों में से मैथिलीशरण गुप्त इस युग के प्रतिनिधि कवि ठहरते हैं।

३.४ द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ

पिछली पोस्ट में हमने द्विवेदी युग की प्रस्तावना को जाना। इस पोस्ट में हम द्विवेदी युग की प्रवृत्तियों पर चर्चा करेंगे:

१. राष्ट्रीय-भावना या राष्ट्र-प्रेम:

इस समय भारत की राजनीति में एक महान परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्न तेज और बलवान हो गए। भारतेंदु युग में जागृत राष्ट्रीय चेतना क्रियात्मक रूप धारण करने लगी । उसका व्यापक प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा और कवि समाज राष्ट्र-प्रेम का वैतालिक बनकर राष्ट्र-प्रेम के गीत गाने लगा।

जय जय प्यारा भारत देश

- श्रीधर पाठक

संदेश नहीं मैं यहां स्वर्ग लाया

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया

- मैथिलीशरण गुप्त

लोक-प्रचलित पौराणिक आख्यानों,इतिहास वृत्तों और देश की राजनीतिक घटनाओं में इन्होंने अपने काव्य की विषय वस्तु को सजाया । इन आख्यानों,वृत्तों और घटनाओं के चयन में उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति, देशानुराग और सत्ता के प्रति विद्रोह का स्वर मुखर है।

२. रुढ़ि-विद्रोह:

पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव एवं जन जागृति के कारण इस काल के कवि में बौद्धिक जागरण हुआ और वह सांस्कृतिक भावनाओं के मूल सिद्धांतों को प्रकाशित कर बाहरी आडम्बरों का विरोध करने लगा । स्त्री-शिक्षा, बालविवाह, अनमेल विवाह, विधवा-विवाह, दहेज-प्रथा,

अंधविश्वास आदि विषयों पर द्विवेदी युग के कवियों ने रचनाएं लिखी हैं। कवियों ने समाज की सर्वांग उन्नति को लक्ष्य बनाकर इन सभी विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।

है ईश, दयामय, इस देश को उबारो।

कुत्सित कुरीतियों के वश से इसे उबारो॥

अनय राज निर्दय समाज से होकर जूझो ।

- (मैथिलीशरण गुप्त)

इस युग के कवियों की धार्मिक चेतना भी उदार और व्यापक हुई। धार्मिक भावना केवल ईश्वर के गुण-गान तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसमें मानवता के आदर्शों की प्रतिष्ठा है। विश्व-प्रेम तथा जनसेवा की भावना इस युग की धार्मिक भावना का मुख्य अंग है। गोपाल शरण सिंह की कविता से एक उदाहरण देखिए:

जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार |

विश्वप्रेम के बंधन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार॥

३. मानवतावाद:

इस काल का कवि संकीर्णताओं से ऊपर उठ गया है। वह मानव-मानव में भ्रातृ-भाव की स्थापना करने के लिए कटिबद्ध है। अतः वह कहता है:

जैन बोद्ध पारसी यहूदी,मुसलमान सिक्ख ईसाई।

कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम हैं भाई-भाई॥

मानवता का मूल्यांकन इस युग के कवियों की प्रखर बुद्धि ने ही किया। उनकी दृष्टि में:

मैं मानवता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूं

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।

४. श्रृंगार की जगह आदर्शवादिता:

इस युग की कविता प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों से युक्त आदर्शवादी कविता है। इस युग के कवि की चेतना नैतिक आदर्शो को विशेष मान्यता दे रही थी,क्योंकि उन्होंने वीरगाथा काल तथा रीतिकाल की श्रृंगारिकता के दुष्परिणाम देखे थे। अतः वह इस प्रवृत्ति का उन्मूलन कर देश को वीर-धीर बनाना चाहता है-

रति के पति! तू प्रेतों से बढ़कर है संदेह नहीं,

जिसके सिर पर तू चढ़ता है उसको रुचता गेह नहीं।

मरघट उसको नंदन वन है, सुखद अंधेरी रात उसे

कुश कंटक हैं फूल सेज से,उत्सव है बरसात उसे॥

- (रामचरित उपाध्याय)

इस काल का कवि सौंदर्य के प्रति उतना आकृष्ट नहीं,जितना कि वह शिव की ओर आकृष्ट है।

५. नारी का उत्थान:

इस काल के कवियों ने नारी के महत्त्व को समझा,उस पर होने वाले अत्याचारों का विरोध किया और उसको जागृत करते हुए कहा-

आर्य जगत में पुन: जननि निज जीवन ज्योति जगाओ।

- (श्रीधर पाठक)

अब नारी भी लोक-हित की आराधना करने वाली बन गई। अतः प्रिय-प्रवास की राधा कहती है:

प्यारे जीवें जग-हित करें, गेह चाहे न आवै।

- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔद्य

जहां कवियों ने नारी के दयनीय रूप देखें,वहां उसके दुःख पर आंसू बहाते हुए कहा:

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आंखों में पानी॥

- (यशोधरा में मैथिलीशरण गुप्त)

६. प्रकृति-चित्रण:

द्विवेदी युग के कवि का ध्यान प्रकृति के यथा-तथ्य चित्रण की ओर गया। प्रकृति चित्रण कवि के प्रकृति-प्रेम स्वरूप विविध रूपों में प्रकट हुआ। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, हरिऔद्य तथा मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में प्रकृति आलंबन, मानवीकरण तथा उद्दीपन आदि रूपों में चित्रित किया गया है। श्रीधर पाठक ने काश्मीर की सुषमा का रमणीय वर्णन करते हुए लिखा:

प्रकृति जहां एकांत बैठि निज रूप संवारति।

पल-पल पलटति भेष छनिक छवि छिन-छिन धारति॥

आचार्य शुक्ल प्रकृति के विभिन्न अंगों के साथ मानवीय संबंध स्थापित करते हैं। रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक', 'स्वप्न' जैसे खंडकाव्यों में, हरिऔद्य के 'प्रियप्रवास' में, मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत', 'पंचवटी' आदि काव्यों में प्रकृति के विविध चित्र हैं। उपाध्याय जी व गुप्त जी आदि कवियों की काव्य-भूमि ही प्रकृति का स्वच्छंद प्रांगण है:

सुंदर सर है लहर मनोरथ सी उठ मिट जाती।

तट पर है कदम्ब की विस्तृत छाया सुखद सुहाती॥

७. इतिवृत्तात्मकता:

इतिवृत्तात्मकता का अर्थ है - वस्तु वर्णन या आख्यान की प्रधानता । आदर्शवाद और बौद्धिकता की प्रधानता के कारण द्विवेदी युग के कवियों ने वर्णन-प्रधान इतिवृत्तात्मकता को अपनाया इस युग के अधिकांश कवि एक ओर तो प्राचीन ग्रंथों की महिमा, प्रेम की महिमा, मेघ के गुण-दोष, कुनैन, मच्छर,खटमल आदि शीर्षकों से वस्तु-वर्णन-प्रधान कविताओं को रच रहे थे और दूसरी ओर प्राचीन आख्यानों को नवीनता का पुट देकर उपस्थित किया जा रहा था; यद्यपि इस प्रकार की कुछ कविताएं मनोहारी हैं,हास्य-विनोदात्मक हैं, किंतु अधिकतर निरस हैं । इतिवृत्तात्मकता के कारण इस काव्य में नीरसता और शुष्कता है, कल्पना और अनुभूति की गहराई कम है, रसात्मकता एवं कोमल कांत पदावली का उसमें अभाव है।

८. स्वच्छंदतावाद:

प्राचीन रुढ़ियों को तोड़कर नई शैलियों में नए काव्य विषयों को लेकर साहित्य-सर्जना की प्रवृत्ति को स्वच्छंदता कहा जाता है । हिंदी में स्वच्छंदतावादी काव्य का पूर्ण विकास छायावादी युग में हुआ । परंतु द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियां देखी जा सकती हैं। प्रकृति-चित्रण और नए विषयों को अपनाने के कारण रामचंद्र शुक्ल ने श्रीधर पाठक को हिंदी का पहला स्वच्छंदतावादी कवि कहा है।

९. भाषा संस्कार:

द्विवेदी जी के प्रयासों के परिणामस्वरूप इस समय में साहित्य के समस्त रूपों में खड़ी बोली का एकछत्र राज्य स्थापित हो गया। उसका रूखापन जाता रहा, उसमें एकरूपता स्थापित हो गई और वह अपने शुद्ध रूप में प्रकट हुई। श्री हरदेव बाहरी के शब्दों में - 'मैथिलीशरण गुप्त ने भाषा को लाक्षणिकता प्रदान की, ठाकुर गोपालशरण सिंह ने प्रवाह दिया, स्नेही ने उसे प्रभावशालिनी बनाया और रूपनारायण पांडेय,मनन द्विवेदी, रामचरित उपाध्याय आदि ने उसका परिष्कार तथा प्रचार करके आधुनिक हिंदी काव्य को सुदृढ़ किया।'

१०. काव्य रूप में विविधता:

इस युग में प्रबंध और मुक्तक, दोनों ही रूपों में काव्य रचनाएं हुई। प्रबंध रचना के क्षेत्र में इस युग के कवियों को अति सफलता मिली । 'प्रिय-प्रवास', 'वेदही-बनवास', 'साकेत', तथा 'राचरित-चिंतामणि' इस काल के प्रसिद्ध महाकाव्य हैं । 'जयद्रथ-वध', 'पंचवटी', 'पथिक', 'स्वपन' आदि प्रमुख खंडकाव्य हैं। मुक्तक और गीत भी लिखे गए, परंतु अधिक सफलता प्रबंध काव्य प्रणयन में ही मिली।

११. विविध छंद:

इस काल-खंड में विविध छंदों को अपनाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है,फिर भी पुराने छंदों और मात्रा-छंदों की ही प्रधानता रही। श्रीधर पाठक ने कुछ नए छंदों तथा मुक्त-छंदों का भी प्रयोग किया।

१२. शैली:

शैली की दृष्टि से इस युग का काव्य विविधमुखी है। गोपालशरण सिंह आदि पुराने ढ़ंग के और नई शैली के मुक्तक लिख रहे थे तथा उपाध्याय एवं गुप्त जी प्रबंध शैली को महत्व दे रहे थे। गीति-शैली के काव्यों का सृजन भी होने लगा था।काव्य के कलेबर के निर्माण में स्वच्छंदता से काम लिया गया।

१३. अनुवाद कार्य:

इन सबके अतिरिक्त अंग्रेजी और बंगला से अनुवाद करने की प्रवृत्ति, भक्तिवाद की ओर झुकाव आदि अन्य नाना गौण प्रवृत्तियां भी इसी काल में देखी जाने लगी थी।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि द्विवेदी युग आधुनिक काव्य धारा का रमणीय तट है,जो उसे निश्चित और समुचित दिशा की ओर ले जा रहा है। उस समय प्रयोगात्मक काव्य जैसे भावी युगों के काव्य को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ है।

३.५ सारांश

इस प्रकार हम कह सकते है कि द्विवेदी युग नव विचार के साथ उदित हुआ। द्विवेदी युग के अंतिम वर्षों में छायावाद, रहस्यवाद और प्रगतिवाद की प्रवृत्तियों से संबंधित रचनाएँ हमे देखने को मिलती है। द्विवेदी युग की कविताएँ समाज के लिए प्रेरणादायी तो थी ही साहित्य के लिए अनुपम रूप देने वाली थी। जो आज की परिस्थिति और समय के लिए भी प्रासंगिक है।

३.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. द्विवेदी युग की प्रवृत्तियों को रेखांकित कीजिए।

२. द्विवेदी युग के कवि और उनकी रचनाओं का उदाहरण सहित विवरण दीजिए।

३. द्विवेदी युगीन काव्य समाज सुधार का काव्य है विस्तार से समझाइए।

३.७ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. द्विवेदी युग की कालावधि कब से कब तक मानी गयी है?

उत्तर: सन् १९०० से १९२० तक

२. 'सरस्वती पत्रिका' का कार्यभार द्विवेदीजी ने कब संभाला?

उत्तर: सन् १९०३

३. हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास किस युग से माना जाता है?

उत्तर: द्विवेदी युग

४. ‘आर्य जगत में पुनः जननि निज जीवन ज्योति जगाओ ।’ नारी उत्थान के संबंध में उक्त पंक्तियाँ किस कवि की है/

उत्तर: श्री धर पाठक

५. ‘रंग में भंग’ काव्य संग्रह के रचयिता है?

उत्तर: मैथिली शरण गुप्त

३.८ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

४

छायावाद

इकाई की रूपरेखा

४.० इकाई का उद्देश्य
४.१ प्रस्तावना
४.२ छायावाद
४.३ छायावाद के प्रमुख कवि व रचनाएँ
४.४ छायावाद की प्रवृत्तियाँ
४.५ सारांश
४.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न
४.७ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न
४.८ संदर्भ ग्रंथ

४.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई में छायावाद पर चर्चा की जायगी। छायावाद का अर्थ, परिभाषा छायावाद के कवि व उनकी रचनाओं और छायावाद की प्रवृत्तियों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

४.१ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल नयी सोच, नये दृष्टिकोण के उत्कर्ष से हमारे सामने उदित हुआ है। यह परिवर्तन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से समाज, साहित्य, पर्यावरण और प्रवृति वर्णन के संदर्भ में रहा। छायावाद युग ने साहित्य को नया मंजर दिखाया। सुख की अप्रत्यक्ष सोंधी अनुभूति दी। इस काल की रचनाएँ सीधे व्यक्ति के आन्तरिक सौंदर्य से जुड़ी जो जीवन में गहरी संवेदना का प्रसार करने वाली है।

४.२ छायावाद

द्विवेदी युग के पश्चात हिंदी साहित्य में जो कविता-धारा प्रवाहित हुई, वह छायावादी कविता के नाम से प्रसिद्ध हुई । छायावाद की कालावधि सन १९४७ से १९३६ तक मानी गई है। वस्तुतः इस कालावधि में छायावाद इतनी प्रमुख प्रवृत्ति रही है कि सभी कवि इससे प्रभावित हुए और इसके नाम पर ही इस युग को छायावादी युग कहा जाने लगा। छायावाद के स्वरूप को समझने के लिए उस पृष्ठभूमि को समझ लेना आवश्यक है, जिसने उसे जन्म दिया। साहित्य के क्षेत्र में प्रायः एक नियम देखा जाता है कि पूर्ववर्ती युग के अभावों को दूर करने के लिए परवर्ती युग का जन्म होता है। छायावाद के मूल में भी यही नियम काम कर रहा है। इससे पूर्व द्विवेदी युग में हिंदी कविता कोरी उपदेश मात्र बन गई थी। उसमें समाज

सुधार की चर्चा व्यापक रूप से की जाती थी और कुछ आख्यानों का वर्णन किया जाता था। उपदेशात्मकता और नैतिकता की प्रधानता के कारण कविता में नीरसता आ गई। कवि का हृदय उस निरसता से ऊब गया और कविता में सरसता लाने के लिए वह छटपटा उठा। इसके लिए उसने प्रकृति को माध्यम बनाया। प्रकृति के माध्यम से जब मानव-भावनाओं का चित्रण होने लगा,तभी छायावाद का जन्म हुआ और कविता इतिवृत्तात्मकता को छोड़कर कल्पना लोक में विचरण करने लगी। छायावाद की परिभाषा छायावाद अपने युग की अत्यंत व्यापक प्रवृत्ति रही है। फिर भी यह देख कर आश्चर्य होता है कि उसकी परिभाषा के संबंध में विचारकों और समालोचकों में एकमत नहीं हो सका। विभिन्न विद्वानों ने छायावाद की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं की हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है- 'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहां उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति- विशेष के व्यापक अर्थ में है।... “छायावाद एक शैली विशेष है, जो लाक्षणिक प्रयोगों, अप्रस्तुत विधानों और अमूर्त उपमानों को लेकर चलती है। "दूसरे अर्थ में उन्होंने छायावाद को चित्र-भाषा-शैली कहा है।

महादेवी वर्मा ने छायावाद का मूल सर्वात्मवाद दर्शन में माना है। उन्होंने लिखा है कि '“छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है, जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है।' ... अन्यत्र वे लिखती हैं कि “'छायावाद प्रकृति के बीच जीवन का उद्-गीथ है।"

डॉ. राम कुमार वर्मा ने छायावाद और रहस्यवाद में कोई अंतर नहीं माना है। छायावाद के विषय में उनके शब्द हैं- “आत्मा और परमात्मा का गुप्त वाग्विलास रहस्यवाद है और वही छायावाद है।'” एक अन्य स्थल पर वे लिखते हैं - “छायावाद या रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक सत्ता से अपना शांत और निश्चल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध इतना बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अंतर ही नहीं रह जाता है।... परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा पर। यही छायावाद है।"

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का मंतव्य है: “मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। छायावाद की व्यक्तिगत विशेषता दो रूपों में दीख पड़ती है- एक सूक्ष्म और काल्पनिक अनुभूति के प्रकाश में और दूसरी लाक्षणिक और प्रतीकात्मक शब्दों के प्रयोग में। और इस आधार पर तो यह कहा ही जा सकता है कि छायावाद आधुनिक हिंदी-कविता की वह शैली है जिसमें सूक्ष्म और काल्पनिक सहानुभूति को लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक ढ़ंग पर प्रकाशित करते हैं।"

शांतिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद और रहस्यवाद में गहरा संबंध स्थापित करते हुए कहा है: “जिस प्रकार मैटर ऑफ फैक्ट (इतिवृत्तात्मक) के आगे की चीज छायावाद है उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज रहस्यवाद है।"

गंगाप्रसाद पांडेय ने छायावाद पर इस प्रकार प्रकाश डाला है: "छायावाद नाम से ही उसकी छायात्मकता स्पष्ट है। विश्व की किसी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण छाया की झांकी पाना अथवा उसका आरोप करना ही छायावाद है। ... जिस प्रकार छाया स्थूल वस्तुवाद के आगे की चीज है, उसी प्रकार रहस्यवाद छायावाद के आगे की चीज है।"

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद को अपने ढ़ंग से परिभाषित करते हुए कहा है: "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया ।

डॉ. देवराज "छायावाद को आधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह स्वीकार करते हैं।

डॉ. नगेन्द्र छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह मानते हैं और साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है। उन्होंने इसकी मूल प्रवृत्ति के विषय में लिखा है कि वास्तव पर अंतमुर्खी दृष्टि डालते हुए, उसको वायवी अथवा अतीन्द्रीय रूप देने की प्रवृत्ति ही मूल वृत्ति है। उनके विचार से, युग की उद्बुत चेतना ने बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर जो आत्मबद्ध अंतमुर्खी साधना आरंभ की वह काव्य में छायावाद के रूप में अभिव्यक्त हुई। वे छायावाद को अतृप्त वासना और मानसिक कुंठाओं का परिणाम स्वीकार करते हैं।"

डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में विश्वसनीय तौर पर दिखाया कि छायावाद वस्तुतः कई काव्य प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह उस "राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति' है जो एक ओर पुरानी रुढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।

उपर्युक्त परिभाषाओं से छायावाद की अनेक परिभाषाएं स्पष्ट होती हैं, किंतु एक सर्वसम्मत परिभाषा नहीं बन सकी। उक्तलिखित परिभाषाओं से यह भी व्यक्त होता है कि छायावाद स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) के काफी समीप है।

उपर्युक्त परिभाषाओं को समन्वित करते हुए हम कह सकते हैं कि "संसार के प्रत्येक पदार्थ में आत्मा के दर्शन करके तथा प्रत्येक प्राण में एक ही आत्मा की अनुभूति करके इस दर्शन और अनुभूति को लाक्षणिक और प्रतीक शैली द्वारा व्यक्त करना ही छायावाद है।"

आधुनिक काल के छायावाद का निर्माण भारतीय और यूरोपीय भावनाओं के मेल से हुआ है, क्योंकि उसमें एक ओर तो सर्वत्र एक ही आत्मा के दर्शन की भारतीय भावना है और दूसरी ओर उस बाहरी स्थूल जगत के प्रति विद्रोह है, जो पश्चिमी विज्ञान की प्रगति के कारण अशांत एवं दुःखी है।

४.३ छायावाद के प्रमुख कवि व रचनाएँ

सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा महादेवी वर्मा। अन्य कवियों में डॉ.रामकुमार वर्मा, हरिकृष्ण 'प्रेमी', जानकी वल्लभ शास्त्री, भगवतीचरण

वर्मा, उदयशंकर भट्ट, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के नाम उल्लेखनीय हैं | इनकी रचनाएं निम्नानुसार हैं:

१. जय शंकर प्रसाद (१८८९-१९३६ ई.) के काव्य संग्रह:

१. चित्राधार (ब्रज भाषा में रचित कविताएं);

२. कानन-कुसुम;

३. महाराणा का महत्त्व;

४. करुणालय;

५. झरना;

६. आंसू;

७. लहर;

८. कामायनी।

२. सुमित्रानंदन पंत (1900-1977ई.) के काव्य संग्रह:

१. वीणा;

२. ग्रन्थि;

३. पल्लव;

४. गुंजन;

५. युगान्त;

६. युगवाणी;

७. ग्राम्या;

८. स्वर्ण-किरण;

९. स्वर्ण-धूलि;

१०. युगान्तर;

११. उत्तरा ;

१२. रजत-शिखर;

१३. शिल्पी;

१४. प्रतिमा;

१५. सौवर्ण;

१६. वाणी ;

१७. चिदंबर;

१८. रश्मिबंध;

१९. कला और बूढ़ा चांद;

२०. अभिषेकित;

२१. हरीश सुरी सुनहरी टेर;

२२. लोकायतन;

२३. किरण वीणा।

३. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'(१८९८-१९६४ ई.) के काव्य-संग्रह:

१. अनामिका;

२. परिमल;

३. गीतिका ;

४. तुलसीदास;

५. आराधना;

६. कुकुरमुत्ता;

७. अणिमा;

८. नए पत्ते;

९. बेला;

१०. अर्चना ।

४. महादेवी वर्मा (१९०७-१९८८ ई.) की काव्य रचनाएं:

१. रश्मि;

२. निहार;

३. नीरजा;

४. सांध्यगीत;

५. दीपशिखा;

६. यामा ।

५. डॉ.रामकुमार वर्मा (१९०५-)की काव्य रचनाएं:

१. अंजलि;

२. रूपराशि;

३. चितौड़ की चिता;

४. चंद्रकिरण;

५. अभिशाप;

६. निशीथ;

७. चित्ररेखा;

८. वीर हमीर;

९. एकलव्य।

६. हरिकृष्ण'प्रेमी' (१९०८-) की काव्य रचनाएं:

१. आखों में;

२. अनंत के पथ पर;

३. रूपदर्शन;

४. जादूगरनी;

५. अग्निगान;

६. स्वर्णविहान।

४.४ छायावाद की प्रवृत्तियाँ

छायावादी काव्य का विश्लेषण करने पर हम उसमें निम्नांकित प्रवृत्तियां पाते हैं:

१. वैयक्तिकता:

छायावादी काव्य में वैयक्तिकता का प्राधान्य है। कविता वैयक्तिक चिंतन और अनुभूति की परिधि में सीमित होने के कारण अंतमुर्खी हो गई, कवि के अहम भाव में निबद्ध हो गई। कवियों ने काव्य में अपने सुख-दुःख, उतार-चढ़ाव, आशा-निराशा की अभिव्यक्ति खुल कर की। उसने समग्र वस्तुजगत को अपनी भावनाओं में रंग कर देखा। जयशंकर प्रसाद का 'आंसू' तथा सुमित्रा नंदन पंत के 'उच्छवास' और 'आंसू' व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति के सुंदर

निदर्शन हैं। इसके व्यक्तिवाद के स्व में सर्व सन्निहित है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान इस संबंध में अत्यंत मार्मिक शब्दों में लिखते हैं -"कवि का मैं प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का मैं था, इस कारण कवि ने विषयगत दृष्टि से अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत रचना शैली अपनाई, उसके संकेत और प्रतीक हर व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके। "छायावादी कवियों की भावनाएं यदि उनके विशिष्ट वैयक्तिक दुःखों के रोने-धोने तक ही सीमित रहती,उनके भाव यदि केवल आत्मकेंद्रित ही होते तो उनमें इतनी व्यापक प्रेषणीयता कदापि न आ पाती। निराला ने लिखा है-

मैंने मैं शैली अपनाई,
देखा एक दुःखी निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में
झट उमड़ वेदना आई

इससे स्पष्ट है कि व्यक्तिगत सुख-दुःख की अपेक्षा अपने से अन्य के सुख-दुख की अनूभूति ने ही नए कवियों के भाव-प्रवण और कल्पनाशील हृदयों को स्वच्छंदतावाद की ओर प्रवृत्त किया।

२. प्रकृति-सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना:

छायावादी कवि का मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है और प्रकृति के सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना छायावादी कविता की एक प्रमुख विशेषता रही है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को काव्य में सजीव बना दिया है। प्रकृति सौंदर्य और प्रेम की अत्यधिक व्यंजना के कारण ही डॉ. देवराज ने छायावादी काव्य को 'प्रकृति-काव्य' कहा है। छायावादी काव्य में प्रकृति-सौंदर्य के अनेक चित्रण मिलते हैं; जैसे

१. आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण
२. उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण
३. प्रकृति का मानवीकरण
४. नारी रूप में प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन
५. आलंकारिक चित्रण
६. प्रकृति का वातावरण और पृष्ठभूमि के रूप में चित्रण
७. रहस्यात्मक अभिव्यक्ति के साधन के रूप में चित्रण।

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने प्रकृति का नारी रूप में चित्रण किया और सौंदर्य व प्रेम की अभिव्यक्ति की। पंत की कविता का एक उदाहरण देखिए:

बांसों का झुरमुट

संध्या का झुटपुट

हैं चहक रहीं चिड़ियां

टीवीटी टुटू दुद्

छायावादी कवि के लिए प्रकृति की प्रत्येक छवि विस्मयोत्पादक बन जाती है। वह प्राकृतिक सौंदर्य पर विमुग्ध होकर रहस्यात्मकता की ओर उन्मुख हो जाता है:

मैं भूल गया सीमाएं जिससे

वह छवि मिल गई मुझे

छायावादी कवि ने निजी अनुभूतियों का व्यक्तिकरण प्रकृति के माध्यम से किया है; जैसे- मैं नीर भरी दुख की बदली छायावादी कवि सौंदयार्नुभूति से अभिभूत है। अपने आंतरिक सौंदर्य का उद्घाटन प्रकृति के माध्यम से करता हुआ दिखाई पड़ता है:

शशि मुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाए

जीवन की गोधूलि में,कौतूहल से तुम आए

- जयशंकर प्रसाद

अधिकांश छायावादी कवियों ने प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण किया है,परंतु कहीं-कहीं उसके उग्र रूप का चित्रण भी हुआ है।

३. श्रृंगारिकता:

छायावादी काव्य में श्रृंगार-भावना की प्रधानता है, परंतु यह श्रृंगार रीतिकालीन स्थूल एवं ऐन्द्रिय श्रृंगार से भिन्न है। छायावादी श्रृंगार-भावना मानसिक एवं अतीन्द्रिय है। यह श्रृंगार-भावना दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है:

१. नारी के अतीन्द्रिय सौंदर्य चित्रण द्वारा

२. प्रकृति पर नारी-भावना के आरोप के माध्यम से चित्रण।

पंत और प्रसाद ने अछूती कल्पनाओं की तूलिका से नारी के सौंदर्य का चित्रण किया है। एक उदाहरण देखिए:

तुम्हारे छूने में था प्राण

संग में पावन गंगा स्नान

तुम्हारी वाणी में कल्याणी

त्रिवेणी की लहरों का गान

नारी का अतीन्द्रिय सौंदर्य चित्रण प्रसाद जी द्वारा श्रद्धा के सौंदर्य में द्रष्टव्य है:

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघवन बीच गुलाबी रंग।

निराला की 'जुही की कली' कविता में दूसरे प्रकार की श्रृंगार-भावना का चित्र है। प्रसाद ने 'कामायनी' में सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान माना है। इस प्रकार छायावादी श्रृंगार-भावना और उसके सभी उपकरणों (नारी, सौंदर्य, प्रेम) का चित्रण सूक्ष्म एवं उदात्त है। उसमें वासना की गंध बहुत कम है।

छायवादी कवि को प्रेम के क्षेत्र में जाति, वर्ण, सामाजिक रीति-नीति, रुढ़ियां और मिथ्या मान्यताएं मान्य नहीं हैं; निराला जी लिखते हैं:

दोनों हम भिन्न वर्ण, भिन्न जाति, भिन्न रूप।
भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से प्राणों से एक थे॥

इनके प्रेम चित्रण में कोई लुकाव-छिपाव-दुराव नहीं है। उसमें कवि की वैयक्तिकता है। इनकी प्रणय गाथा का अंत प्रायःदुःख, निराशा तथा असफलता में होता है। अतः उसमें मिलन की अनुभूतियों की अपेक्षा विरहानुभूतियों का चित्रण अधिक हुआ है

और इस दिशा में उन्हें आशातीत सफलता भी मिली; पंत के शब्दों में:

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह अहह कराहते इस शब्द को
किसी कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोंक से
निठुर विधि ने आंसुओं से है लिखा

४. रहस्यानुभूति:

छायावादी कवि को अज्ञात सत्ता के प्रति एक विशेष आकर्षण रहा है। वह प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में इसी सत्ता के दर्शन करता है। उसका इस अंनत के प्रति प्रमुख रूप से विस्मय तथा जिज्ञासा का भाव है। लेकिन उनका रहस्य जिज्ञासामूलक है, उसे कबीर और दादू के रहस्यवाद के समक्ष खड़ा नहीं किया जा सकता। निराला तत्व ज्ञान के कारण, तो पंत प्राकृतिक सौंदर्य से रहस्योन्मुख हुए। प्रेम और वेदना ने महादेवी को रहस्योन्मुख किया तो प्रसाद ने उस परमसत्ता को अपने बाहर देखा। यद्यपि महादेवी में अवश्य ही रहस्य-साधना की दृढ़ता दिखाई पड़ती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, "कवि उस अनंत अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से अभिव्यंजना करते हैं। ... तथा छायावाद का एक अर्थ रहस्यवाद भी है। अतः सुधी आलोचक रहस्यवाद को छायावाद का प्राण मानते हैं। "छायावादी कवियों की कुछ रहस्य अनुभूतियों के

उदाहरण देखिए:

हे अनंत रमणीय कौन तुम !
यह मैं कैसे कह सकता !
कैसे हो,क्या हो इसका तो
भार विचार न सह सकता ?

- जयशंकर प्रसाद

प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं
तुम मुझ में फिर परिचय क्या!

- महादेवी वर्मा

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
तुने कैसे पहचाना ?

- सुमित्रानंदन पंत

किस अनंत का नीला अंचल हिला-हिलाकर आती तुम सजी मंडलाकर

- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

तृणवीरुध लहलहे हो किसके रस से सिंचे हुए

- जयशंकर प्रसाद

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है

- महादेवी वर्मा

५. तत्त्व चिंतन:

छायावादी कविता में अद्वैत-दर्शन, योग-दर्शन, विशिष्टद्वैत-दर्शन, आनंदवाद आदि के अंतर्गत दार्शनिक चिंतन भी मिलता है। प्रसाद का मूल दर्शन आनंदवाद है तो महादेवी ने अद्वैत, सांख्य एवं योग दर्शन का विवेचन अपने ढ़ंग से किया है।

६. वेदना और करुणा की विवृत्ति:

छायावादी कविता में वेदना की अभिव्यक्ति करुणा और निराशा के रूप में हुई है। हर्ष-शोक, हास-रुदन, जन्म-मरण, विरह-मिलन आदि से उत्पन्न विषमताओं से घिरे हुए मानव-जीवन को देखकर कवि हृदय में वेदना और करुणा उमड़ पड़ती है। जीवन में मानव-मन की

आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की असफलता पर कवि-हृदय क्रन्दन करने लगता है । छायावादी कवि सौंदर्य प्रेमी होता है,किंतु सौंदर्य की क्षणभंगुरता को देख उसका हृदय आकुल हो उठता है । हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति की अपूर्णता, अभिलाषाओं की विफलता,सौंदर्य की नश्वरता, प्रेयसी की निष्ठुरता, मानवीय दुर्बलताओं के प्रति संवेदनशीलता और प्रकृति की रहस्यमयता आदि अनेक कारणों से छायावादी कवि के काव्य में वेदना और करुणा की अधिकता पाई जाती है । प्रसाद ने 'आंसू' में वेदना को साकार रूप दिया है। पंत तो काव्य की उत्पत्ति ही वेदना को मानते हैं -

वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान।

उमड़ कर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अजान॥

महादेवी तो पीड़ा में ही अपने प्रिय को ढूंढ़ती हैं:

तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा, तुममें ढूंढूंगी पीड़ा।

और पंत जी कहते हैं:

चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में

अस्थिर है रूप जगत का मद।

संसार में दुख और वेदना को देखकर छायावादी कवि पलायनवादी भी हुआ । वह इस संसार से ऊब चुका है और कहीं ओर चला जाना चाहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह इस संसार में दुख ही दुख देखता है, यहां सर्वत्र सुख का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इस विषय में कवि पंत की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है:

यहां सुख सरसों,शोक सुमेरु

अरे जग है जग का कंकाल

वृथा रे,यह अरण्य चीत्कार

शांति, सुख है उस पार

निराला भी जग के उस पार जाना चाहते हैं। प्रसाद भी अत्यंत प्रसिद्ध गीत में नाविक से इस कोलाहलपूर्ण संसार से दूर चलने का अनुरोध करते हैं।

७. मानवतावादी दृष्टिकोण:

छायावादी काव्य भारतीय सर्वात्मवाद तथा अद्वैतवाद से गहरे रूप से प्रभावित हुआ। इस काव्य पर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गांधी, टैगोर तथा अरविंद के दर्शन का भी काफी प्रभाव रहा। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के कारण छायावादी कवि को साहित्य के समान धर्म, दर्शन आदि में भी रुढ़ियों एवं मिथ्या परम्पराएं मान्य नहीं हैं । रविंद्रनाथ ठाकुर, जो बंगला साहित्य में मानवतावाद का उद्घोष पहले ही कर चुके थे, का प्रभाव छायावादी कवियों पर भी रहा छायावादी कवि सारे संसार से प्रेम करता है। उसके लिए भारतीय और अभारतीय में कोई भेद नहीं क्योंकि सर्वत्र एक ही आत्मा व्याप्त है। विश्वमानवता की प्रतिष्ठा उसका आदर्श है।

८. नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण:

नारी के प्रति छायावाद ने सर्वथा नवीन दृष्टिकोण अपनाया है । यहां नारी वासना की पूर्ति का साधन नहीं है,यहां तो वह प्रेयसी, जीवन-सहचरी, मां आदि विविध रूपों में उतरी है । उसका मुख्य रूप प्रेयसी का ही रहा है । यह प्रेयसी पार्थिव जगत की स्थूल नारी नहीं है,बरन कल्पना लोक की सुकुमारी देवी है । नारी के संबंध में प्रसाद जी कहते हैं:

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास-रजत-नग-पगतल में
पीयूष-स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में

छायावादी कवि ने युग-युग से उपेक्षित नारी को सदियों की कारागृह से मुक्त करने का स्वर अलापा । छायावादी कवि कह उठता है:

'मुक्त करो नारी को, युग-युग की कारा से बंदिनी नारी को ।'

निःसंदेह छायावाद ने नारी को मानवीय सहदयता के साथ अंकित किया है । पंत की प्रसिद्ध पंक्ति है - 'देवि मां सहचरि प्राण ! "प्रसाद ने नारी को आदर्श श्रद्धा के रूप में देखा जो रागात्मक वृत्ति की प्रतीक है और मनुष्य को मंगल एवं श्रेय के पथ पर ले जानेवाली है । निराला नारी की यथार्थ स्थिति को काफी पहचान कर उसे चित्रित करते हैं । उन्होंने विधवा को इष्ट देव के मंदिर की पूजा कहा । इलाहाबाद के पथ पर तोड़ती हुई मजदूरनी का चित्र खींचा, तुलसी की पत्नी रत्नावली का चित्रण रीतिकालीन नारी विषयक धारणा को तोड़नेवाली के रूप में किया ।

९. आदर्शवाद:

छायावाद में आंतरिकता की प्रवृत्ति की प्रधानता है । उसमें चीजों के बाह्य स्थूल रूप चित्रण की प्रवृत्ति नहीं है । अपनी इस अंर्तमुखी प्रवृत्ति के कारण उनका दृष्टिकोण काव्य के भावजगत और शैली में आदर्शवादी रहा । उसे स्थूलता के चित्रण की बजाय अपनी अनुभूतियाँ अधिक यथार्थ लगी हैं । यही कारण है कि उसका काव्य संबंधी दृष्टिकोण कल्पनात्मक रहा और उसमें सुंदर तत्त्व की प्रधानता बनी रही । छायावादी कवि के इस आदर्शवादी, कल्पनात्मक दृष्टिकोण को उसके कला पक्ष में भी सहज ही देखा जा सकता है।

१०. स्वच्छंदतावाद:

छायावादी कवि ने अहंवादी होने के कारण विषय, भाव, कला, धर्म, दर्शन और समाज के सभी क्षेत्रों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को अपनाया । उसे अपने हृदयोदगार को अभिव्यक्त करने के लिए किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन और रुढ़ियां स्वीकार नहीं हैं । भाव-क्षेत्र में भी उसने इसी क्रांति का प्रदर्शन किया । उसमें 'मैं' की शैली अपनाई, हालांकि उसके 'मैं' में समूचा समाज सन्निहित है । अब छायावादी कवि के लिए प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक दिशा का मार्ग उन्मुक्त था । छायावादी कवि के लिए कोई भी वस्तु काव्य-विषय बनने के लिए उपयुक्त थी । इसी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के फलस्वरूप छायावादी काव्य में सौंदर्य और प्रेम चित्रण,

प्रकृति-चित्रण, राष्ट्रप्रेम, रहस्यात्मकता, वेदना और करुणा, वैयक्तिक सुख-दुःख, अतीत प्रेम, कलावाद, प्रतीकात्मकता और लाक्षणिकता, अभिव्यंजना आदि सभी प्रवृत्तियां मिलती है। उसे पुरानी पिटी-पिटाई राहों पर चलना अभिप्रेत नहीं है। संक्षेप में कह सकते हैं कि छायावाद वैयक्तिक रुचि-स्वातंत्र्य का युग है।

११. देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना:

राष्ट्रीय जागरण की क्रोड़ में पलने-पनपने वाला स्वच्छंदतावादी छायावाद साहित्य यदि रहस्यात्मकता और राष्ट्र प्रेम की भावनाओं को साथ-साथ लेकर चला है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सच तो यह है कि राष्ट्रीय जागरण ने छायावाद के व्यक्तिवाद को असामाजिक पथों पर भटकने से बचा लिया। छायावादी कवि में आंतरिकता की कितनी भी प्रधानता क्यों न हो वह अपने युग से निश्चित रूप से प्रभावित हुआ। यही कारण है कि जयशंकर प्रसाद पुकार उठते हैं:

अरुण यह मधुमय देश हमारा ...

या

हिमाद्रि तुंग श्रंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

माखन लाल चतुर्वेदी कह उठते हैं:

मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर तुम देना फेंक ।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

१२. प्रतीकात्मकता:

प्रतीकात्मकता छायावादियों के काव्य की कला पक्ष की प्रमुख विशेषता है। प्रकृति पर सर्वत्र मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया और उसका संवेदनात्मक रूप में चित्रण किया गया, इससे यह स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व से विहीन हो गई और उसमें प्रतीकात्मकता का व्यवहार किया गया। उदाहरणार्थ, फूल सुख के अर्थ में, शूल दुख के अर्थ में, उषा प्रफुल्लता के अर्थ में, संध्या उदासी के अर्थ में, झंझा-झकोर गर्जन मानसिक इन्द्र के अर्थ में, नीरद माला नाना भावनाओं के अर्थ में प्रयुक्त हुए। दार्शनिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना एवं प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं के अंकन में भी इस प्रतीकात्मकता को देखा जा सकता है।

१३. चित्रात्मक भाषा एवं लाक्षणिक पदावली:

अन्य अनुपम विशिष्टताओं के अतिरिक्त केवल चित्रात्मक भाषा के कारण हिंदी वाङ्मय में छायावादी काव्य को स्वतंत्र काव्य धारा माना जा सकता है कविता के लिए चित्रात्मक भाषा की अपेक्षा की जाती है और इसी गुण के कारण उसमें बिम्ब ग्राहिता आती है। छायावादी कवि इस कला में परम विदग्ध हैं। छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति तत्त्व को

मिलाया, निराला ने उसे मुक्तक छंद दिया,पंत ने शब्दों को खराद पर चढ़ाकर सुड़ौल और सरस बनाया तो महादेवी ने उसमें प्राण डाले,उसकी भावात्मकता को समृद्ध किया। प्रसाद की निम्नांकित पंक्तियों में भाषा की चित्रात्मकता की छटा देखते ही बनती है;-

शशि मुख पर घूंघट डाले,अंचल में दीप छिपाए।

जीवन की गोधूलि में,कौतूहल से तुम आए।

छायावादी कवि ने सीधी सादी भाव संबंधित भाषा से लेकर लाक्षणिक और अप्रस्तुत-विधानों से युक्त चित्रमयी भाषा तक का प्रयोग किया और कदाचित इस क्षेत्र में उसने सर्वाधिक मौलिकता का प्रदर्शन किया। छायावादी कवि ने परम्परा-प्राप्त उपमानों से संतुष्ट न होकर नवीन उपमानों की उद्भावना की। इसमें अप्रस्तुत-विधान और अभिव्यंजना-शैली में शतशः नवीन प्रयोग किए। मूर्त में अमूर्त का विधान उसकी कला का विशेष अंग बना। निराला जी विधवा का चित्रण करते हुए लिखते हैं- “वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी।” यही कारण है कि छायावादी काव्यधारा के पर्याप्त विरुद्ध लिखने वाले आलोचक रामचंद्र शुक्ल को भी लिखना पड़ गया कि “छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें संदेह नहीं।” इसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त-प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संगठित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी। उन्होंने पंत काव्य के कुछ उदाहरण भी उपन्यस्त किए – “धूल की ढ़ेरी में अनजान। छिपे हैं मेरे मधुमय गान। मर्म पीड़ा के हास। कौन तुम अतुल अरूप अनाम।”

१४. गेयता:

छायावादी कवि केवल साहित्यिक ही नहीं वरन संगीत का भी कुशल ज्ञाता है। छायावाद का काव्य छंद और संगीत दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि का है। इसमें प्राचीन छंदों के प्रयोग के साथ-साथ नवीन छंदों का भी निर्माण किया गया। इसमें मुक्तक छंद और अतुकांत कविताएँ भी लिखी गई। छायावादी कवि प्रणय, यौवन और सौंदर्य का कवि है। गीति-शैली उसके गृहीत विषय के लिए उपयुक्त थी। गीति-काव्य के सभी गुण-संक्षिप्तता, तीव्रता, आत्माभिव्यंजना, भाषा की मसृणता आदि उपलब्ध होते हैं गीति-काव्य के लिए सौंदर्य-वृत्ति और स्वानुभूति के गुणों का होना आवश्यक है, सौभाग्य से सारी बातें छायावादी कवियों में मिलती हैं दूसरी एक और बात भी है कि आधुनिक युग गीति-काव्य के लिए जितना उपयुक्त है उतना प्रबंध-काव्यों के लिए नहीं। छायावादी साहित्य में, प्रगीत, खंड काव्य और प्रबंध काव्य भी लिखे गए और वीर गीति, संबोध गीति, शोकगीति, व्यंग्य गीति आदि काव्य के अन्य रूप विधानों का प्रयोग किया गया। छायावादी कवियों की भाषा और छंद केवल बुद्धिविलास, वचन भंगिमा, कौशल या कौतुक वृत्ति से प्रेरित नहीं रहा बल्कि उनकी कविता में भाषा भावों का अनुसरण करती दिखती है और अभिव्यंजना अनुभूति का।

१५. अलंकार-विधान:

अलंकार योजना में प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य के दो नवीन अलंकारों-मानवीकरण तथा विशेषण विपर्यय का भी अच्छा उपयोग किया गया है। प्राकृतिक घटनाओं प्रातः, संध्या, झंझा, बादल और प्राकृतिक चीजों सूर्य, चंद्रमा आदि पर जहां मानवीय

भावनाओं का आरोप किया गया है वहां मानवीकरण है। विशेषण विपर्यय में विशेषण का जो स्थान अभिधावृत्ति के अनुसार निश्चित है,उसे हटाकर लक्षणा द्वारा दूसरी जगह आरोप किया जाता है। पंत ने बच्चों के तुतले भय का प्रयोग उनकी तुतली बोली में व्यंजित भय के लिए किया है। इसी प्रकार तुम्हारी आंखों का बचपन खेलता जब अल्हड़ खेल।' छायावादी कवि ने अमूर्त को मूर्त और मूर्त को अमूर्त रूप में चित्रित करने के लिए अनेक नवीन उपमानों की उद्भावना की है; जैसे -"कीर्ति किरण सी नाच रही है'तथा बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।" इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, उल्लेख, संदेह, विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति तथा व्यतिरेक आदि अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग किया गया है।

१६. कला कला के लिए:

स्वातन्त्रय तथा आत्माभिव्यक्ति के अधिकार की भावना के परिणामस्वरूप छायावादी काव्य में "कला कला के लिए' के सिद्धांत का अनुपालन रहा है। वस्तु-चयन तथा उसके प्रदर्शन कार्य में कवि ने पूर्ण स्वतंत्रता से काम लिया है। उसे समाज तथा उसकी नैतिकता की तनिक भी चिंता नहीं है। यही कारण है कि उसके काव्य में 'सत्य'और 'शिव' की अपेक्षा 'सुंदर' की प्रधानता रही है। छायावादी काव्य इस कला कला के लिए के सिद्धांत में पलायन और प्रगति दोनों सन्निहित हैं। एक ओर अंतमुर्खी प्रवृत्ति के कारण जहां जन-जीवन से कुछ उदासीनता है तो दूसरी ओर काव्य और समाज में मिथ्या रूढ़ियों के प्रति सबल विद्रोह भी। अतः छायावाद पर केवल पलायनवाद का दोष लगाना न्याय संगत नहीं होगा।

अंततः डॉ. नगेन्द्र ने इस साहित्य की समृद्धि की समता भक्ति साहित्य से की है। 'इस तथ्य से कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि भाषा, भावना एवं अभिव्यक्ति-शिल्प की समृद्धि की दृष्टि से छायावादी काव्य अजोड़ है। विशुद्ध अनुभूतिपरक कवित्वमयता की दृष्टि से भी इसकी तुलना अन्य किसी युग के साहित्य से नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से भक्ति काल के बाद आधुनिक काल का यह तृतीय चरण हिंदी साहित्य के इतिहास का दूसरा स्वर्ण-युग कहकर रेखांकित किया जा सकता है इस कविता का गौरव अक्षय है, उसकी समृद्धि की समता केवल भक्ति काव्य ही कर सकता है।'

४.५ सारांश

छायावादी काव्य व्यक्ति और उसकी जीवन शैली से जुड़ा काव्य है। क्योंकि यह जीवन की अनुभूति और संवेदना का काव्य है। इस इकाई में हमने छायावाद, छायावाद के कवि और उनकी रचनाएँ, छायावाद की प्रवृत्तियों का अध्ययन विस्तार से किया है। आशा है विद्यार्थी इन सभी मुद्दों को आसानी से समझ सकेंगे।

४.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. छायावाद का अर्थ, परिभाषा स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

२. छायावादी काव्य की प्रवृत्तियों को सौदाहरण समझाइए।

३. छायावाद के प्रमुख कवि और उनकी रचनाओं का वर्णन कीजिए।

४. छायावादी काव्य के संबंध में विद्वानों के विचार प्रस्तुत कीजिए।

४.७ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. छायावाद का कार्यकाल कब से कब तक है?

उत्तर: सन् १९२० से १९३६ तक

२. छायावाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया?

उत्तर: मुकुटधर पाण्डेय

३. छायावाद को 'स्थूल के प्रति विद्रोह' किस विद्वान ने कहा?

उत्तर: डॉ. नगेन्द्र

४. छायावादी कवियों ने अधिकांशतः कौनसी भाषा का प्रयोग किया?

उत्तर: खड़ी बोली

५. 'रश्मि' काव्य संग्रह के रचयिता है?

उत्तर: महादेवी वर्मा

४.८ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

५

प्रगतिवाद (१९३६-१९४३)

इकाई की रूपरेखा

५.० इकाई का उद्देश्य
५.१ प्रस्तावना
५.२ प्रगतिवाद
५.३ प्रगतिवादी कवि और उनकी रचनाएँ
५.४ प्रगतिवादी कविता की प्रवृत्तियाँ
५.५ सारांश
५.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न
५.७ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न
५.८ संदर्भ ग्रंथ

५.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रगतिकालीन काव्य के विषय में जानना है। इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी प्रगतिकाल, प्रगतिकाल के कवि, उनकी रचनाएँ और प्रगतिकाल की विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।

५.१ प्रस्तावना

जिस प्रकार द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता और स्थूलता के प्रति विद्रोह में छायावाद का जन्म हुआ, उसी प्रकार छायावाद की सूक्ष्मता, कल्पनात्मकता, व्यक्तिवादिता और समाज-विमुखता की प्रतिक्रिया में एक नई साहित्यिक काव्य धारा का जन्म हुआ। इस धारा ने कविता को कल्पना-लोक से निकाल कर जीवन के वास्तविक धरातल पर खड़ा करने का प्रयत्न किया। जीवन का यथार्थ और वस्तुवादी दृष्टिकोण इस कविता का आधार बना। मनुष्य की वास्तविक समस्याओं का चित्रण इस काव्य-धारा का विषय बना। यह धारा साहित्य में 'प्रगतिवाद' के नाम से प्रतिष्ठित हुई।

५.२ प्रगतिवाद

'प्रगति' का सामान्य अर्थ है: 'आगे बढ़ना' और 'वाद' का अर्थ है-'सिद्धांत'। इस प्रकार प्रगतिवाद का सामान्य अर्थ है 'आगे बढ़ने का सिद्धांत'। लेकिन प्रगतिवाद में इस आगे बढ़ने का एक विशेष ढंग है, विशेष दिशा है जो उसे विशिष्ट परिभाषा देता है। इस अर्थ में 'प्राचीन से नवीन की ओर', 'आदर्श से यथार्थ की ओर', 'पूंजीवाद से समाजवाद' की ओर, 'रूढ़ियों से स्वच्छंद जीवन की ओर', 'उच्चवर्ग से निम्नवर्ग की ओर' तथा 'शांति से क्रांति की ओर'

बढ़ना ही प्रगतिवाद है।

परंतु हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद विशेष अर्थ में रूढ़ हो चुका है। जिसके अनुसार प्रगतिवाद को मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप कहा जाता है। जो विचारधारा राजनीति में साम्यवाद है, दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्य में प्रगतिवाद है। इसी प्रगतिवाद को 'समाजवादी यथार्थवाद' (सोशेलिस्ट रियलिज्म) भी कहते हैं।

उन दिनों यूरोप में मार्क्सवाद का प्रभाव निरंतर बढ़ रहा था। १९१९ में रूस में क्रांति हुई। जारशाही का अंत हुआ और मार्क्सवाद से प्रेरित बोल्शेविक पार्टी की सत्ता स्थापित हुई और साम्यवादी विचारधारा ने जोर पकड़ा। जिसने साहित्य में भी एक नवीन दृष्टिकोण को जन्म दिया। लोगों को यह समानतावादी/समतावादी विचार खूब जँच रहा था।

सन् १९३० में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का जन्म हुआ और १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का। धीरे-धीरे राजनीति में वाम पंथी शक्तियों का जोर बढ़ा। कांग्रेस में गांधी के अहिंसात्मक सिद्धांत को न मानने वाले लोगों की संख्या बढ़ रही थी। मजदूरों के आंदोलन हो रहे थे। इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियां वैचारिक उग्रता और समाजोन्मुखता को बढ़ावा दे रही थी। साहित्यकार समाज की ज्वलंत समस्याओं से जूझ रहे थे।

सन् १९३५ में ई.एम. फार्स्टर के सभापतित्व में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोशियन' नामक अंतरराष्ट्रीय संस्था का पहला अधिवेशन पेरिस में हुआ। सन १९३६ में डॉ. मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर के प्रयत्नों से इस संस्था की एक शाखा भारत में खुली और प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में उसका प्रथम अधिवेशन हुआ और तभी से 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर'के लिए हिंदी में 'प्रगतिशील साहित्य' का प्रचलन शुरू हुआ। कालांतर में यही प्रगतिवाद हो गया। प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जोष इलाहाबादी जैसे अग्रणी लेखकों और कवियों ने इस आंदोलन का स्वागत किया। पंत, निराला, दिनकर, नवीन ने इसमें सक्रिय योगदान दिया।

अर्थ की दृष्टि से प्रगतिवाद के दो अर्थ हैं: एक व्यापक और दूसरा सीमित या सांप्रदायिक | प्रगतिशील व्यापक और उदार अर्थ में प्रयुक्त होता है। जिसके अनुसार आदिकाल से लेकर अब तक समस्त साहित्य परम्परा प्रगतिशील है। लेकिन सीमित अर्थ में यह साहित्य प्रचारात्मक है जो मार्क्सवाद का साहित्यिक मोर्चा है जिसमें पिछले सम्पूर्ण साहित्य को सामंतवादी और प्रतिक्रियावादी कह कर नकार दिया गया। छायावाद ने जहां काव्य में ही स्थान बनाया वहां प्रगतिवाद ने साहित्य की अन्य विधाओं यथा उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि के क्षेत्र में भी जगह बनाई।

काव्य में अपने रूढ़ अर्थ में प्रगतिवाद १९३७ से १९४३ तक शिखर पर रहा उसके बाद काव्य ने प्रयोगवाद, नई कविता जैसी नई धाराओं को विकसित किया।

५.३ प्रगतिवादी कवि और उनकी रचनाएँ

प्रगतिवादी कवियों को हम तीन श्रेणियों में रख सकते हैं: एक वे कवि जो मूल रूप से पूर्ववर्ती काव्यधारा छायावाद से संबद्ध हैं, दूसरे वे जो मूल रूप से प्रगतिवादी कवि हैं और तीसरे वे जिन्होंने प्रगतिवादी कविता से अपनी काव्य-यात्रा शुरू की लेकिन बाद में प्रयोगवादी या नई

कविता करने लगे । पहले वर्ग के कवियों में सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'(विशुद्ध छायावादी), नरेन्द्र शर्मा, भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', बच्चन की कुछ कविताएं (हालावादी कवि), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखन लाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद' (राष्ट्रीय काव्य धारा) आदि हैं । जिन्होंने प्रगतिवादी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया । मूल रूप से प्रगतिवादी कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन', त्रिलोचन का नाम उल्लेखनीय है । गजानन माधव मुक्तिबोध, अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती में भी प्रगतिवाद किसी न किसी रूप में मौजूद है, पर इन्हें प्रयोगवादी कहना ही उचित होगा।

यहां हम सभी प्रमुख प्रगतिवादी कवियों और उनकी प्रगतिवादी कृतियों का नामोल्लेख कर रहें हैं:

सुमित्रानंदन पंत (१९००-१९७०) प्रगतिवादी रचनाएँ:

१. युगांत

२. युगवाणी

३ ग्राम्या ।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला (१८९७-१९६२) प्रगतिवादी रचनाएं:

१. कुकुरमुत्ता

२. अणिमा

३. नए पत्ते

४. बेला

५. अर्चना ।

नरेन्द्र शर्मा (१९४३-१९८९):

१. प्रवासी के गीत

२. पलाश-वन

३. मिट्टी और फूल

४. अग्निशस्य ।

रामेश्वर शुक्ल अंचल (१९४५-१९९६):

१. किरण-वेला

२. लाल चुनर ।

माखन लाल चतुर्वेदी (१८८८-१९७०):

१. मानव

रामधारी सिंह दिनकर (१९०८-१९७४):

१ कुरुक्षेत्र

२. रश्मिरथी

३. परशुराम की प्रतीक्षा।

उदयशंकर भट्ट (१८९८-१९६४):

१. अमृत और विष ।

बालकृष्ण शर्मा नवीन (१८९७-१९६०):

१. कंकुम

२. अपलक

३. रश्मि-रेखा

४. क्वासि।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद (१९०७-१९८६):

१. बलिपथ के गीत

२. भूमि की अनुभुति

३. पंखुरियाँ।

केदारनाथ अग्रवाल (१९४४-२०००)

१. युग की गंगा

२. लोक तथा आलोक

३. फूल नहीं रंग बोलते हैं

४. नींद के बादल।

राम विलास शर्मा (१९४२-२०००) :

१. रूप-तरंग

नागार्जुन (१९१०-१९९८):

१. युगधारा

२. प्यासी पथराई

३. आँखे

४. सतरंगे पंखों वाली

५. तुमने कहा था

६. तालाब की मछलियां

७. हजार-हजार बाँहों वाली

८. पुरानी जूतियों का कोरस

९. भस्मासुर(खंडकाव्य) |

रांगेय-राघव (१९२३-१९६२):

१. अजेय खंडहर

२. मेधावी

३. पांचाली

४. राह के दीपक

५. पिघलते पत्थर।

शिव-मंगल सिंह सुमन (१९४५-२००२):

१. हिल्लोल

२. जीवन के गान

३. प्रलय सृजन ।

त्रिलोचन (१९९७-२००७):

१. मिट्टी की बात

२. धरती

५.४ प्रगतिवादी कविता की प्रवृत्तियाँ

समाज और समाज से जुड़ी समस्याओं यथा गरीबी, अकाल,स्वाधीनता,किसान-मजदूर, शोषक-शोषित संबंध और इनसे उत्पन्न विसंगतियों पर जितनी व्यापक संवेदनशीलता इस धारा की कविता में है, वह अन्यत्र नहीं मिलती। यह काव्यधारा अपना संबंध एक ओर जहां भारतीय परंपरा से जोड़ती है वहीं दूसरी ओर भावी समाज से भी। वर्तमान के प्रति वह आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि अपनाती है। प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं:-

१. सामाजिक यथार्थवाद:

इस काव्यधारा के कवियों ने समाज और उसकी समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक,राजनीतिक विषमता के कारण दीन-दरिद्र वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि के प्रसारण को इस काव्यधारा के कवियों ने प्रमुख स्थान दिया और मजदूर, कच्चे घर, गरीब को अपने काव्य का विषय चुना।

सड़े घूरे की गोबर की बदबू से दबकर
महक जिंदगी के गुलाब की मर जाती है

- केदारनाथ अग्रवाल

ओ मजदूर। ओ मजदूर !
तू सब चीजों का कर्त्ता, तू हीं सब चीजों से दूर
ओ मजदूर। ओ मजदूर !
श्वानों को मिलता वस्त्र दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं
युवती की लज्जा बसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते है
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण

- दिनकर

२. मानवतावाद का प्रकाशन:

वह मानवता की अपरिमित शक्ति में विश्वास प्रकट करता है और ईश्वर के प्रति अनास्था प्रकट करता है; धर्म उसके लिए अफीम का नशा है:

जिसे तुम कहते हो भगवान
जो बरसाता है जीवन में
रोग, शोक, दुःख दैन्य अपार
उसे सुनाने चले पुकार

३. क्रांति का आह्वान:

प्रगतिवादी कवि समाज में क्रांति की ऐसी आग भड़काना चाहता है, जिसमें मानवता के विकास में बाधक समस्त रूढ़ियाँ जलकर भस्म हो जाएं -

देखो मुट्ठी भर दानों को, तड़प रही कृषकों की काया।
कब से सुप्त पड़े खेतों से, देखो 'इन्कलाब' घिर आया॥
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाए

४. शोषकों के प्रति आक्रोश:

प्रगतिवाद दलित एवं शोषित समाज के 'खटमलों'-पूंजीवादी सेठों, साहूकारों और राजा-महाराजाओं के शोषण के चित्र उपस्थित कर उनकी मानवता का पर्दाफाश करता है-

ओ मदहोश बुरा फल हो, शूरों के शोणित पीने का।
देना होगा तुझे एक दिन, गिन-गिन मोल पसीने का॥

५. शोषितों को प्रेरणा:

प्रगतिवादी कवि शोषित समाज को स्वावलम्बी बनाकर अपना उद्धार करने की प्रेरणा देता है:

न हाथ एक अस्त्र हो, न साथ एक शस्त्र हो।
न अन्न नीर वस्त्र हो, हटो नहीं, डटो नहीं, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

वह शोषित में शक्ति देखता है और उसे क्रांति में पूरा विश्वास है। इस प्रकार प्रगतिवादी कवि को शोषित की संगठित शक्ति और अच्छे भविष्य पर आस्था है:

मैंने उसको जब-जब देखा- लोहा देखा
लोहा जैसा तपते देखा,गलते देखा,ढ़लते देखा
मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा।

- केदारनाथ अग्रवाल

६. रूढ़ियों का विरोध:

इस धारा के कवि बुद्धिवाद का हथौड़ा लेकर सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार कर उनको चकनाचूर कर देना चाहते हैं:

गा कोकिल। बरसा पावक कण
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।

- सुमित्रानंदन पंत

७. तत्कालीन समस्याओं का चित्रण:

प्रगति का उपासक कवि अपने समय की समस्याओं जैसे-बंगाल का अकाल आदि की ओर आंखें खोलकर देखता है और उनका यथार्थ रूप उपस्थित कर समाज को जागृत करना चाहता है:

बाप बेटा बेचता है

भूख से बेहाल होकर,

धर्म धीरज प्राण खोकर

हो रही अनरीति, राष्ट्र सारा देखता है

एक भिक्षुक की यथार्थ स्थिति:

वह आता

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता

- सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"

८. मार्क्सवाद का समर्थन:

इस धारा के कुछ कवियों ने मात्र साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स का तथा उसके सिद्धांतों का समर्थन करने हेतु प्रचारात्मक काव्य ही लिखा है-

साम्यवाद के साथ स्वर्ण-युग करता मधुर पदार्पण

और साथ ही साम्यवादी देशों का गुणगान भी किया है:

लाल रूस का दुश्मन साथी ! दुश्मन सब इंसानों का

९. नया सौंदर्य बोध:

प्रगतिवादी कवि श्रम में सौंदर्य देखते हैं। उनका सौंदर्य-बोध सामाजिक मूल्यों और नैतिकता से रहित नहीं है। वे अलंकृत या असहज में नहीं, सहज सामान्य जीवन और स्थितियों में सौंदर्य देखते हैं। खेत में काम करती हुई किसान नारी का यह चित्र इसी तरह का है-

बीच-बीच में सहसा उठकर खड़ी हुई वह युवती सुंदर

लगा रही थी पानी झुककर सीधी करे कमर वह पल भर

इधर-उधर वह पेड़ हटाती, रुकती जल की धार बहाती

१०. व्यंग्य:

सामाजिक, आर्थिक वैषम्य का चित्रण करने से रचना में व्यंग्य आ जाना स्वाभाविक है। व्यंग्य ऊपर-ऊपर हास्य लगता है किंतु वह अंततः करुणा उत्पन्न करता है। इसीलिए

सामाजिक व्यंग्य अमानवीय-शोषण सत्ता का सदैव विरोध करता है। प्रगतिशील कवियों में व्यंग्य तो सबके यहां मिल जाएगा किंतु नागार्जुन इस क्षेत्र में सबसे आगे हैं। एक देहाती मास्टर दुखरन, उसके शिष्यों और मदरसे की यह तस्वीर नागार्जुन ने इस प्रकार खींची है-

घुन खाए शहतीरों पर की बारह खड़ी विधाता बांचे

फटी भीत है,छत है चूती, आले पर बिस्तुइया नाचे

लगा-लगा बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पांच तमाचे

इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम से सांचे।

११. प्रकृति:

मानव समाज की भांति प्रकृति के क्षेत्र में भी प्रगतिवादी कवि सहज स्थितियों में सौंदर्य देखता है। उसका सौंदर्य बोध चयनवादी नहीं। प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति और ग्राम जीवन के अनुपम चित्र खींचे हैं जिनमें रूप-रस-गंध-वर्ण के बिम्ब उभरे हैं। नागार्जुन का 'बादल को घिरते देखा है',केदारनाथ अग्रवाल का 'बसंती हवा'और त्रिलोचन का 'धूप में जग-रूप सुंदर' उत्कृष्ट कविताएं हैं।

१२. प्रेम:

प्रगतिवादी कवियों ने प्रेम को सामाजिक-पारिवारिक रूप में देखा है। वर्ग-विभक्त समाज में प्रेम सहज नहीं हो पाता। प्रेम वर्ग-भेद, वर्ण-भेद को मिटाता है। प्रगतिवादी कवि प्रेम की पीड़ा का एकांतिक चित्र करते हैं। किंतु वह वास्तविक जीवन संदर्भों में होता है ।अतः उनका एकांत भी समाजोन्मुख होता है; जैसे त्रिलोचन का यह अकेलापन-

आज मैं अकेला हूं, अकेले रहा नहीं जाता

जीवन मिला है यह, रतन मिला है यह

फूल में मिला है या धूल में मिला है यह

मोल-तोल इसका अकेले कहा नहीं जाता

आज मैं अकेला हूं.

१३. नारी-चित्रण:

प्रगतिवादी कवि के लिए मजदूर तथा किसान के समान नारी भी शोषित है, जो युग-युग से सामंतवाद की कारा में पुरुष की दासता की लौहमयी जंजीरों से जकड़ी है। स्वतंत्र व्यक्तित्व खो चुकी है और केवल मात्र रह गई है पुरुष की वासना तृप्ति का उपकरण। इसलिए वह उसकी मुक्ति चाहता है-अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व खो चुकी है और केवल मात्र रह गई है पुरुष की वासना तृप्ति का उपकरण ।इसलिए वह उसकी मुक्ति चाहता है-

योनि नहीं है रे नारी ! वह भी मानवी प्रतिष्ठित

उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित

अधिकांश प्रगतिवादियों का नारी-प्रेम उच्छुंखल और स्वछंद है:

मैं अर्थ बताता द्रोहभरे यौवन का
मैं वासना नग्न को गाता उच्छुंखल

प्रगतिवादी कवि ने नारी के सुकोमल सौंदर्य की उपेक्षा करके उसके स्थुल शारीरिक सौंदर्य को ही अधिक उकेरा है। उसने नारी की कल्पना कृषक बालाओं व मजदूरनियों में की है।

१४. साधारण कला पक्ष:

प्रगतिवाद जनवादी है। अतः वह जन-भाषा का प्रयोग करता है। उसे ध्येय को व्यक्त करने की चिंता है। काव्य को अलंकृत करने की चिंता नहीं। अतः वह कहता है-

तुम वहन कर सको जन-जन में मरते विचार।
वाणी ! मेरी चाहिए क्या तुम्हें अलंकार॥

छंदों में भी अपने स्वछंद दृष्टिकोण के अनुसार उन्होंने मुक्तक छंद का ही प्रयोग किया है। खुल गए छंद के बंध, प्रास के रजत पाश ...पंत

प्रगतिवादी कविता में नए उपमानों को लिया गया है और वे सामान्य जन जीवन और लोक-गीतों से ग्रहण किए गए हैं:

कोयल की खान की मजदूरिनी सी रात।
बोझ ढ़ोती तिमिर का विश्रांत सी अवदात॥

मशाल,जोंक,रक्त,तांडव, विप्लव, प्रलय आदि नए प्रतीक प्रगतिवादी साहित्य की अपनी सृष्टि हैं। प्रगतिवादी कवि का कला संबंधी दृष्टिकोण भाषा, छंद, अलंकार, प्रतीकों तथा वर्णित भावों से स्पष्ट हो जाता है। वह कला को स्वांतः सुखाय या कला कला के लिए नहीं, बल्कि जीवन के लिए, बहुजन के लिए अपनाता है। वह कविता को जन-जीवन का प्रतिनिधि मानता है।

५.५ सारांश

प्रगतिवादी काव्य सामाजिक यर्थाथवादी सौंदर्य दृष्टि से परिपूर्ण है। यह साहित्य मानव धरातल का साहित्य है जो जन जागृति से ओत-प्रोत है। आशा है कि इस इकाई के अध्ययन से प्रगतिवाद के सम्पूर्ण अध्ययन से विद्यार्थी अवगत हुए है।

५.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. प्रगतिवादी काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

२. प्रगतिवादी काव्य जनजागृति का काव्य है सिद्ध कीजिए।

५.७ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. प्रगतिवादी काव्य का प्रेरणा स्त्रोत है?

उत्तर: मार्क्सवादी

२. प्रगतिवादी काव्य का प्रमुख उद्देश्य था?

उत्तर: यथार्थवाद की स्थापना

३. प्रगतिवाद की कालावधि है?

उत्तर: सन् १९३६ से सन् १९४३ तक

४. प्रगति का सामान्य अर्थ है?

उत्तर: आगे बढ़ना

५. सुमित्रानंदन पंत की किन्ही दो प्रगतिवादी रचनाओं के नाम लिखिए?

उत्तर: १. युगांत, २. युगवाणी

५.८ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

६

प्रयोगवाद (१९४३-१९५२)

इकाई की रूपरेखा

६.० इकाई का उद्देश्य

६.१ प्रस्तावना

६.२ प्रयोगवाद

६.३ प्रयोगवाद के कवि और उनकी रचनाएँ

६.४ प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्तियाँ

६.५ सारांश

६.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

६.७ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

६.८ संदर्भ ग्रंथ

६.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य प्रयोगवाद का अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत हम प्रयोगवाद, प्रयोगवाद के कवि व रचनाएँ और प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों को विस्तार से जानेंगे।

६.१ प्रस्तावना

भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद और प्रगतिवाद के बाद प्रयोगवाद का आगमन हुआ। यह काल गुलामी के अंत और स्वतंत्रता के उदय का काल था। जो समाज और साहित्य के लिए अत्यंत महत्व पूर्ण था। इस काल का साहित्य विदेशी विचारधारा से भी जुड़ा माक्स्रवादी दर्शन का खासा प्रभाव इस काल पर रहा।

६.२ प्रयोगवाद

प्रयोग शब्द का सामान्य अर्थ है, 'नई दिशा में अन्वेषण का प्रयास'। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोग निरंतर चलते रहते हैं। काव्य के क्षेत्र में भी पूर्ववर्ती युग की प्रतिक्रिया स्वरूप या नवीन युग-सापेक्ष चेतना की अभिव्यक्ति हेतु प्रयोग होते रहे हैं। सभी जागरूक कवियों में रूढ़ियों को तोड़कर या सृजित पथ को छोड़ कर नवीन पगडंडियों पर चलने की प्रवृत्ति न्यूनाधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है। चाहे यह पगडंडी राजपथ का रूप ग्रहण न कर सके। सन् १९४३ या इससे भी पांच-छः वर्ष पूर्व हिंदी कविता में प्रयोगवादी कही जाने वाली कविता की पग-ध्वनि सुनाई देने लगी थी। कुछ लोगों का मानना है कि १९३९ में नरोत्तम नागर के संपादकत्व में निकलने वाली पत्रिका 'उच्छुंखल' में इस प्रकार की कविताएं छपने लगी थी जिसमें 'अस्वीकार', 'आत्यंतिक विच्छेद' और व्यापक 'मूर्ति-भंजन' का स्वर मुखर

था तो कुछ लोग निराला की 'नये पत्ते', 'बेला' और 'कुकुरमुत्ता' में इस नवीन काव्य-धारा के लक्षण देखते हैं । लेकिन १९४३ में अज्ञेय के संपादन में 'तार-सप्तक' के प्रकाशन से प्रयोगवादी कविता का आकार स्पष्ट होने लगा और दूसरे तार-सप्तक के प्रकाशन वर्ष १९५१ तक यह स्पष्ट हो गया।

प्रयोगवाद का जन्म 'छायावाद' और 'प्रगतिवाद' की रुढ़ियों की प्रतिक्रिया में हुआ । डॉ. नगेन्द्र प्रयोगवाद के उत्थान के विषय में लिखते हैं,- 'भाव क्षेत्र में छायावाद की अतिन्द्रियता और वायवी सौंदर्य चेतना के विरुद्ध एक वस्तुगत, मूर्त और ऐन्द्रिय चेतना का विकास हुआ और सौंदर्य की परिधि में केवल मसृण और मधुर के अतिरिक्त परुष, अनगढ़, भदेश का समावेश हुआ ।' छायावादी कविता में वैयक्तिकता तो थी, किंतु उस वैयक्तिकता में उदात्त भावना थी । इसके विपरीत प्रगतिवाद में यथार्थ का चित्रण तो था, किंतु उसका प्रतिपाद्य विषय पूर्णतः सामाजिक समस्याओं पर आधारित था और उसमें राजनीति की बू थी। अतः इन दोनों की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रयोगवाद का उद्भव हुआ, जो 'घोर अहंमवादी', 'वैयक्तिकता' एवं 'नग्न-यथार्थवाद' को लेकर चला श्री लक्ष्मी कांत वर्मा के शब्दों में, "प्रथम तो छायावाद ने अपने शब्दाडम्बर में बहुत से शब्दों और बिम्बों के गतिशील तत्त्वों को नष्ट कर दिया था। दूसरे, प्रगतिवाद ने सामाजिकता के नाम पर विभिन्न भाव-स्तरों एवं शब्द-संस्कार को अभिधात्मक बना दिया था । ऐसी स्थिति में नए भाव-बोध को व्यक्त करने के लिए न तो शब्दों में सामर्थ्य था और न परम्परा से मिली हुई शैली में । परिणामस्वरूप उन कवियों को जो इनसे पृथक थे, सर्वथा नया स्वर और नये माध्यमों का प्रयोग करना पड़ा। ऐसा इसलिए और भी करना पड़ा, क्योंकि भाव-स्तर की नई अनुभूतियाँ विषय और संदर्भ में इन दोनों से सर्वथा भिन्न थी । प्रयोगवाद नाम तारसप्तक में अज्ञेय के इस वक्तव्य से लिया गया, "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं । किंतु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी छुआ नहीं गया था जिनको अभेद्य मान लिया गया है।"

इन अन्वेषणकर्ता कवियों में अज्ञेय ने तार सप्तक में ऐसे सात-सात कवियों को अपनाया "जो किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी एक विचारधारा के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं- राही नहीं, राहों के अन्वेषी ।... काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बांधता है ।...उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषय में उनकी अलग-अलग राय है- जीवन के विषय में, समाज और धर्म और राजनीति के विषय में, काव्य-वस्तु और शैली के छंद और तुक में, कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है । यहां तक कि हमारे जगत के ऐसे सर्वमान्य और स्वयं सिद्ध मौलिक सत्यों को भी वे स्वीकार नहीं करते, जैसे- लोकतंत्र की आवश्यकता, उद्योगों का समाजीकरण, यांत्रिक युद्ध की उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई अथवा काननबाला और सहगल के गानों की उत्कृष्टता इत्यादि । वे सब एक-दूसरे की रुचियों, कृतियों और आशाओं और विश्वासों पर एक-दूसरे की जीवन-परिपाटी पर और यहां तक कि एक-दूसरे के मित्रों और कुत्तों पर भी हंसते हैं ।'" प्रयोगवादी कवियों का नए के प्रति यह आग्रह ही इन्हें प्रयोगवादी बनाता है।

प्रयोगवाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इस धारा के कवियों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, जो इस प्रकार हैः

अज्ञेय:

प्रयोगशील कविता में नए सत्यों, नई यथार्थताओं का जीवित बोध भी है,उन सत्यों के साथ नए रागात्मक संबंध भी और उनको पाठक या सहृदय तक पहुंचाने यानी साधारणीकरण की शक्ति भी है।

डॉ. धर्मवीर भारती:

प्रयोगवादी कविता में भावना है, किंतु हर भावना के आगे एक प्रश्न-चिह्न लगा है। इसी प्रश्न-चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढ़ांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न चिह्न उसी की ध्वनि-मात्र है।

श्री गिरिजाकुमार माथुर:

प्रयोगों का लक्ष्य है व्यापक सामाजिक सत्य के खंड अनुभवों का साधारणीकरण करने में कविता को नवानुकूल माध्यम देना, जिसमें व्यक्ति द्वारा इस व्यापक सत्य का सर्वबोधगम्य प्रेषण संभव हो सके |

प्रयोगवाद को आकार देने में जहां 'सप्तकों' की भूमिका रही वहीं अनेक पत्रिकाओं ने भी इसकी राह को सरल बनाया। तार-सप्तकों की संख्या चार है। पहला सप्तक १९१३, दूसरा १९५१, तीसरा १९५९ और चौथा सप्तक १९७९ में प्रकाशित हुआ। पत्रिकाओं में 'प्रतीक', 'पाटल', 'दृष्टिकोण', 'कल्पना', 'अजंता', 'राष्ट्रवाणी', 'धर्मयुग', 'नई कविता', 'निकष', 'ज्ञानोदय', 'कृति', 'लहर', 'निष्ठा', 'शताब्दी', 'ज्योत्स्ना', 'आजकल', 'कल्पना आदि हैं।

प्रयोगवाद को प्रतीकों की प्रधानता और नवीन प्रतीकों को अपनाने के कारण 'प्रतीकवाद' नाम से भी अभिहित किया गया। प्रयोगवाद से कुछ लोगों का अभिप्राय 'रूपवाद' अथवा 'फार्मलिज्म' तक सीमित है। लेकिन रूपवाद प्रयोगवाद की शाखा-मात्र है। क्योंकि प्रयोगवादी केवल रूप-विधान या तकनीक पर ही ध्यान नहीं देते; उसमें अन्य तत्व भी मौजूद हैं।

प्रयोगवाद के भीतर ही 'प्रपद्यवाद' या 'नकेनवाद' भी पनपा लेकिन वह प्रयोगवाद की एक छोटी शाखा-मात्र बन कर रह गया। “नकेनवाद' बिहार में प्रचलित हुआ। 'नलिन विलोचन शर्मा', 'केसरीकुमार' और 'नरेश' नामों के प्रथम अक्षर से बना है नकेन। नकेनवादी तीनों कवियों ने 'प्रयोग-दशसूत्री' में प्रयोगवाद और प्रयोगशीलता में अंतर स्पष्ट किया है। ये प्रयोग को ही काव्य का एकमात्र लक्ष्य मानते हैं।

डॉ जगदीश चंद्र गुप्त और श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ने १९५४ में 'नई कविता' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसने प्रयोगवादी कविता को नई कविता का नाम दिया। कुछ आलोचक नई कविता और प्रयोगवाद में कोई अंतर नहीं मानते जबकि कुछ का मानना है कि दोनों को एक समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। हमारे दृष्टिकोण से नई कविता

प्रयोगवाद का ही विकसित या स्थापित हुआ रूप है। प्रयोगवादी कविता जब काव्य जगत में स्वीकृत हो गई तो उसे नई कविता के नाम से अभिहित किया गया। जो लोग प्रयोगवाद और नई कविता को अलग-अलग रूप में देखते हैं वे दलगत राजनीति के शिकार हैं।

६.३ प्रयोगवाद के कवि और उनकी रचनाएँ

प्रयोगवाद के कवियों में हम सर्वप्रथम तारसप्तक के कवियों को गिनते हैं और इसके प्रवर्तक कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ठहरते हैं। जैसा कि हम पहले कहते आए हैं कि तारसप्तक १९४३ ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें सातकवियों को शामिल किए जाने के कारण इसका नाम तारसप्तक रखा गया। इन कवियों को अज्ञेय ने पथ के राही कहा। ये किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं, बल्कि अभी पथ के अन्वेषक हैं। इसी संदर्भ में अज्ञेय ने प्रयोग शब्द का प्रयोग किया, जहां से प्रयोगवाद की उत्पत्ति स्वीकार की जाती है। इसके बाद १९५४ ई. में दूसरा, १९५९ ई. में तीसरा और १९७९ में चौथा तारसप्तक प्रकाशित हुए। जिनका संपादन स्वयं अज्ञेय ने किया है।

६.३.१ चारों तारसप्तकों के कवियों के नाम निम्नवत हैं:

१. प्रथम तारसप्तक के कवि:

अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचंद्र जैन, रामविलास शर्मा।

२. दूसरे तारसप्तक के कवि:

भवानीप्रसाद मिश्र, शंकुत माथुर, नरेश मेहत्ता, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादुर सिंह, हरिनारायण व्यास, धर्मवीर भारती।

३. तीसरे तारसप्तक के कवि:

प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

४. चौथे तारसप्तक के कवि:

अवधेश कुमार, राजकुमार कुंभज, स्वदेश भारती, नंद किशोर आचार्य, सुमन राजे, श्रीराम शर्मा, राजेन्द्र किशोर।

“नकेनवाद' या 'प्रपद्यवाद' प्रयोगवाद में ही शामिल है। नकेनवाद के कवि हैं:

१. नलिनविलोचन शर्मा

२. केसरी कुमार

३. नरेश।

६.३.२ प्रयोगवाद की प्रमुख कवियों की काव्य-रचनाएं निम्नवत हैं:

१. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय (१९११-१९८७):

१. भग्नदूत

२. चिंता

३. हरी घास पर क्षण भर

४. बावरा अहेरी

५. अरी ओ करुणा प्रभामय

६. आंगन के पार द्वार

७. इत्यलम

८. इंद्र-धनुष रौंदे हुए थे

९. सुनहले शैवाल

१०. कितनी नावों में कितनी बार

११. सागर-मुद्रा

१२. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ

१३. पहले सन्नाटा बुनता हूँ

१४. महावृक्ष के नीचे

१५. नदी की बांक पर छाया।

२. भारतभूषण अग्रवाल (१९४९-१९७५):

१. छवि के बंधन

२. जागते रहो

३. मुक्ति-मार्ग

४. एक उठा हुआ हाथ

५. ओ अप्रस्तुत मन

६. कागज के फूल

७. अनुपस्थित लोग

८. उतना वह सूरज है।

३. गजानन माधव मुक्तिबोध (१९१७-१९६४):

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है

२. भ्री-भूरी खाक धूल।

४. प्रभाकर माचवे (१९४७-१९९१):

१. स्वप्न-भंग

२. अनुक्षण

३. तेल की पकोड़ियाँ

४. मेपल।

५. गिरिजाकुमार माथुर (१९४१-१९९१):

१. नाश और निर्माण

२. धूप के धान

३. शिला पंख चमकीले

४. मंजीर

५. भीतरी नदी की यात्रा

६. जो बंध नहीं सका

७. छाया मत छूना मन

८. साक्षी रहे वर्तमान

९. कल्पांतर।

६. नेमिचंद्र जैन (१९१९-२००५):

विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित।

७. राम विलास शर्मा (१९९२-२०००):

१. रूप-तरंग (ये प्रयोगवादी से अधिक प्रगतिवादी कवि हैं और मार्क्सवादी समीक्षक व आलोचक हैं)

८. भवानीप्रसाद मिश्र (१९१४-१९८५):

१. गीत-फरोश

२. अंधेरी कविताएँ,

३. चकित हैं दुःख

४. त्रिकाल संध्या

५. बुनी हुई रस्सी

६. गाँधी पंशशती

७. खुशबू के शिलालेख

८. त्रिकाल संध्या

९. अनाम तुम आते हो

१०. परिवर्तन जिए

११. मानसरोवर दिन

९. शकुंत माथुर (१९२२-...):

१. चांदनी चूनर

२. सुहाग बेला

३. कूड़े से भरी गाड़ी।

१०. नरेश मेहता (१९२७-२०००):

१. बोलने दो चीड़ को

२. मेरा समर्पित एकांत

३. वनपाख्री सुनो

४. संशय की एक रात

५. उत्सवा।

११. रघुवीर सहाय(१९२९-१९९०):

१. सीढ़ियों पर धूप में

२. आत्महत्या के विरुद्ध

३. हंसो हंसो जल्दी हंसो

४. लोग भूल गए हैं।

१२. शमशेर बहादुर सिंह (१९९१-१९९३):

१. चुका भी नहीं हूं मैं

२. ददिता

३. बात बोलेगी हम नहीं

४. कुछ कविताएँ

५. कुछ और कविताएँ

६. इतने पास अपने।

१३. हरिनारायण व्यास(१९२३-२०१३)

१. मृग और तृष्णा

२. त्रिकोण पर सूर्योदय ।

१४. धर्मवीर भारती(१९२६-१९९७):

१. कनुप्रिया

२. ठंडा लोहा

३. सात गीत वर्ष

४. अंधा-युग।

१५. प्रयाग नारायण त्रिपाठी( ):

विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित।

१६. कीतिं चौधरी(१९३४-२००८):

१. खुले हुए आसमान के नीचे

२. कविताएँ।

१७. मदन वात्स्यायन(१९२२-...)

१. अपथगा

२. शुक्रतारा।

१८. केदारनाथ सिंह (१९३४-):

१. अभी बिल्कुल अभी

२. जमीन पक रही है

३. यहाँ से देखो।

१९. कुंबर नारायण(१९२७-२०१७):

१. चक्र-व्यूह

२. आत्मजयी

३. परिवेश

४. हम-तुम

५. आमने-सामने।

२०. विजय देव नारायण साही(१९२४-१९८२) :

१. मछली-घर

२. साखी।

२१. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना(१९२७-१९८४):

१. काठ की घंटियाँ

२. एक सूनी नाव

३. गर्म-हवाएँ

४. बांध का पुल

५. जंगल का दर्द

६. कुआनो नदी

७. बांस के पुल

८. कविताएँ-४,

९. कविताएँ-२,

१०. खूंटियों पर टंगे लोग।

तार-सप्तक परम्परा के अतिरिक्त कुछ अन्य भी प्रयोगवादी कवि हैं: चँद्रकुंवर वर्त्वाल, राजेन्द्र यादव, सूर्यप्रताप। तार सप्तक परंपरा के सभी कवि प्रयोगवादी हों, ऐसी बात भी नहीं है। रामविलास शर्मा और भवानीप्रसाद मिश्र पर प्रगतिवाद का पर्याप्त प्रभाव है।

इधर मुक्तिबोध में एक अलग ही तरह का विस्फोटक तत्व मौजूद है।

६.४ प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवादी कविता में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ देखी गई हैं:

१. समसामयिक जीवन का यथार्थ चित्रण:

प्रयोगवादी कविता की भाव-वस्तु समसामयिक वस्तुओं और व्यापारों से उपजी है। रिक्शों

के भोंपू की आवाज, लाउड स्पीकर का चीत्कार, मशीन के अलार्म की चीख, रेल के इंजन की सीटी आदि की यथावत अभिव्यक्ति इस कविता में मिलेगी। नलिन विलोचन शर्मा ने बसंत वर्णन के प्रसंग में लाउड स्पीकर को अंकित किया। प्रत्युष-वर्णन में उन्होंने रिक्शों के भोंपू की आवाज का उल्लेख किया। एक अन्य स्थल पर रेल के इंजन की ध्वनि का उल्लेख हुआ। मदन वात्स्यायन ने कारखानों में चलने वाली मशीनों की ध्वनि का ज्यों का त्यों उल्लेख किया है। समसामयिकता के प्रति इनका इतना अधिक मोह है कि इन कवियों ने उपमान तथा बिम्बों का चयन भी समसामयिक युग के विभिन्न उपकरणों से किया है। भारत भूषण अग्रवाल ने लाउड स्पीकर तथा टाइपराइटर की उपमान के रूप प्रस्तुत किया। रघुवीर सहाय ने भी पहिये और सिनेमा की रील के उपमानों को ग्रहण किया है। केसरी कुमार ने व्यवसायिक जीवन के उपमानों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार चिकित्सा तथा रसायन-शास्त्र से अनेकों उपमान प्रयोगवादी कवियों ने ग्रहण किए हैं। गिरिजाकुमार माथुर की हब्श देश नामक कविता की निम्न पक्तिंयां देखिए जिनमें औद्योगिक और रासायनिक युग को वाणी प्रदान की गई हैः

उगल रही हैं खानें सोना,

अभ्रकतांबा, जस्त, क्रोनियम

टीन, कोयला, लौह, प्लेटिनम

युरेनियम, अनमोल रसायन

कोपेक, सिल्क, कपास, अन्न-धन

द्रव्य फोसफैटो से पूरित !

२. घोर अहनिष्ठ वैयक्तिकता:

प्रयोगवादी कवि समाज-चित्रण की अपेक्षा वैयक्तिक कुरूपता का प्रकाशन करके समाज के मध्यमवर्गीय मानव की दुर्बलता का प्रकाशन करता है। मन की नग्न एवं अश्लील वृत्तियों का चित्रण करता है। अपनी असामाजिक एवं अहंवादी प्रकृति के अनुरूप मानव जगत के लघु और श्रुद्र प्राणियों को काव्य में स्थान देता है। भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा करता है। कवि के मन की स्थिति, अनुभूति, विचारधारा तथा मान्यता इस कविता में विशेष रूप से अभिव्यक्त हुई है। व्यक्ति का केवल सामाजिक अस्तित्व ही नहीं है,बल्कि उसकी अपनी भावनाओं का भी एक संसार है। इसलिए इस कविता में अधिक ईमानदारी के साथ कवि के निजी दर्द अभिव्यक्त हुए हैं।

मेरी अंतरात्मा का यह उद्वेलन-

जो तुम्हें और तुम्हें और तुम्हें देखता है

और अभिव्यक्ति के लिए तड़प उठता है-

यही है मेरी स्थिति, यही मेरी शक्ति।

चलो उठें अब

अब तक हम थे बंधु

सैर को आए-

और रहे बैठे तो

लोग कहेंगे

धुंधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं

वह हम हों भी

तो यह हरी घास ही जाने

- अज्ञेय

३. विद्रोह का स्वर:

इस कविता में विद्रोह का स्वर एक ओर समाज और परम्परा से अलग होने के रूप में मिलता है और दूसरी ओर आत्मशक्ति के उद्-घोष रूप में। परम्परा और रूढ़ि से मुक्ति पाने के लिए भवानी प्रसाद मिश्र कहते हैं:-

ये किसी निश्चित नियम, क्रम की सरासर सीढ़ियां हैं

पांव रखकर बढ़ रहीं जिस पर कि अपनी पीढ़ियां हैं

बिना सीढ़ी के चढ़ेंगे तीर के जैसे बढ़ेंगे।

विद्रोह का दूसरा रूप चुनौती और ध्वंस की बलवती अभिव्यक्ति के रूप में मिलता है। भारत भूषण अग्रवाल में स्वयं का ज्ञान अधिक प्रबल हो उठा कि वे नियति को संघर्ष की चुनौती देते हुए कहते हैं:

मैं छोड़कर पूजा

क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार-

बांधकर मुट्ठी तुझे ललकारता हूँ

सुन रही है तू?

मैं खड़ा यहां तुझको पुकारता हूँ।

आततायी सामाजिक परिवेश को चुनौती देते हुए अज्ञेय कहते हैं:

ठहर-ठहर आततायी ! जरा सुन ले

मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन ले।

वैज्ञानिक युग ने उसे पुराने चरित्रों के प्रति शंकित किया है, इसलिए वह उनके प्रति कोई श्रद्धा नहीं रखता। इस कविता के कवि को ईश्वर, नियति, मंदिर, दैवी-व्यक्तियों एवं स्थानों में विश्वास नहीं है। वह स्वर्ग और नरक का अस्तित्व नहीं मानता। भारत भूषण अग्रवाल की निम्न पंक्तियां देखिए-

रात मैंने एक स्वप्न देखा

मैंने देखा

कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई

और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहें हैं

उर्वशी ने डांस स्कूल खोल लिया है

गणेश टॉफी खा रहे हैं

४. लघु मानव की प्रतिष्ठा:

प्रयोगवादी काव्य में लघु मानव की ऐसी धारणा को स्थापित किया गया है जो इतिहास की गति को अप्रत्याशित मोड़ दे सकने की क्षमता रखता है; धर्मवीर भारती की ये पंक्तियां देखिए:

मैं रथ का टूटा पहिया हूँ.

लेकिन मुझे फेंको मत

इतिहासों की सामूहिक गति

सहसा झूठी पड़ जाने पर

क्या जाने

सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले

इस कविता में मानव के लघु व्यक्तित्व की उस शक्ति पर गौरव तथा अभिमान अभिव्यक्त हुआ है जो व्यक्ति की महत्ता की चरम सीमा का स्पर्श करती है।

५. अनास्थावादी तथा संशयात्मक स्वर:

डॉ. शंभूनाथ चतुवेर्दी ने अनास्थामूलक प्रयोगवादी काव्य के दो पक्ष स्वीकार किए हैं। एक आस्था और अनास्था की द्वंद्वमयी अभिव्यक्ति, जो वस्तुतः निराशा और संशयात्मक दृष्टिकोण का संकेत करती है। दूसरी, नितांत हताशापूर्ण मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति।

कुंठा एक अनास्थामूलक वृत्ति है। प्रयोगवादी कवि अपनी कुंठाओं और वासनाओं को छिपाने में विश्वास नहीं रखता, इसलिए वह इनका नग्न रूप प्रस्तुत कर देता है। धर्मवीर भारती की निम्नांकित पंक्तियां देखिए:

अपनी कुठाओं की

दीवारों में बंदी

मैं घुटता हूं

प्रयोगवादी कविता में पस्ती, पराजय और अविश्वास की अभिव्यक्ति के रूप में भी अनास्था को प्रमुख स्थान मिला है। विजयदेव नारायण साही ने भी व्यक्ति या समाज को आक्रांत करने वाली अनास्था का भी स्पष्ट प्रकाशन किया है, और संपूर्ण समाज अथवा व्यक्ति विशेष

से अनास्था के तत्वों को ग्रहण करने का भी संदेश दिया है-

हर आंसू कायरता की खीझ नहीं होता

बाहर आओ

सब साथ मिलकर रोओ

६. आस्था तथा भविष्य के प्रति विश्वास:

जहाँ प्रयोगवाद के कुछ कवियों ने अनास्थावादी और संशयात्मकता को स्वर दिए वहीं कुछ अन्य कवियों ने जैसे नरेश मेहता तथा रघुवीर सहाय ने काव्य में अनास्थायूलक तत्वों को अनावश्यक पाया। गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में आस्था के बल पर नव-निर्माण का स्वर मुखरित हुआ है। हरिनारायण व्यास तथा नरेश मेहता में भी आस्थामूलक वृत्तियों के प्रति आग्रह है। आस्था का पहला रूप पुरोगामी संकल्प का सूचक है |अज्ञेय की कुछ कविताओं में भी आस्था की सफल अभिव्यक्ति हुई है:

मैं आस्था हूँ

तो मैं निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ.

जो मेरा कर्म है, उसमें मुझे संशय का नाम नहीं

वह मेरी अपनी सांस-सा पहचाना है

आस्था के दूसरे रूप में सर्जन-शक्ति अथवा कर्म-निष्ठा की भावना रहती है। अन्यत्र अज्ञेय ने आस्था के माध्यम से पूर्णता के उच्चतम धरातल पर प्रतिष्ठित होने की बात का संकेत किया है:

आस्था न कांपे, मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है।

७. वेदना की अनुभूति का प्रयोग:

प्रयोगवादी कवि वेदना से पालायन न करके, उसके सान्निध्य की अभिलाषा करते हैं। इसे उसने दो रूपों में स्वीकार किया है-एक तो वेदना को सहन करने की लालसा और दूसरे वेदना या पीड़ा की अतल गहराइयों में बैठ कर नए अर्थ की उपलब्धि के रूप में। भारत भूषण अग्रवाल वेदना को उत्साहवर्धिनी मानते हैं :

पर न हिम्मत हार

प्रज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप

ढाल उसमें शक्ति अपनी

लौ उठा

मुक्तिबोध की मान्यता है कि वेदना अथवा पीड़ा के अवशेष मानव की संघर्ष-शक्ति को उभारते हैं।

८. समष्टि कल्याण की भावना:

इस कविता में व्यष्टि के सुख की अपेक्षा सर्मष्टे के कल्याण को अधिक महत्त्व दिया गया है। रघुवीर सहाय सूर्य से धरती के जीवन को मंगलमय बनाने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं:

आओ स्वीकार निमंत्रण यह करो
ताकि, ओ सूर्य, ओ पिता जीवन के
तुम उसे प्यार से वरदान कोई दे जाओ
जिससे भर जाये दूध से पृथ्वी का आंचल
जिससे इस दिन उनके पुत्रों के लिए मंगल हो

समष्टि हित के लिए कवि अपने व्यक्तिवाद तथा अहं का विसर्जन करने को भी तत्पर है। अज्ञेय का अकेला मदमाता दीपक अहं का प्रतीक है उसे वे पंक्ति को समर्पित करने के लिए कहते हैं:

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता,पर
इसको भी पंक्ति को दे दो

९. वासना की नग्न अभिव्यक्ति:

छायावादी कल्पना में प्रकृति के अनेक रूप-रंगों का चित्रण था, प्रगतिवाद की कविता में सामाजिक यथार्थ की प्रवृति रही तो प्रयोगवादी कविता में फ्रायड के मनोविश्लेषण के प्रभाव से नग्न यथार्थवाद का चित्रण इस कविता में हुआ। इस में साधनात्मक प्रेम का अभाव है मांसल प्रेम एवं दमित वासना की अभिव्यक्ति ही अधिक हुई है। प्रयोगवादी कवि अपनी ईमानदारी अपनी यौनवर्जनाओं के चित्रण में प्रदर्शित करता है। जब वह ऐसा करता है तो सेक्स को समस्त मानव प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं का केंद्र-बिंदु मानता है। कुंवरनारायण ने यौनाशय को अत्यधिक महत्त्व दिया:

आमाशय
यौनाशय
गर्भाशय
जिसकी जिंदगी का यही आशय
यहीं इतना भोग्य
कितना सुखी है वह
भाग्य उसका ईर्ष्या के योग्य

धर्मवीर भारती ने तो संभोग-दशा का स्पष्ट चित्र ही उतार दिया है:

मैंने कसकर तुम्हें जकड़ लिया है

और जकड़ती जा रही हूंऔर निकट,और निकट

और तुम्हारे कंधो पर,बांहों पर,होठों पर

नागवधू की शुभ्र दंत-पंक्तियों के

नीले-नीले चिह्न उभर आये हैं:

इसी प्रकार एक उदाहरण और देखिए--

नंगी धूप, चूमते पुष्ट वक्ष

दूधिया बांहें रसती केसर-फूल

चौड़े कपूरीं कूल्हों से दबती

सोफे की एसवर्गी चादर

रेशम जांघों से उकसीं

टांगों की चंदन डडालें १

१०. क्षण की अनुभूति:

प्रयोगवादी कविता में क्षण विशेष की अनुभूति को यथारूप प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति है। इस युग का कवि क्षण में ही संपूर्णता के दर्शन करता है:

एक क्षण: क्षण में प्रवाहमान

व्याप्त संपूर्णता

इस से कदापि बड़ा नहीं था महबुधि जो:

पिया था अगस्त्य ने।

जीवन के ये क्षण सुख-दुख,संयोग-वियोग, आशा-निराशा किसी भी रूप में हो सकते हैं। इस लिए इस कविता में विविधता व विरोधी प्रवृत्तियाँ एक साथ समाविष्ट हो गई हैं। धर्मवीर भारती की कविता में विरोधी अनुभूतियों का (आध्यात्मिक एवं भौतिक) सुंदर समन्वय हुआ है।

फूल झर गए।

क्षण भर की ही तो देरी थी

अभी अभी तो दृष्टि फेरी थी

इतने में सौरभ के प्राण हर गए,

फूल झर गए।

११. भदेसपन:

प्रयोगवादी कवियों ने प्रयोग की लालसा में उन सभी कुरुतियों, विकृतियों तथा भद्दे दृश्यों को भी कविता में चित्रित किया है जो जीवन और समाज में व्याप्त रहें हैं, लेकिन उपेक्षित। इन्हें चित्रित करने के पीछे प्रयोगवादी कवियों का तर्क है कि जीवन में सभी कुछ सुंदर नहीं होता,बल्कि असुंदर और घृणित वस्तु तथा दृश्य भी जीवन से जुड़े रहते हैं। इसलिए जीवन की पूर्णता में ये त्याज्य नहीं हैं और घिनौनी चीजों में सौंदर्य देखने के लिए विशेष साधना अपेक्षित है। इससे कविता में जुगुप्सा उत्पन्न होती है।

अज्ञेय की कविता का एक उदाहरण देखिए:

निकटतर धंसती हुई छत, आड़ में निर्वेद

मृत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में

तीन टांगों पर खड़ा नत ग्रीव

धैर्य, धन, गदहा

१२. व्यंग्य:

व्यंग्य का गहरा पुट इस कविता की विशेषता रही है। आधुनिक जीवन की विसंगतियों पर, लोगों के बदलते हुए रूपों पर, सभ्यता के नाम पर फैले शोषण पर, राजनीति की कुटिल चालों पर, धर्म के व्यापारों पर, यह कविता व्यंग्य करती है । आज के जीवन का खोखलापन,स्वार्थपरता का भाव कवि के मन को खीझ से भर देता है। इसलिए वह इन पर गहरा व्यंग्य करता है।

अज्ञेय की कविता सांप में शहरी सभ्यता पर करारा व्यंग्य है:

सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे,

नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया

एक बात पूछुँ! उत्तर दोगे।

फिर कैसे सीखा डसना

विष कहां पाया।

१३. काव्य शिल्प में नए प्रयोग:

शिल्प के क्षेत्र में प्रयोगवादी कवियों के काव्य में अपूर्व क्रांति दिखाई पड़ती है। मुक्तिबोध के काव्य में वक्रता से सरलता की ओर जाने की प्रवृत्ति संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। गिरिजाकुमार माथुर ने काव्य में विषय की अपेक्षा टेकनिक पर अधिक ध्यान दिया। भाषा, ध्वनि तथा छंद-विधान में उन्होंने नवीन प्रयोग किए । प्रभाकर माचवे ने नई अलंकार-योजना, बिम्ब-विधान और उपमानों के नए प्रयोग किए। अज्ञेय ने साधारणीकरण की दृष्टि से भाषा संबंधी नवीनता को अधिक महत्त्व दिया | शमशेर बहादुर सिंह ने फ्रांसीसी प्रतीकवादी कवियों के प्रभाव में पर्याप्त प्रयोग किए, जिनके कारण उन्हें कवियों का कवि कहा

जाने लगा। स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कवियों ने भाषा, लय, शब्द, बिम्ब तथा छंद-विधान संबंधी नए प्रयोगों पर बहुत ध्यान दिया।

१४. बिम्ब योजना:

प्रयोगवादी कविता में बिम्ब-योजना बड़ी सफलता के साथ की गई है। इस कविता से पूर्व की किसी कविता में इतने अधिक स्पष्ट बिम्ब उतरें हैं, इसमें संदेह है। बिम्ब योजना के विषय में प्रयोगवादियों की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इनके बिम्ब नितान्त सजीव हैं | प्राकृतिक-बिम्बों का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:

बूंद टपकी एक नभ से

किसी ने झुककर झरोखे से

कि जैसे हंस दिया हो

यहां बूंद टपकने और झरोखे से झांककर हंसने में सादृश्य दिखाया गया है। झरोखे से हँसी देखने के लिए निगाह ऊपर उठती है और टपकती बूंद भी आकाश की ओर बरबस नेत्रों को खींच लेती है। इस बिम्ब में अनुभूति की सूक्ष्मता तथा गहराई दर्शनीय है।

१५. नए उपमान:

अप्रस्तुत-योजना में प्रयोगवादी कवियों ने पुराने उपमानों का पूर्णतः परित्याग कर दिया है। इनके उपमान एकदम नए हैं। इनके अप्रस्तुत-विधान की प्रमुख विशेषता यह है कि वे जीवन से गृहीत हैं,उनकी संयोजना के लिए कल्पना के पंखों पर नहीं उड़ा गया है। उदाहरण के लिए प्रभाकर माचवे की ये दो पंक्तियां देखिए-

नोन-तेल लकड़ी की फिक्र में लगे घुन से

मकड़ी के जाले से, कोल्हू के बैल से।

उपमान की नवीनता मुक्तिबोध की इन पंक्तियों में भी देखते ही बनती है,जिनमें उन्होंने नेत्रों के लिए लालटेन और पांवों के लिए स्तम्भ के उपमानों को चुना है:

अंर्तमनुष्य

रिक्त सा गेह

दो लालटेन से नयन

निष्प्राण स्तम्भ

दो खड़े पांव

कुछ और उदाहरण देखिए-

प्यार का नाम लेते ही

बिजली के स्टोव सी

जो एकदम सुर्ख हो जाती है
आपरेशन थियेटर सी
जो हर काम करते हुए चुप है

१६. असंगत अनुषंग का प्रयोग:

इलियट के काव्य-स्वरूप प्रयोगवादी कवियों में असंगत अनुषंगों (फ्री एशोसिएशंस) की भरमार मिलती है, जिससे इनका काव्य अत्यधिक दुरुह हो गया है। जहां पर ये कवि असंगत अनुषंगों का प्रयोग करने लग जाते हैं, वहां पर इनकी विचारधारा में पूर्वापर का संबंध न होने के कारण किसी एक निश्चित अर्थ पर पहुंचना मुश्किल हो जाता है। प्रयोगवादी कविता में सर्वप्रथम इस प्रवृत्ति का अवतरण अज्ञेय ने किया उसके बाद इसका बहुत अधिक प्रयोग होने लगा। असंगत अनुषंग अथवा असंबद्धता के लिए यहाँ नरेश की कुछ पंक्तियां उद्धृत हैं:

ई से ईश्वर
उ से उल्लू--
मांजी ?
नहीं जी
वह पंछी
जो देखता है रात भर

प्रस्तुत पंक्तियों का बड़ी माथा-पच्ची करने पर ही यह अर्थ निकाला जा सकता है कि कवि किसी कार्य में व्यस्त है कि इतने में उसका बच्चा ई से ईश्वर, उ से उल्लू रटता हुआ उसके पास आता है और सहसा कवि से अपनी माँ जी के विषय में प्रश्न करता है। कवि संभवतः यह समझता है कि लड़का कदाचित यह पूछना चाहता है कि क्या माँ उल्लू हैं ? कवि प्रश्न को जैसा समझता है,उसके अनुसार उत्तर देता हुआ कहता है कि नहीं माँ जी उल्लू नहीं हैं। उल्लू तो एक पक्षी है जो रात भर देखता है। स्पष्टतः असंगत अनुषंग प्रयोगवादी कविता को समझने में बड़ी बाधा उत्पन्न करते हैं। इसमें साधारणीकरण का सर्वथा अभाव है।

१७. नवीन शब्द-चयन:

एक ओर शब्द चयन में प्रयोगवादी कवि बहुत उदारता के साथ ग्रामीण,देशज तथा प्रचलित शब्दों को अपनाता है वहीं दूसरी ओर संस्कृत और अंग्रेजी का व्यापक प्रयोग भी करता है। व्याकरण के नियमों से चिपक कर रहना भी उसे सह्य नहीं। अतः भाषा के एक नए ढ़ंग का नयापन आ गया है। इसमें नए क्रियापद भी बनते हैं। नए शब्दों में बतियाना, लम्बायित, बिलमान, अस्मिता, ईप्सा, क्लिन्त, इयत्ता, पारमिता आदि। इस प्रकार शब्दों को तोड़ा मरोड़ा गया है। इसके अलावा इन कवियों ने विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान से भी शब्द ग्रहण किए हैं।

१८. नवीन-प्रतीक:

आज के जीवन और जगत के साथ-साथ आम आदमी को, वैज्ञानिक क्रियाओं को,शब्दों और प्रभावों को प्रयोगवादी कविता में स्थान दिया गया है। मनोविज्ञान से भी प्रतीक चुने गए हैं। कवियों ने सर्वथा पुराने प्रतीकों को त्याग कर नवीन प्रतीकों को ग्रहण किया है। मुक्तिबोध के प्रतीकों में ब्रह्मराक्षस, ओरांग-उटांग, गांधी, सुभाष, तिलक, रावण, वटवृक्ष आदि प्रसिद्ध प्रतीक हैं। नए प्रतीक जैसे प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया, भी देखे जाते हैं।

१९. छंद-विधान:

प्रयोगवादियों ने छंद-विधान में तो आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया है। यहाँ विभिन्न तरह के प्रयोग हुए हैं। छंदों के परम्परागत मात्रिक रूपों से उसका कोई संबंध नहीं रह गया है। इससे कविता में कभी लय और गति का अभाव उत्पन्न होता है और कभी उसमें काव्यात्मकता के स्थान पर गद्यात्मकता आ जाती है। एक ओर लोकगीतों की धुनों के आधार पर कविताओं की रचना हुई है वहीं दूसरी ओर उर्दू की रूबाइयों और गजलों का प्रभाव भी कविता पर पड़ा है। अंग्रेजी के सॉनेट से मिलती-जुलती कविता भी इन कवियों ने लिखी। यह छंदहीन कविता मुक्तक छंद को अपनाती है।

भारत भूषण अग्रवाल की कविता का एक उदाहरण, जिसमें काव्य गद्यात्मक हो गया है:

तुम अमीर थी

इसलिए हमारी शादी न हो सकी

पर मान लो, तुम गरीब होती--

तो भी क्या फर्क पड़ता

क्योंकि तब

मैं अमीर होता

अज्ञेय की एक कविता का अंश जिसमें लोक-गीत के आधार पर सरल काव्य रचना की गई है:

मेरा जिया हरसा

जो पिया,पानी बरसा

खड़-खड़ कर उठे पात

'फड़क उठे गात

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता का आग्रह प्रयोगवाद की उपलब्धि है। इसी के चलते कहीं-कहीं यह कविता दुरुह भी हो गई है। इसके लिए डॉ. नगेन्द्र ने पांच कारणों को प्रमुख माना,

१. भावतत्त्व और काव्यानुभूति के मध्य रागात्मक के स्थान पर बुद्धिगत संबंध

२. साधारणीकरण का त्याग

३. उपचेतन मन के खंड अनुभवों का यथावत चित्रण

४. भाषा का एकांत एवं अनर्गल प्रयोग तथा

५. नूतनता का सर्वग्राही मोह।

६.५ सारांश

प्रयोगवाद ने बौद्धिक धारणा का अवलंबन किया इन कवियों का दृष्टिकोण यथार्थवादी था इसी कारण यह काव्य निराशा, कुण्ठा और वासना की और कब खिच गया पता ही नहीं चला।

आशा है कि विद्यार्थी इस इकाई के अध्ययन से प्रयोग वाद और उनसे जुड़े सभी मुद्दों का अध्ययन कर सकें।

६.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. प्रयोगवाद की विशेषताओं का वर्णन किजिए।

२. प्रयोगवादी कविता में पनप रही आधुनिक कुचंबनाओं को सौदाहरण समझाइए।

३. प्रयोग वादी प्रवृत्तियों का सौदाहरण वर्णन कीजिए।

६.७ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. प्रयोगवाद की कालावधि कब से कब तक मानी गयी है?

उत्तर: सन् १९४३ से १९५२ तक

२. तारसप्तक का प्रथम संपादन किसने किया?

उत्तर: अज्ञेय

३. दूसरे तारसप्तक का प्रकाशन कौनसे वर्ष में हुआ?

उत्तर: सन् १९५१

४. प्रथम तारसप्तक के किन्ही चार कवियों के नाम लीखिए?

उत्तर: अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे।

५. प्रयोगवाद में कौनसा वाद शामिल है?

उत्तर: नकेनवाद, या प्रपद्यवाद

६.८ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

७

नई कविता (१९५२-१९६०)

इकाई की रूपरेखा

७.० इकाई का उद्देश्य

७.१ प्रस्तावना

७.२ नई कविता

७.३ नई कविता की विशेषताएँ

७.४ सारांश

७.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

७.६ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

७.७ संदर्भ ग्रंथ

७.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई में नई कविता पर विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। नई कविता का अर्थ, परिभाषा और नई कविता की प्रवृत्तियाँ को हम विस्तार से जान सकेंगे।

७.१ प्रस्तावना

प्रयोगवाद व नई कविता में भेद रेखा स्पष्ट नहीं है। एक प्रकार से प्रयोगवाद का विकसित रूप ही नई कविता है। प्रयोगवाद को इसके प्रणेता अज्ञेय कोई वाद नहीं मानते। वे तार-सप्तक (१९४३) की भूमिका में केवल इतना ही लिखते हैं कि संगृहीत सभी कवि ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है। केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं। साथ ही अज्ञेय ने यह भी स्पष्ट किया कि "वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं-राही नहीं, राहों के अन्वेषी। उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है।" इस प्रकार केवल काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बांधता है। प्रयोगवाद नाम इस काव्य-विशेष के विरोधियों या आलोचकों द्वारा दिया गया। अज्ञेय ने प्रयोगवाद नाम का लगातार प्रतिवाद किया है। उनका कहना है कि "प्रयोग कोई वाद नहीं है-फिर भी आश्चर्य की बात है कि यह नाम व्यापक स्वीकृति पा गया। प्रयोग शब्द जैसे 'एक्सपेरिमेंट का हिंदी पर्याय है वैसा ही 'एक्सपेरिमेंटलिज्म जैसा कोई समानांतर आधार नहीं मिलता है। इस प्रकार का कोई वाद यूरोपीय साहित्य में भी नहीं चला।" प्रगतिवादियों और नंददुलारे वाजपेयी ने अज्ञेय और प्रयोग की दृष्टि पर जो आक्षेप लगाए, उनका करारा जवाब अज्ञेय ने दूसरा सप्तक (१९५४) और तीसरा सप्तक (१९५९) की भूमिकाओं में दिए हैं।

७.२ नई कविता

दूसरा सप्तक की भूमिका में यह स्पष्ट कहा गया कि "प्रयोगवाद कोई बाद नहीं है। इन कवियों को प्रयोगवादी कहना इतना ही सार्थक या निर्थक है जितना इन्हें कवितावादी कहना।"दूसरे सप्तक के अधिकांश कवियों के वक्तव्यों में नए कवियों का उल्लेख हुआ है और स्वयं अज्ञेय ने लिखा है कि “प्रयोग के लिए प्रयोग इन में से भी किसी ने नहीं किया है, पर नई समस्याओं और नए दायित्वों का तकाजा सब ने अनुभव किया है और उससे प्रेरणा सभी को मिली है। दूसरा सप्तक नए हिंदी काव्य को निश्चित रूप से एक कदम आगे ले जाता है।" सन् १९५१ में एक रेडियो गोष्ठी हुई थी, जिसमें सुमित्रानंदन पंत, भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय, धर्मवीर भारती और शिवमंगल सिंह सुमन जैसे कवियों ने भाग लिया। इस गोष्ठी में नवीन प्रवृत्ति वाली कविता धारा के लिए प्रयोग शब्द का प्रयोग हुआ। लेकिन अज्ञेय ने तारसप्तकीय कविता के लिए नई कविता नाम की प्रस्तावना की। इसी नाम को लेकर सन् १९५३ में “नए पत्ते” नाम से और सन् १९५४ में “नई कविता” नाम से पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। “नए पत्ते” का संपादन डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी और डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा ने संभाला। “नई कविता” का संपादन दायित्व डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी और डॉ. जगदीश गुप्त ने उठाया। यहीं से प्रयोगवादी कही जाने वाली कविता को एक नया नाम “नई कविता' मिल गया। “नई कविता” १९५४ से १९६७ तक प्रकाशित होती रही। जो एक अर्धवार्षिक पत्रिका थी। इस पत्रिका में नए-नए कवियों को स्थान मिलने लगा। लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, कुंवर नारायण, विपिन कुमार अग्रवाल और श्रीराम वर्मा जैसे कवि इस पत्रिका की ही देन हैं। इन कवियों की रचनाएँ रघुवंश, विजयदेवनारायण साही, अज्ञेय जैसे काव्य मर्मज्ञों के लेखों के साथ प्रकाशित होती थी। जिसमें नवीन भावों को प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता था। अंधा-युग और कनुप्रिया के अंश सर्वप्रथम नई कविता में ही प्रकाशित हुए, जिनमें आधुनिक संवेदना की एक विशिष्ट पहचान मौजूद थी। संचयन स्तंभ के अंतर्गत अनेक युवा कवियों को स्थान मिला। उल्लेखनीय है कि नई कविता का नामकरण अज्ञेय द्वारा ही किया गया है और वे इस नाम के अंतर्गत तार-सप्तकों के कवियों या बाद में परिमल, प्रतीक, नए पत्ते, नई कविता में स्थान पाने वाले कवियों की रचनाओं के लिए करना अधिक सही पाते हैं, बजाय प्रयोगवाद के। इस नाम को अपनाने से जहाँ समसामयिक युग बोध का बोध होता है वहीं पूर्ववर्ती कवियों से विषय-वस्तु और शैली की भिन्नता भी स्पष्ट हो जाती है। वास्तव में यह नाम सन् १९३० में लंदन में ग्रियर्सन द्वारा न्यू वर्स (New Verse) नाम से संपादित पत्रिका का अक्षरशः हिंदी अनुवाद है। दूसरे महायुद्ध के कुछ वर्ष पूर्व से ही यूरोपीय साहित्य में, विशेषकर फ्रेंच और अंग्रेजी में परम्परा से मुक्त, नए ढंग की कविताओं का चलन शुरू हो गया था। इनमें जहाँ एक ओर बुद्धिवाद का आधार लिया गया वहीं दूसरी ओर वस्तुवाद पर आधारित भावात्मक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति भी थी। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि 'इलियट' तथा 'लारेंस' में ये दोनों विशेषताएं देखी जा सकती हैं। अंग्रेजी के मार्क्सवादी कवि 'ओडेन' का नाम भी इस नए आंदोलन के साथ जुड़ा है। सन् १९५० के आसपास विदेशों में समसामयिक कविता को नई कविता (New Poetry) कहने का रिवाज चला। जी.एस. फेजर ने समसामयिक कविता को न्यूमूवमैंटस कहा। डेनाल्ड हाल ने अमरीका की विगत ५ वर्षों की कविता में प्रगति को "न्यू पोइट्री” कहा। अन्य यूरोपीय व एशियाई देशों में भी नई पीढ़ी की काव्य रचना को नूतन नामों द्वारा अभिहित किया गया। भारत में भी यह हवा आई और अब तक प्रयोगवादी नाम से बदनाम कविता नई कविता हो गई।

कुछ आलोचक नई कविता और प्रयोगवाद को अलग करने के लिए "नई कविता' को समाजोन्मुख मानते हैं, जबकि प्रयोगवाद को घोर अहंनिष्ठ। उनके अनुसार नई कविता में सामाजिक तनावों, सामाजिक मूल्यों, सामाजिक वैषम्यों और कुंठाओं को स्वस्थ अभिव्यक्ति मिली है जबकि प्रयोगवाद में यह पूर्णतः वैयक्तिक और नग्न थी और समाज से पूरी तरह कटी हुई थी। नई कविता समाज सापेक्ष बनी है, जबकि प्रयोगवादी कही जाने वाली कविता पूर्णतः समाज-निरपेक्ष थी। डॉ. धर्मवीर भारती ने लिखा है कि "प्रयोगवादी कविता में भावना है, किंतु हर भावना के आगे प्रश्न चिह्न लगा है। इसी प्रश्न चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं।" परंतु नई कविता प्रयोगवाद की अगली कड़ी इस अर्थ में है कि अब कवियों ने प्रश्न-चिह्नों के उस आवरण को उतार फेंका है। अब यह कविता प्रश्न चिह्न मात्र न रहकर समाज और जीवन के व्यापक सत्यों को खंड-खंड चित्रों के रूप में ही सही साधारणीकृत होकर समग्र प्रकार की सम्प्रेषणीयता से अन्वित हो गई है। इसमें साधारणीकरण की समस्या अब नहीं रह गई है। कविता के पुराने आचार्यों और समीक्षकों व आलोचकों ने नई कविता का बड़ा भारी विरोध किया। यह विरोध छायावाद भी झेल चुका था और प्रयोगवाद भी। लेकिन नई कविता ने मूल्यबोध की जो समस्याएं उठाई, उसके सम्मुख पुरानी पीढ़ी को पस्त होना पड़ा। डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा ने पुरने आलोचकों को जवाब देने के लिए "नई कविता के प्रतिमान' पुस्तक लिखी। जिस पर व्यापक चर्चा हुई। 'अर्थ की लय', 'रसानुभूति और सहानुभूति', 'लघुमानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस' जैसे निबंधों से आलोचना के क्षेत्र के दिगज आलोचक भी भौचका रह गए। रस सिद्धांत को चुनौती देकर कहा गया कि कविता का नया सौंदर्य बोध अब रस प्रतिमान से नहीं समझा-समझाया जा सकता है क्योंकि रस का आधार है अद्वंद्, समाहिति, संविद विश्रांति जबकि नई कविता का आधार है इंद्र, तनाव, घिराव, संघर्ष, बेचैनी, चित्त की व्याकुलता, बौद्धिक ताकिंक स्थिति। नई कविता भाव केंद्रित न होकर विभाव या विचार के तनाव की कविता है जिससे जीवन जगत के वास्तविक दुखते-कसकते अनुभवों को स्थान मिलता है। इस प्रकार नई कविता आन्दोलन में काव्य की अंतर्वस्तु, प्रयोग-परम्परा-आधुनिकता, समसामयिकता, प्रतीक, काव्य-बिम्ब, अर्थ की लय, काव्य-यात्रा की सर्जनात्मकता, मिथक आदि पर नए ढ़ग से विचार किया गया। नई कविता के अधिकांश कवि तार-सप्तकों के ही कवि हैं तथा प्रयोगवादी और नई कविता में बहुत कुछ समतापरक होने पर भी साठोत्तरी कवियों ने नई कविता को प्रयोगवाद के पर्यायवाची के रूप में स्वीकार नहीं किया और उसे अनेक नाम देकर प्रयोगवाद से अलग ठहराया।

कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार नई कविता की परिभाषा:

डॉ. रघुवंश:

नई कविता में अन्वेषण की दिशा में नए क्षितिज उभर आए हैं, यथार्थ को नई दृष्टि मिली है, संक्रमण के बीच नए मूल्यों की संभावना आभासित हुई है, साथ ही भाव-बोध के नए स्तरों और आयामों को उद्-घाटित करने के लिए उपयुक्त भाषा-शैली तथा शिल्प की उपलब्धि भी हुई है।

डॉ. यश गुलाटी:

यह नया नाम वास्तव में उन कविताओं के लिए रुढ़ हो गया है जो आजादी के बाद बदले हुए परिवेश में जिंदगी की जटिल और चकरा देने वाली वास्तविकताओं को झेल रहे मानव की परिवर्तित संवेदनाओं को नए मुहावरों में अभिव्यक्त करती हैं।

डॉ. रामदरश मिश्र:

नई कविता भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गई उन कविताओं को कहा गया जिनमें परम्परागत कविता से आगे भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नए मूल्यों और नए शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया है।

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त:

नई कविता नए समाज के, नए मानव की, नई वृत्तियों की, नई अभिव्यक्ति, नई शब्दावली में है, जो नए पाठकों के नए दिमाग पर नए ढंग से नया प्रभाव उत्पन्न करती है।

डॉ. जगदीश गुप्त:

वह नई कविता उन प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है,जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक-चेतना नए कवि के समान है--बहुत अंशों में कवि की प्रगति ऐसे प्रबुद्ध भावुक वर्ग पर आश्रित रहती है।

७.३ नई कविता की विशेषताएँ

प्रयोगवाद और नई कविता की प्रवृत्तियों में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता। नई कविता प्रयोगवाद की नींव पर ही खड़ी है। फिर भी कथ्य की व्यापकता और दृष्टि की उन्मुक्तता, ईमानदार अनुभूति का आग्रह, सामाजिक एवं व्यक्ति पक्ष का संश्लेष, रोमांटिक भावबोध से हटकर नवीन आधुनिकता से संपन्न भाव-बोध एक नए शिल्प को गढ़ता है। वादमुक्त काव्य,स्वाधीन चिंतन की व्यापक स्तर पर प्रतिष्ठा,क्षण की अनुभूतियों का चित्रण, काव्य मुक्ति, गद्य का काव्यात्मक उपयोग, नए सौंदर्यवोध की अभिव्यक्ति, अनुभूतियों में घनत्व और तीव्रता, राजनीतिक स्थितियों पर व्यंग्य, नए प्रतीकों-बिम्बों-मिथकों के माध्यम से तथा आदर्शवाद से हटकर नए मनुष्य की नई मानववादी वैचारिक भूमि की प्रतिष्ठा नई कविता की विशेषताएँ रहीं हैं। नई कविता की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत हैं :-

१. अनुभूति की सच्चाई तथा यथार्थ बोध:

अनुभूति क्षण की हो या समूचे काल की,किसी सामान्य व्यक्ति (लघुमानव) की हो या विशिष्ट पुरुष की, आशा की हो या निराशा की वह सब कविता का कथ्य है। समाज की अनुभूति कवि की अनुभूति बन कर ही कविता में व्यक्त हो सकती है। नई कविता इस वास्तविकता को स्वीकार करती है और ईमानदारी से उसकी अभिव्यक्ति करती है। इसमें मानव को उसके समस्त सुख-दुखों, विसंगतियों और विडंबनाओं को उसके परिवेश सहित स्वीकार किया गया है। इसमें न तो छायावाद की तरह समाज से पलायन है और न ही प्रयोगवाद की तरह मनोग्रंथियों का नग्न बैयक्तिक चित्रण या घोर व्यक्तिनिष्ठ अहंभावना। यह कविता

ईमानदारी के साथ व्यक्ति की क्षणिक अनुभूतियों को,उसके दर्द को संवेदनापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करती है:

आज फिर शुरू हुआ जीवन
आज मैंने एक छोटी सी सरस सी कविता पढ़ी
आज मैंने सूरज को डूबते देर तक देखा
जी भर कर शीतल जल से स्नान किया
आज एक छोटी सी बच्ची आयी
किलक मेरे कंधे पर चढ़ी
आज आदि से अंत तक एक पूरा गान किया
आज जीवन फिर शुरू हुआ

- रघुवीर सहाय

चेहरे थे असंख्य
आँखें थीं
दर्द सभी में था
जीवन का दंश सभी ने जाना था
पर दो
केवल दो
मेरे मन में कौंध गयीं
मैं नहीं जानता किसकी वे आँखे थी
नहीं समझता फिर उनको देखूँगा
परिचय मन ही मन चाहा तो उद्यम कोई नहीं किया
किंतु उसी की कौंध
मुझे फिर फिर दिखलाती है
वही परिचित दो आँखें ही
चिर माध्यम हैं
सब आँखों से सब दर्दों से
मेरे चिर परिचय का

- अश्येय

२. कथ्य की व्यापकता और दृष्टि की उन्मुक्तता:

नई कविता में जीवन के प्रति आस्था है। जीवन को इसके पूर्ण रूप में स्वीकार करके उसे भोगने की लालसा है। नई कविता ने जीवन को जीवन के रूप में देखा, इसमें कोई सीमा रेखा निर्धारित नहीं की। नई कविता किसी वाद में बंध कर नहीं चलती। इसलिए अपने कथ्य और दृष्टि में विस्तार पाती है। नई कविता का धरातल पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं से व्यापक है, इसलिए उसमें विषयों की विविधता है। एक अर्थ में वह पुराने मूल्यों और प्रतिमानों के प्रति विद्रोही प्रतीत होती है और इनसे बाहर निकलने के लिए व्याकुल रहती है। नई कविता ने धर्म, दर्शन,नीति, आचार सभी प्रकार के मूल्यों को चुनौती दी है, यदि ये मात्र फारमुलें हैं, मात्र ओढ़े हुए हैं और जीवन की नवीन अनुभूति, नवीन चिंतन,नवीन गति के मार्ग में आते हैं। इन मान्य फारमूलों को, मूल्यों की विधातक असंगतियों को अनावृत करना सर्जनात्मकता से असंबद्ध नहीं है, वरन सर्जन की आकुलता ही है। नई कविता के कवियों में से अधिकांश प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के खेमों में रह चुके थे। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की अपेक्षा अधिक व्यापक मानवीय संदर्भ, उसकी समस्याएं और विज्ञान के नए आयाम से जुड़ कर नई कविता ने अपना विषय विस्तार किया। आम आदमी जिस पीड़ा को झेलता है, औसत आदमी (मध्य-वर्गीय) जिस जीवन को जीता है, वही लघु मानव इस कविता का नायक बनता है। उसे इतिहास ने अब तक अपने से अलग ही रखा है। इसलिए नई कविता उसकी पीड़ा, अभाव और तनाव झेलती है:

तुम हमारा जिक्र इतिहासों में नहीं पाओगे
और न उस कराह का
जो तुम ने उस रात सुनी
क्योंकि हमने अपने को इतिहास के विरुद्ध दे दिया है

मनुष्य के भीतर मानवता का अंश शहर-दंश से कैसे नष्ट हो जाता है और वह स्वार्थ के संकीर्ण संसार में जीवित रहने के लिए कैसे विवश कर दिया जाता है; अज्ञेय ने इसी पीड़ा को कविता में यूं बयाँ किया है:

बड़े शहर के ढंग और हैं, हम गोटें हैं यहां
दाँव गहरे हैं उस चोपड़ के

श्रीकांत वर्मा के शब्दों में शहरी जिंदगी का सच:

चिमनियों की गंध में डूबा शहर
शाम थककर आ रही है कारखानों में

३. मानवतावाद की नई परिभाषा:

नई कविता मानवतावादी है पर इसका मानवतावाद मिथ्या आदर्श की परिकल्पनाओं पर आधारित नहीं है। उसकी यथार्थ दृष्टि मनुष्य को उसके पूरे परिवेश में समझने का बौद्धिक प्रयास करती है। उसकी उलझी हुई संवेदना चेतना के विभिन्न स्तरों तक अनुभूत परिवेश की व्याख्या करने की कोशिश करती है। नई कविता मनुष्य को किसी कल्पित सुंदरता और

मूल्यों के आधार पर नहीं, बल्कि उसके तड़पते दर्दों और संवेदनाओं के आधार पर बड़ा सिद्ध करती है। यही उसकी लोक संपृक्त है। अज्ञेय की एक कविता-

अच्छा
खंडित सत्य
सुघर नीरन्ध्र मृषा से
अच्छा
पीड़ित प्यार
अकंपित निर्ममता से
अच्छी कुंठा रहित इकाई
सांचे ढले समाज से
अच्छा
अपना ठाठ फकीरी
मंगनी के सुख साज से
अच्छा सार्थक मौन
व्यर्थ के श्रवण मधुर छंद से
अच्छा
निर्धन दानी का उघड़ा उर्वर दुःख
धनी सूम के बंजर धुआं घुटे आनंद से
अच्छे
अनुभव की भट्टी में तपे हुए कण, दो कण
अंतर्दृष्टि के
झूठे नुस्खे रूढ़ि उपलब्धि परायी के प्रकाश से
रूप शिव रूप सत्य सृष्टि के

४. कुठाओं और वर्जनाओं से मुक्ति का संदेश:

नई कविता स्वयं को किसी विषय से अछूता नहीं समझती । नई कविता समाज की वर्जनाओं और व्यक्ति की कुंठाओं से निकल कर स्पष्ट और कोमल अनुभूतियों को यथार्थ की कसौटी पर कस कर अभिव्यक्ति देती है। उसमें यदि आदर्श के प्रति लगाव नहीं है तो अनुभूति के प्रति ईमानदारी में भी कोई कपट नहीं है। नए कवियों ने आवाज उठाई कि हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन कम से कम वाली बात हम से न कहिए। रामस्वरूप चतुवेर्दी ने हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास में एक मार्के की बात कही कि नई कविता इस सारे के सारे जीवन और गरबीली गरीबी का काव्य है। जिसमें व्यक्ति की चेतना जीवन के सारे व्यापारों में, खेत-खलिहान में, नगर-गांव में व्यापक धरातल पर व्यक्ति की अनुभूतियों को

स्वर देती है। मर्यादा और आस्था इस साधारण व्यक्ति के लिए कोई मायने नहीं रखती-

ज्ञान और मर्यादा
उसका क्या करें हम
उनको क्या पीसेंगे ॥
या उनको खाएंगे ?
या उनको ओढ़ेगे ?
या उनको बिछाएंगे ॥

५. विवेक और विचार की कविता:

नई कविता में केवल भाव-बोध की अंधी श्रद्धा नहीं है बल्कि उसमें तर्क बुद्धि, विवेक और विचार है। डॉ.लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में -उसकी प्रकृति है प्रत्येक सत्य को विवेक से देखना,उसके परिप्रेक्ष्य में प्रयोग के माध्यम से निष्कर्ष तक पहुँचना। बाह्य स्थितियों के प्रति सतर्क और सचेत होकर कवि मानसिक विश्लेषण की ओर बढ़ता है-- मैं खुद को कुरेद रहा था।

अपने बहाने उन तमाम लोगों की असफलताओं को
सोच रहा था जो मेरे नजदीक थे
इस तरह साबुत और सीधे विचारों पर
जमी हुई काई और उगी हुई घास को
खरोंच रहा था, नोच रहा था

६. विसंगतियों का बोध:

नई कविता मानव-नियति को लेकर उसकी विसंगतियों के प्रति जागरुक रहती है। भारतीय राजनीति में निरंतर जो विसंगतियां उभरी हैं, सामाजिक और आर्थिक धरातल पर जो विरोधाभास आया है,उसे यह कविता मोह भंग की स्थिति में उजागर करती है। यही कारण है इसमें आक्रोश, नाराजगी, घृणा और विद्रोह उभर आता है। आक्रोश के साथ निषेध के तेवर भी इसमें देखे गए हैं:

आदमी को तोड़ती नहीं हैं
लोकतांत्रिक पद्धतियाँ
केवल पेट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे-धीरे अपाहिज
धीरे-धीरे नपुंसक बना लेने के लिए
उसे शिष्ट राजभक्त देश-प्रेमी नागरिक
बना लेती हैं

७. द्वंद्व और संघर्ष:

नई कविता का आत्मसंघर्ष काव्यात्मक बनावट में सामाजिक बुनियादी मुद्दों को उठाता है। आज की व्यवस्था में और उस व्यवस्था से जुड़े हुए प्रश्नों में कविता संघर्ष का मार्ग ढूंढ़ती है। उसका धरातल भी व्यापक है । यह संघर्ष आत्मीय प्रसंगों में भी उभरता है । उसमें सामाजिक और मानवीय व्यापार,संदर्भ उभरते हैं । ये कविताएँ विषमता से जूझती हैं और नया रास्ता सुझाने का प्रयास करती हैं। परिस्थितियों को बदलने और उनसे बाहर निकलने की छटपटाहट इनमें देखी जाती है। वह समस्याओं को पहचानती है--

जब भी मैंने उनसे कहा है कि देश शासन् और

राशन....उन्होंने मुझे रोक दिया है

वे मुझे अपराध के असली मुकाम पर

उंगली रखने से मना करते हैं

८. परिवेश संबंधी सत्यों का प्रकटन:

नई कविता ने समग्र जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को उनके जीवंत परिवेश में व्यक्त किया,विषय या अनुभूति के आभिजात्य और भिन्न-भिन्न दृष्टियों या वादों से बने हुए उनके घेरों को तोड़कर व्यक्त द्वारा भोगे हुए जीवन के हर छोटे-बड़े सत्य को प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से उभारने में ही कविता की सार्थकता समझी । बदलते हुए संदभों में परिवेशगत परिवर्तन केवल नगर के जीवन में ही नहीं आए,बल्कि इस नगरीय यांत्रिकता का दबाव गांव के जीवन पर भी पड़ा। उस ओर भी मूल्यों का विखंडन हुआ और जिंदगी में तनाव बढ़ा। परिवेश के परायेपन से उपजी पीड़ा नास्टेलजिया के रूप में प्रकट हुई । नई सभ्यता ने केवल शहर के आदमी को ही नहीं तोड़ा, बल्कि गांव के आदमी को भी गांव से बेगाना कर दिया:

याद आते घर

गली चौपाल, कुत्ते, मेमने, मुर्गे, कबूतर

नीम तरु पर

सूख कर लटकी हुई कड़वी तुरई की बेल

टूटा चौंतरा

उखड़े ईंट पत्थर

बेधुली पोशाक पहने गांव के भगवान मंदिर

आज की शहरी रोजमर्रा जिंदगी की अनुभूतियों को बड़ी सहजता से अभिव्यक्ति नई कविता में मिली है। उन अभिव्यक्तियों को जो पल-पल के अंतर्विरोधों की उपज हैं। ऊपर से रंगीन दिखाई देने वाली शहरी जिंदगी व्यक्ति को कितना विदेह कर देती है और विदेह होकर भी आज का आदमी दर्द से छुटकारा नहीं पाता और वह केवल दर्द बनकर रह जाता है, भारत भूषण अग्रवाल की एक कविता की कुछ पक्तियाँ देखिए-

और तब धीरे-धीरे ज्ञान हुआ

भूल से मैं सिर छोड़ आया हूं दफ्तर में

हाथ बस में ही टँगे रह गए

आँखें जरूर फाइलों में ही समा गई

मुँह टेलिफोन से ही चिपटा-सटा होगा

और पैर, हो-न-हो

क्यू में रह गए हैं

तभी तो मैं आज

घर आया हूँ विदेह ही

देह हीन जीवन की कल्पना तो

भारतीय परंपरा का सार है

पर उसमें क्या यह थकान भी शामिल है

जो मुझ अंगहीन को दबोचे ही जाती है

९. यथार्थ की पीड़ा का चित्रण:

नई कविता वास्तव में व्यक्ति की पीड़ा की कविता है। प्रयोगवादी कविता में जहाँ व्यक्ति के आंतरिक तनाव और दुंद्वों को उकेरा गया है वहीं नई कविता में वह व्यापक सामाजिक यथार्थ से जुड़ता है। जिंदगी की मारक स्थितियों को, उसकी ठोस सच्चाइयों को और राजनीतिक सरोकारों को यह कविता भुलाती नहीं है; पर यह न तो उत्तेजना बढ़ाती है और न ही कवि भावुकता का शिकार होता है। अपने अनुभव के सत्य को कवि बाहर के संसार के सत्य से भी जोड़ता है। इससे नई कविता का काव्यानुभव पुरानी कविता के काव्यानुभव से अलग तरह का हो जाता है:

एकाएक मुझे भान होता है जग का

अखबारी दुनिया का फैलाव

फंसाव, घिराव, तनाव है सब ओर

पत्ते न खड़के

सेना ने घेर ली हैं सड़कें

१०. व्यंग्य के तेवर:

नई कविता ने व्यंग्य के तेवर को अधिक पैना और धारदार बनाया। समस्याओं को समझकर उसने उस पर व्याख्यान करने की अपेक्षा उसे कसे हुए सीधे शब्दों में प्रकट किया। यह व्यंग्य भी विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति पाता है और इसका क्षेत्र भी व्यापक हो जाता है। किसी भी क्षेत्र में हो रहे शोषण फिर चाहे वह राजनीतिक हो या धार्मिक व्यक्ति, अथवा

समाज, आदर्श हो या यथार्थ सब पर व्यंग्य की पैनी धार चली है...

बड़े-बड़े आदर्श वाक्यों को
स्वर्णक्षरों में लिखवाकर
अपने ड्राइंगरूम में सजा दो
उन्हें अपनी
आस्था, श्रद्धा एवं निष्ठा का अर्घ्य दो

११. नई कविता वादमुक्त कविता:

नई कविता किसी वाद से बंधी नहीं है। यह इस कविता की बहुत बड़ी विशेषता है। शायद यही कारण है कि प्रगतिवादियों ने भी नई कविता की धुन में कविता लिखनी शुरू कर दी। रांगेय राघव जैसा प्रगतिशील कवि नई कविता के युग में अपनी काव्य धारा को अक्षुण्ण रखते हुए नई कविता की शब्द योजना में कविता लिखता है...

ठहर जा जालिम महाजन
तनिक तो तू खोल वह मदिरा विघूर्णित आँख अपनी
देख, कहाँ से लाया बता सम्पत्ति
कहां से लाया बता साम्राज्य।

१२. नारी के प्रति दृष्टिकोण:

नारी के प्रति छायावादी कवियों की दृष्टि सम्मानपूर्ण, स्नेह- वात्सल्यपूर्ण एवं श्रद्धापूर्ण थी। प्रसाद, निराला और पंत ने नारी को अत्यधिक आदर और गौरव के साथ स्मरण किया है- नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत पग नख तल में ...आदि पंक्तियों में प्रसाद ने नारी को जो उच्च स्थान दिया, वह इस युग के कवियों ने नहीं दिया। नर नारी के बीच सृष्टि के आरम्भ से चले आ रहे संबंधों पर रघुवीर सहाय की टिप्पणी-

नारी बिचारी है, पुरुष की मारी है
तन से श्रुधित है, मन से मुदित है
लपक झपककर अंत में चित्त है

१३. सौंदर्यबोध:

नई कविता का सौंदर्य-शास्त्र और उसका सौंदर्य-बोध निश्चय ही अनेक संदर्भों में व्यापक हुआ है। उसमें सच्चाई,टकराव और मोहभंग की स्थिति नई चेतना के रूप में आई है। यह कविता आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों से भी अब परहेज नहीं करती। इसमें फिर से पेड़, पौधे, पक्षी, बच्चे, मां, गांव, शहर, वतन, रोमांस, प्रेम, प्रकृति-चित्रण आदि का समावेश हुआ। इससे अनुभूति को नए पंख लगे और उसने काव्य में नए रूप धरे।

१४. भाषा:

नई कविता भाषा के क्षेत्र में भी आधुनिक-बोध के साथ बढ़ती है और नई होती है। नया कवि पुरानी भाषा में नई संवेदना को अभिव्यक्ति के लिए समर्थ नहीं पाता,इसलिए वह भाषा के नए रूप को गढ़ने के लिए तत्पर रहता है:

शब्द अब भी चाहता हूँ

पर वह कि जो जाए वहाँ जहाँ होता हुआ

तुम तक पहुंचे

चीजों के आर-पार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक

स्वच्छंद अर्थ दे

नई कविता की इस नई भाषा में गद्यात्मकता के प्रति विशेष लगाव बन गया है। कहीं-कहीं तो कविता गद्य का प्रतिरूप लगती है। अलंकृत भाषा को नई कविता में बहिष्कृत किया गया है। सपाट शब्दों में अभिव्यक्ति से इसमें सपाटबयानी आ गई है तो कहीं खुरदरी हो गई है। कहीं-कहीं तो कविता सिर्फ ब्यौरा बन कर रह गई है। नई कविता के कुछ कवियों ने स्वयं को मौलिक और उत्साही साबित करने के लिए स्थापित मूल्यों को भी अस्वीकार करने में अभिधा शैली से अभिव्यक्ति का दंभ भरा है। अशोक वाजपेयी ने ऐसे कवियों की सतही मुद्रा, फिकरेबाजी, चालू मुहावरेदानी और पैगम्बराना अंदाज को समर्थ कविता के लिए घातक बताया है; उन्ही के शब्दों में-- रचनात्मक स्तर पर भाषा के संस्कार के प्रति,ठसकी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति, उदासीनता आयी है और पारमपरिक अनुगूंजों और आसंगों से कवियों के अज्ञान और अरुचि के कारण,कट जाने से काव्य भाषा में ज्यादातर युवा कवियों की भाषा में सपाटता,सतहीपन और मानवीय दरिद्रता आयी है। इस संदर्भ में मणि मधुकर की कविता का एक अंश...

श्रद्धा, सम्मान और प्रेरणा जैसे शब्दों को

पान की पीक के साथ थूकता हूँ मैं

मंत्रिमंडलों में बलात्कार करनेवाले लोगों पर

मेरे थूक का रंग लाल है,

काश, मेरे खून का रंग भी लाल होता

यद्यपि नई कविता का शब्द संसार बहुत व्यापक है। इसमें संस्कृत,हिंदी,उर्दू तथा प्रांतीय भाषाओं और बोलियों के साथ-साथ अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग सामान्य हो गया है। कई जगह नए विशेषणों तथा क्रियापदों का निर्माण किया गया है;जैसे- रंगिम,चंदीले, लम्बायित, उकसती, बिलमान, हरयावल आदि। विज्ञान, धर्म, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों से उसने शब्दों का चयन किया है। आम आदमी के स्वर,चिर-परिचित शब्द आज की कविता में देखे जा सकते हैं। जन भाषा में सूक्तियों, लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग कभी व्यंग्य प्रदर्शन के लिए तो कभी आम आदमी का आक्रोश व्यक्त करने के लिए। लोकगीतों व लोकधुनों के आधार पर भी कविता की रचना की गई। फिर भी इस बात से

इनकार नहीं किया जा सकता कि नई कविता ने भाषा को अपनी सुविधा के अनुरूप तोड़ा-मरोड़ा है,यह भाषा के साथ खिलवाड़ है।

१५. प्रतीक:

नई कविता ने नवीन और प्राचीन दोनों तरह के प्रतीक चुनें हैं। परम्परागत प्रतीक नए परिवेश में नए अर्थ के साथ प्रयुक्त हुए हैं। नए प्रतीकों में भेड़, भेड़िया, अजगर जैसे शब्दों को जनता, सत्ताधारी वर्ग, व्यवस्था आदि के प्रतीक रूप में प्रयोग किया गया है। पृथ्वी, पहाड़, सूरज, चाँद, किरण, सायं, कमल आदि परम्परागत अर्थ से हट कर नए अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। मुक्तिबोध के प्रतीक वैज्ञानिक जीवन से लेकर आध्यात्मिक क्षेत्र तक फैलें हैं। ओरांग-उटांग तथा ब्रह्मराक्षस जैसे प्रतीक बहुत ही सटीक और समर्थ हैं। पीपल का वृक्ष भी उनका विशेष प्रिय प्रतीक रहा। मौसम शब्द भी प्रतीक बन कर वर्तमान परिवेश को अर्थ देता है--

छिनाल मौसम की मुर्दार गुटरगूं

१६. बिंब:

नई कविता में बिंब कविता की मूल छवि बन गए हैं, अपनी अंतर्लयता के लिए इसमें बिंबबहुलता हो गई है। कवियों ने इन बिंबों को जीवन के बीच से चुना है व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह के बिंब इस कविता में हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक बिंब नए अर्थ और संदर्भ में लोक-संपुक्ति के साथ उदित हुए हैं। शहरी कवि के बिंब विशेषतया नागरिक जीवन के और ग्रामीण जीवन के संस्कारों से युक्त कवि के बिंब विशेषतया गांव के होते हैं। जीवन के नए संदर्भों में उभरने वाले वाली अनुभूतियों,सौंदर्य-प्रतीतियों और चिंतन आयामों से संपृक्त बिंब नई कविता ग्रहण करती है...

शाखों पर जमे धूप के फाहे
गिरते पत्तों से पल ऊब गये
हकाँ दी खुलेपन ने फिर मुझको
लहरों के डाक कहीं डूब गये

- केदारनाथ सिंह

बँधी लीक पर रेलें लादे माल
चिहँकती और रंभाती अफराये
डागर सी

- अश्वोय

ठिलती-चलती जाती हैं
नदिया में बाढ़ आयी

ढूह सब ढह गये

हरियाये किनारे,सूखे पत्ते सब बह गये

रस में ये डूबे पल

कानों में कह गये

तपने से डरते थे

इसलिए देखो

तुम आज सूखे रह गये

- भारत भूषण अग्रवाल

१७. उपमान:

नई कविता में जहाँ अलंकारों का बहिष्कार हुआ, वहीं नए उपमान के प्रयोग से उसका शिल्प नव्य चेतना को यथार्थ अभिव्यक्ति देने में समर्थ हो गया है। लुकमान अली और मोचीराम जैसी लंबी कविताओं के शीर्षक ही उपमान बनकर आते हैं और आदमी की व्यथा का इतिहास प्रकट करते हैं। नई कविता में आटे की खाली कनस्तर जैसी चीजें भी उपमान बनती हैं:

प्यार, इश्क खाते हैं ठोकर

आटे के खाली कनस्तर से

अपने आस-पास फैले हुए वातावरण और वस्तुओं को कवि उपमान बनाकर प्रस्तुत करता है:

उंगलियों में अहसास दबा है

सिगरेट की तरह

तथा सन्नाटा

लटकी हुई कमरे की कमीज और हैंगर सा

झूल रहा था

१८. रस:

नई कविता में रस का मूल बिम्बविधान है। नई कविता के सृजेता कवि बिंब विधान में निश्चय ही समर्थ माने जा सकते हैं और उनका यह सामर्थ्य आज बुद्धि समन्वित होकर परम्परा से कटे हुए रस भावों से संयत होकर विशिष्ट एवं यथेष्ट रसों की सृष्टि कर रहा है। कुछ आलोचकों ने इसे बुद्धि रस की संज्ञा प्रदान की है:

पहले लोग सठिया जाते थे
अब कुर्सिया जाते हैं
दोस्त मेरे !
भारत एक कृषि प्रधान नहीं
कुर्सी प्रधान देश है

- डॉ. मदनलाल डागा

१९. छंद:

छंदों के प्रति विद्रोह प्रयोगवाद से ही आरंभ हो गया था और नई कविता ने विद्रोह की इस आग को ठंडा नहीं होने दिया। हिंदी कविता आज मुक्तक छंद को ही अपनाती है। लेकिन इसमें तुकांत के प्रति युवा कवियों में आकर्षण बढ़ा है। छंद के प्रति आग्रह न होने के बावजूद भी नई कविता में प्रवाह और गति दिखाई पड़ती है। नाद सौंदर्य इसमें एक अंतःसंगीत उत्पन्न करता है, अर्थ के धरातल पर इसमें एक अंर्तलयता की गूंज उभरती है। कभी-कभी इन कविताओं में मात्राओं का मेल दिखाई पड़ता है लेकिन इससे इन्हें छंदो बद्ध नहीं माना जा सकता। वस्तुतः नई कविता मुक्तक छंद में नई संवेदना और नए विचार की सटीक अभिव्यंजना की एक कोशिश है।

७.४ सारांश

नई कविता का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। मुक्तक शैली में प्रयोग के कारण किसी विधान में यह कविता बंधी नही है इसलिए जीवन में आये सभी प्रसंगो का विस्तृत वर्णन कविता में हुआ है। आशा है विद्यार्थी नई कविता की विस्तृतता को इस इकाई के अध्ययन से समझ सके होंगे।

७.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. नई कविता का अर्थ और परिभाषा समझाते हुए इसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

२. नई कविता की प्रवृत्तियों का सौदाहरण वर्णन कीजिए।

७.६ अतिलघुत्तरीय / वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१. नई कविता की कालावधि कब से कब तक मानी गयी है?

उत्तर: सन् १९५२ से १९६०

२. तारसप्तकीय कविता के लिए किसने नई कविता नाम की प्रस्तावना की?

उत्तर: अज्ञेय

३. नई कविता नाम से पत्रिकाओं का प्रकाशन कब से शुरू हुआ?

उत्तर: सन् १९५४

४. तीसरा सप्तक कब प्रकाशित हुआ?

उत्तर: सन् १९५९

५. अमरीका में विगत ५ वर्षों की कविता में प्रगति को 'न्यू पोइट्री' किस विद्वान ने कहा?

उत्तर: डेनाल्ड

७.७ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

८

हिंदी उपन्यास : विकास यात्रा

इकाई की रूपरेखा

८.० उद्देश्य

८.१ प्रस्तावना

८.२ हिंदी उपन्यास : अर्थ एवं परिभाषा

८.२.१ उपन्यास का अर्थ

८.२.२ उपन्यास की परीभाषा

८.३ हिंदी उपन्यास : विकास यात्रा

८.३.१ प्रेमचंद पूर्व उपन्यास

८.३.२ प्रेमचंद युगीन उपन्यास

८.३.३ प्रेमचंदोतर युगीन उपन्यास

८.४ सारांश

८.५ बोध प्रश्न

८.६ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

८.७ संदर्भ ग्रंथ

८.० उद्देश्य

इस इकाई में हम उपन्यास विधा का विस्तृत अध्ययन करेंगें। उपन्यास विधा का विकास क्रम के सभी युगो के उपन्यास और उनके प्रकार व विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

८.१ प्रस्तावना

भारत में कथा आख्यान की परंपरा बड़ी प्राचीन है परंतु उपन्यास 'नवीन' या 'नूतनता' के अर्थ में आधुनिक है। इसका उदय यूरोप में हुआ। जिसका प्रभाव बांग्ला' से हिन्दी में आया, उन्नीसबी शताब्दी के प्रारंभ में नवजागरण के कालखंड में सन् १८७७ को श्रध्दाराम फिलौरी ने 'भाग्यवती' का लेखन किया परंतु हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' ने अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (१८८२) को माना है। 'भाग्यवती' के भी पीछे जाकर कुछ विद्वान 'देवरानी-जेठानी की कहानी' (१८७०), वामा शिक्षक (१८७२), को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते है। इस प्रकार हिंदी साहित्य के प्रथम उपन्यास को लेकर भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं। अस्तु हिंदी उपन्यास विधा में प्रेमचंद का नाम सर्वोपरि है इसलिए हिंदी के उपन्यासों को प्रेमचंद के आधार पर बांटा गया है।

८.२ हिंदी उपन्यास : अर्थ एवं परिभाषा

८.२.१ उपन्यास का अर्थ:

उपन्यास शब्द का अर्थ होता है सामने रखना। उपन्यास शब्द 'अस' धातु और 'नि' उपसर्ग से मिलकर बनता है। इसमें न्यास शब्द का अर्थ है धरोहर। उपन्यास शब्द दो शब्दों उप+न्यास से मिलकर बना है। 'उप' अधिक समीप अर्थात् वाची उपसर्ग है। हिन्दी मे उपन्यास शब्द कथा साहित्य के रूप में प्रयोग होता है। वहीं बगंला भाषा में उसे 'उपन्यास', गुजराती में 'नवल कथा', मराठी में 'कादम्बरी' तथा उर्दू में 'नावले' के नाम से जाना जाता है। अत: वे सभी ग्रंथ उपन्यास हैं, जो कथा सिद्धान्त के कम ज्यादा नियमों का पालन करते हुए मानव की सतत्, संगिनी, कुतूहल, वृत्ति को पात्रों तथा घटनाओं को काल्पनिक, यथार्थ तथा ऐतिहासिक संयोग द्वारा प्रदर्शित करते हैं। उपन्यास में एक ही व्यक्ति के संपूर्ण जीवन की कथा होती है। अर्थात् एक ही व्यक्ति को केंद्र में रखकर सम्पूर्ण समस्याओं का विवरण लेखक द्वारा किया जाता है अतएवं उपन्यास सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांप्रदायिक, ऐतिहासिक, मिथक, प्रतीकात्मक, पात्र केंद्रित, समस्या प्रधान आदि के साथ-साथ किसी न कीसी विचारधारा से वशीभूत रहती है।

८.२.२ उपन्यास की परिभाषा:

अ) भारतीय लेखक:

१. **डॉ. श्यामसुन्दर दास:** "उपन्यास मनुष्य जीवन की काल्पनिक कथा है।"

२. **मुंशी प्रेमचन्द्र:** ''मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना तथा उसके चरित्रों को स्पष्ट करना ही उपन्यास का मूल तत्व है।''

३. **आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी:** ''उपन्यास से आजकल गद्यात्मक कृति का अर्थ लिया जाता है, पद्यबद्ध कृतियाँ उपन्यास नहीं हुआ करते हैं।''

४. **डॉ. भगीरथ मिश्र:** ''युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली मे स्वाभाविक जीवन की पूर्ण झाँकी को प्रस्तुत करने वाला गद्य ही उपन्यास कहलाता है।''

५. **बाबू गुलाबराय:** ''उपन्यास कार्य कारण श्रृंखला मे बंधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें वास्तविक व काल्पनिक घटनाओं द्वारा जीवन के सत्यों का उद्घाटन किया है।''

६. **डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी:** "उपन्यास आधुनिक युग की देन है। नए गद्य के प्रचार के साथ-साथ उपन्यास प्रचार हुआ है। आधुनिक उपन्यास केवल कथा मात्र नहीं है और पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं की भांति कथा-सूत्र का बहाना लेकर उपमाओं, रूपकों, दीपकों और श्लेषों की छटा और सरस पदों में गुम्फित पदावली की छटा दिखाने का कौशल भी नहीं है। यह आधुनिक वैक्तिकतावादी दृष्टिकोण का परिणाम है।"

७. **प्रेमचंद:** मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। इस दृष्टि

से उपन्यास की कथा मानव जीवन से जुड़ी और उसके व्यक्तित्व के रहस्यों को खोलने वाली होती है।"

ब) पाश्चात्य लेखक:

१. **विलियम हेनरी हेडसन:** "मानव और मानवीय भावों से तथा क्रियाओं की विस्तृत चित्रावली ने नर एवं नारियों की सार्वकालिक, सार्वदेशिक रुचि ही उपन्यास के अस्तित्व का कारण है।"

२. **डॉ. जे. बी. क्रिस्टले:** "उपन्यास जीवन का विशाल दर्पण है और इसका विस्तार साहित्य के किसी भी रूप से बड़ा है।"

३. **रौल फ्रांस:** "उपन्यास केवल काल्पनिक गद्य नहीं है वरन वह मानव जीवन का गद्य है। ऐसी प्रथम कला जिसने सम्पूर्ण मानव को लेने और उसे अभिव्यंजना देने का प्रयास किया है।"

८.३ हिंदी उपन्यास : विकास यात्रा

८.३.१ प्रेमचंद पूर्व उपन्यास:

भारतेंदु-युग में लेखकों को उपन्यास-रचना की प्रेरणा बंगला और अंग्रेज़ी के उपन्यासों से प्राप्त हुई। अत: अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' माना जाता है, जो सन् १८८२ में प्रकाशित हुई थी। इसके पूर्व श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवती' (१८७७) शीर्षक से लघु सामाजिक उपन्यास लिखा था। 'भाग्यवती' की रचना के पूर्व बंगला में सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों ही प्रकार के अच्छे उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। हिंदी में मौलिक उपन्यासों की रचना आरंभ होने के पूर्व बंगला उपन्यासों के अनुवादों को लोकप्रियता मिल चुकी थी। हिंदी के भारतेंदु युगीन मौलिक उपन्यासों पर संस्कृत के कथा-साहित्य एवं परवर्ती नाटक-साहित्य के प्रभाव के साथ ही बंगला-उपन्यासों की छाप भी लक्षित की जा सकती है। इस युग के उपन्यासकारों में लाला श्रीनिवासदास (१८५१- १८८७), किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) / बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४), ठाकुर जगन्मोहन सिंह (१८५७-१८९९), राधाकृष्णदास (१८६५-१९०७), लज्जाराम शर्मा (१८६३- १९३१), देवकीनंदन खत्री (१८६१-१९१३) और गोपालराम गहमरी (१८६६-१९४६) उल्लेखनीय हैं। भारतेंदु काल में सामाजिक, ऐतिहासिक तिलस्मी ऐयारी, जासूसी तथा रोमानी उपन्यासों की रचना-परंपरा का सूत्रपात हुआ। यह परंपरा आगे चल कर द्विवेदी युग में अधिक विकसित और पुष्ट हुई।

आलोच्य युग के सामाजिक उपन्यासों में 'भाग्यवती' और 'परीक्षागुरु' के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट-कृत 'रहस्यकथा' (१८७९), नूतन ब्रह्मचारी' (१८८६), और 'सौ अज्ञान एक सुजन (१८९२),) राधाकृष्णदास कृत 'निस्सहाय हिंदू' (१९९०), लम्जाराम शर्मा-कृत तथा धूर्त रसिकलाल' (१९९०) और स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी (१८९९) तथा किशोरीलाल गोस्वामी कृत (त्रिवेणी वा सौभाग्यश्री' (१८९०) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी उपन्यासों का लक्ष्य समाज की कुरीतियों को सामने ला कर उनका विरोध करना और आदर्श परिवार एवं समाज की रचना का संदेश देना है। ये सभी उपन्यास सोद्देश्य लिखे गये

हैं और लेखकों ने प्रायः प्रारंभ में ही अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है। सामाजिक उपन्यासों की तुलना में आलोच्य युग में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गये। इस क्षेत्र में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम ही उल्लेख योग्य है किंतु उनके 'लवंगलता' (१८९०) उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादा देना उचित नहीं है। वस्तुतः इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की आकांक्षा की पूर्ति बकिम के ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवादों से हुई।

तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों की परंपरा देवकीनंदन खत्री (१८६१-१९१३) से मानी जाती है। खत्री जी के 'काजर की कोठरी (१९०२), 'अनूठी बेगम' (१९०५), 'गुप्त गोदना' (१९०६), 'भूतनाथ' प्रथम छह (१९०६) आदि उपन्यास उस समय के प्रसिद्ध और चर्चित उपन्यासों में गिने जाते थे। तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों में देवकीनंदन खत्री-कृत चंद्रकांता' (१८८२), 'चंद्रकांता संतति' (चौबीस भाग, १८९६), 'नरेंद्र मोहिनी' (१८९३), 'वीरेंद्र वीर' (१८९५) और 'कुसुमकुमारी' (१८९९) तथा हरेकृष्ण जौहर कृत 'कुसुमलता' (१९९९) उल्लेखनीय है। उस समय तिलस्मी और ऐयारी उपन्यास सामान्य जनता में खूब लोकप्रिय हुए थे। इनसे रहस्य-रोमांचप्रिय सस्ती कल्पना को पुष्टि मिलती थी। साथ ही इस युग के जासूसी उपन्यासों में गोपालराम कृत 'अतलाश' (१८९६) और 'गुप्तचर' (१८९९) उल्लेखनीय हैं। गोपाल राय गहमरी ने लगभग २०० जासूसी उपन्यास लिखे।

जासूसी उपन्यासों में भी घटनाएं रहस्य- रंजित होती थीं, किंतु उन्हें अधिक-से-अधिक विश्वसनीय बनाने की चेष्टा की जाती थी। रोमानी उपन्यासों में ठाकुर जगन्मोहन सिंह का 'श्यामास्वप्न' (१९८८)) उल्लेखनीय है। उपर्युक्त उपन्यासों में सबसे महत्त्वपूर्ण एवं सशक्त धारा उन सामाजिक उपन्यासों की है, जिनका श्रीगणेश 'परीक्षागुरु' से हुआ था। अन्य उपन्यासों का महत्त्व इतना ही है कि उनसे सामान्य जनता में हिंदी की लोकप्रियता बढ़ी। इस युग के सर्वप्रधान उपन्यास-लेखक किशोरीलाल गोस्वामी माने गये हैं। गोस्वामी जी ने लगभग १०० से भी अधिक उपन्यासों की रचना की है। उनकी रचनाओं में मानवीय प्रेम के विविध पक्षों के उद्घाटन में ही अपनी शक्ति का अपव्यय किया। वस्तुतः जीवन के यथार्थ को कला में ढालने वाले उपन्यासों की रचना का वातावरण अभी नहीं बन पाया था। हिंदी साहित्य में बंगला के बहुत से उपन्यासों का अनुवाद भी किया गया, जिसमें बंकिमचंद्र चटर्जी (१८३८-१८९४), रमेशचंद्र दत्त (१८४८-१९०९), तारकनाथ गांगुली (१८४५-१८९१) और दामोदर मुखर्जी (१८५३-१९०७) के उपन्यासों का नाम उल्लेखनीय है।

हिंदी विधाओं मे एतिहासिक उपन्यास की लोकप्रियता रही है। जिस रचना में ऐतिहासिक घटना मूल केंद्र में होती है, उसे ही ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में रखा जाता है। किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जगरामदास गुप्त और मथुराप्रसाद शर्मा आदि लेखक ऐतिहासिक उपन्यासकार की श्रेणी में आते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में गंगाप्रसाद गुप्त की कृति 'नूरजहां' (१९०२), 'कुमारसिंह सेनापति' (१९९३) और 'हम्मीर' (१९०३) आदि उल्लेखनीय हैं। जयरामदास गुप्त कृत 'काश्मीर पतन' (१९०७), 'नवाबी परिस्तान वा साजिद अली शाह' (१९०९), 'भल्का चांद बीबी' (१९०९) आदि तथा मथुराप्रसाद शर्मा कृत 'नूरजहाँ बेगम व जहाँगीर (१९०५) में इतिहास को सुरक्षित रखने की चेष्टा की गयी है।

लज्जाराम शर्मा (१८६३-१९३१) कृत 'आदर्श दंपत्ति' (१९०४), 'बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी' (१९०७), और 'आदर्श हिंदू' (१९१४) तथा किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) के 'लीलावती वा आदर्श सती' (१९०१), 'चपला या नव्य समाज' (१९०३ १९०४), 'पुनर्जन्म या सौतिया डाह' (१९०७), 'माधवी माधव या मदन मोहिनी' (१९०३-१९१०) और 'अंगूठी का नगीना' (१९१८) और अयोध्या सिंह उपाध्याय (१८६५-१९४१) की 'अधखिला फूल' (१९०७), 'ठेठ हिंदी का ठाठ' (१८९९) एवं मन्नन द्विवेदी (१८८४-१९२१) कृत 'रामलाल' (१९१७) आदि में सामाजिक उपन्यासों में सुधारवादी जीवनदृष्टि ही प्रधान है। अत: समाज सुधार के लिए गोस्वामी जी ने सती-साध्वी देवियों के आदर्श प्रेम के साथ ही अवैध प्रेम, विधवाओं के व्यभिचार, वेश्याओं के कुत्सित जीवन और देवदासियों की विलासलीला का भी चित्रण किया है और उनका उद्देश्य नारकीय फुलित जीवन के दुष्परिणाम दिखा कर लोगों को उच्च नैतिक जीवन में प्रवृत्त करना था। जिसमें वे सफल भी हुए। इस प्रकार सामाजिक उपन्यासों का लक्ष्य समाज सुधारना था और इसी प्रेरणा से उपन्यास सम्राट प्रेमचंद साहित्य जगत में अपना पैर जमाने लगे और वे इतना आगे बढ गये कि इस वक्त बात वे सामाज सुधार उपन्यास की प्रेरणा बन गये। उनके उपन्यास में 'प्रेमा' (१९०७), 'रूठी रानी' (१९०७) और 'सेवासदन' (१९१८) आदि उल्लेखनीय रहे हैं। उन्होंने घटना के स्थान पर चरित्र को उभारने की चेष्टा की, जीवन की वास्तविक समस्याओं को केंद्र में रखा और क्रमशः कथा-प्रसंगों को मध्यवर्ग के तत्कालीन जीवन प्रवाह के साथ जोड़ दिया। प्रेमचंद अंग्रेजी उपन्यासकारों की रचनादृष्टि से परिचित थे और उन्होंने ठीक समय पर हिन्दी उपन्यास को एक नया मोड़ दिया और इस प्रकार उन्होंने अपनी रचना में चित्रित पात्र को जिवंत रूप प्रदान किया है।

८.३.२ प्रेमचंद युगीन उपन्यास:

हिंदी उपन्यास साहित्य में 'सेवासदन' (१९१८) का प्रकाशन न केवल प्रेमचंद (१८८०-१९३६) के साहित्यिक जीवन की, वरन् हिंदी उपन्यास की भी एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। 'सेवासदन' उनकी पहली प्रौढ़ कृति है, जहाँ से उनके नये औपन्यासिक जीवन का ही नहीं, बल्कि हिंदी उपन्यास के युग का भी प्रादुर्भाव हुआ। 'सेवासदन' के बाद प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' (१९२२), 'रंगभूमि' (१९२५), 'काय' (१९२६), 'निर्मला' (१९२७), 'गबन' (१९३१), 'कर्मभूमि' (१९३३) और 'गोदान' (१९३६) आदि मौलिक उपन्यास प्रकाशित हुए। इस बीच उन्होंने अपने दो पुराने उर्दू उपन्यासों को भी हिंदी में रूपातंरित और परिष्कृत करके प्रकाशित किया। 'जलवए ईसार' का रूपांतर 'वरदान' (१९२१) में प्रकाशित हुआ। पूर्व प्रकाशित हिंदी-रूपांतर 'प्रेमा' अर्थात ये सखियों का विवाह को उन्होंने प्रतिज्ञा' (१९२९) शीर्षक से उसे सर्वथा नये रूप में प्रकाशित कराया। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आरंभ में प्रेमचंद अपने उपन्यास पहले उर्दू में लिखते थे और फिर स्वयं उनका हिंदी-रूपांतर करते थे। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' क्रमशः 'बागरे हुन', 'गोशए-आफ्रिक्त' और 'चौगाने हस्ती' नाम से उर्दू में लिखे गये थे, किंतु प्रकाशित पहले मे हिंदी में ही हुए। वैसे, मूल रूप से हिंदी में लिखित उनका पहला उपन्यास 'कायाकल्प' है। इसके बाद उन्होंने सभी उपन्यासों की रचना हिंदी में की, उर्दू की वैसाखी की ज़रूरत उन्हें अब नहीं रह गयी थी।

प्रेमचंद की रचनाओं में सामयिक समस्याओं पराधीनता, जमींदारों, पूंजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज की

कुप्रथा पर और समाज में नारी की स्थिति, वैश्याओं की जिंदगी, वृद्ध-विवाह, आदि विषय समस्या, सांप्रदायिक वैमनस्य, अस्पृश्यता, मध्यमवर्ग की कुंठाएं आदि ने उन्हें उपन्यास-लेखन के लिए प्रेरित किया था। प्रेमचंद ने एक-एक कर बड़ी बेसब्री से इन समस्याओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपने उपन्यासों में स्थान दिया। 'सेवासदन' में विवाह से जुड़ी समस्याओं तिलक- दहेज की प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, विवाह के बाद घर में पत्नी का स्थान और समाज में वेश्याओं की स्थिति पर रहा। 'निर्मला' में दहेजप्रथा और वृद्धविवाह से होने वाले पारिवारिक विघटन तथा विनाश का चित्रण है। उपन्यास 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में ग्रामीणों को स्थिति का बेबाक चित्रण किया है और 'गोदान' में भी ग्रामीण जीवन और कृषि संस्कृति क वर्णन किया गया है ।अत: ग्रामीण जीवन का इतना सच्चा, व्यापक और प्रभावशाली चित्रण हिंदी के किसी अन्य उपन्यास में नहीं हुआ है, संभवतः वह संसार के साहित्य में बेजोड़ है।

प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों की संख्या दो-ढाई सौ के लगभग है, किंतु सबका उल्लेख न यहाँ संभव है और न आवश्यकता फिर भी इस काल के कम-से-कम दस-बारह उपन्यासकार ऐसे हैं, जिन्होंने किसी-न-किसी रूप में अपनी पहचान कायम की है। विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' (१८९१-१९४६) ने 'मां' और 'भिखारिणी' लिख कर प्रेमचंद का सफल अनुकरण किया था, पर संभवत: इसी कारण लिखने की योग्यता होते हुए भी वे अपनी अलग पहचान नहीं बना सके। प्रेमचंद के अन्य अनुकरणकर्ताओं में चतुरसेन शास्त्री और प्रतापनारायण श्रीवास्तव प्रमुख हैं। चतुरसेन शास्त्री चे आलोच्य अवधि में 'हृदय की परख (१९१८), 'हृदय की प्यास' (१९३२), 'अमर अभिलाषा' (१९३२) और 'आत्मदाह' (१९३७) शीर्षक से उपन्यासों की रचना की, किंतु प्रेमचंद की रचनाशैली से प्रभावित होने पर भी उन्होंने उसे कौशिक जी की भांति एकांततः ग्रहण नहीं किया है। यही कारण है कि परवर्ती युग में उनकी उपन्यासकला पर्याप्त रूप से भिन्न आयाम ग्रहण कर सकी। प्रतापनारायण श्रीवास्तव कृत 'विदा' (१९२९) और 'विजय' (१९३७) आदर्शवादी उपन्यास हैं 'विदा' में नागरिक उच्चवर्गीय समाज का चित्रण है और 'विजय' में अभिजातवर्गीय विधवा जीवन की समस्याएं चित्रित हैं। रचनाशैली की दृष्टि से ये उपन्यास प्रेमचंद के कहीं अधिक समीप हैं। देवनारायण द्विवेदी (जन्म १९९७) के 'कर्तव्याघात', 'प्रणव', 'पश्चात्ताप' और 'दहेज' तथा अनूपलाल मंडल कृत 'निर्वासिता' (१९२९). भी प्रेमचंद की परंपरा में लिखित औपन्यासिक रचनाएं हैं। वैसे, इस धारा के अन्य उपन्यासकारों में प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त' और जगदीश झा 'विमल' का भी उल्लेख किया जा सकता है।

'कालक्रम की दृष्टि से देखें तो सबसे पहले शिवपूजन सहाय (१८९३- १९६३) ने हिंदी उपन्यास को प्रेमचंद से भिन्न मार्ग पर ले जाने का प्रयास किया। उनका 'देहाती दुनिया' (१९२६) शीर्षक उपन्यास प्रचलित रूढ़ि को तोड़ने की दिशा में एक साहसिक कदम था किंतु शायद यह कदम समय से पहले उठा लिया गया। प्रेमचंद-युग के समाज सबसे और इसीलिए सबसे बदनाम उपन्यासकार हुए बैचेन शर्मा 'उग्र', जिन्होंने 'चंद हसीनों के खुद (१९२७), 'दिल्ली का दलाल' (१९२७), 'बुधुआ की बेटी' (१९२८), 'शराबी' (१९३०) आदि उपन्यासों में समाज की बुराइयों को बड़े ही साहस के साथ, किंतु सपाटवयानी के रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने यह के उस वर्ग को अपने उपन्यासों का विषय बनाया, जिसे दलित या पतित वर्ग कहते हैं और उसके चित्रण में उन्होंने किसी प्रकार के 'शील' या 'अभिजात शिष्टता का परिचय नहीं दिया। इस कारण उनके उपन्यासों में एक ओर सच्चाई

अपने नग्न रूप में आयी है, तो दूसरी ओर 'परचेबाज़ी' के निकट पहुंच जाती है जो किसी कृति को कलारूप में परिणत नहीं होने देती। उपन्यासकार 'ऋषभचरण जैन' ने 'उग्र' की भांति तत्कालीन समाज के 'वर्जित विषयों' पर 'दिल्ली का कलंक', 'दिल्ली का व्यभिचार', 'वेश्यापुत्र', 'रहस्यमयो' आदि उपन्यासों की रचना की और अनूपलाल मंडल ने पत्रात्मक प्रविधि में 'समाज की वेदी पर ' और 'रूपरेखा' शीर्षक उपन्यासों का प्रणयन किया। साथ ही जयशंकर प्रसाद का उपन्यास 'कंकाल' (१९२९) और 'तितली' (१९३४) भी चर्चा के विषय बने। इनमें से 'कंकाल' ही विशेष उल्लेखनीय है। 'तितली' में ग्रामीण और कृषक जीवन का सामान्य औपन्यासिक फैलाव मात्र है। 'कंकाल' ही विशिष्टता यह है कि इसमें प्रसाद ने समाज की त्याज्य, अवैध और अज्ञातकुलशील संतानों की कथा कही है। उपन्यास 'तितली' पढते हुए ऐसा आभास होता है कि उसमें 'कंकाल' के आगे की कथा है। जबकि दोनों उपन्यास भिन्न-भिन्न कथा और समस्या को उल्लेखित करते हैं।

कथाकार 'जैनेंद्र' (१९०५-१९८८) की 'परख' (१९२९), 'सुनीता' (१९३५) और 'त्यागपत्र' (१९३७) में मनोविश्लेषणवाद अधिक मात्रा में दिखायी देता है।उनके उपन्यासों की कहानी अधिकतर एक परिवार की कहानी होती है और वे 'शहर की गली और कोठरी की सभ्यता' में ही सिमट कर व्यक्तिपात्रों की मानसिक गहराइयों में प्रवेश करने की कोशिश करते हैं। जैनेंद्र की अगर कोई त्रुटि है, तो केवल यह कि ये अपने पात्रों को पहेली बना कर छोड़ देते हैं और पाठक उस मनोवैज्ञानिक पहेली को सुलझाने के असफल प्रयत्न में उलझा रह जाता है। 'परख' की भांति 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' भी वयस्क और संवेदनशील पाठकों के लिए लिखे गये उपन्यास हैं, विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से। 'त्यागपत्र' में समूची कथा एक पात्र विशेष के अवलोकनविंदु से प्रस्तुत की गयी है, जो निश्चय हो नाटकीकरण की विकसित पद्धति है। कथ्य के अनुरूप उनकी भाषा में भी नवीनता है। 'सादगी' उनकी भाषा की भी विशेषता है, पर वह प्रेमचंद की भाषा की सादगी से भिन्न है। इस काल के अन्य प्रमुख उपन्यासकारों में 'भगवतीचरण वर्मा' (१९०३), 'राधिकारमणप्रसाद सिंह' (१८९०), 'सियारामशरण गुप्त' (१८९५), 'भगवतीप्रसाद वाजपेयी', 'वृंदावनलाल वर्मा' (१८८९), 'राहुल सांकृत्यायन' (१८९३), 'सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (१९००) आदि उल्लेखनीय हैं। भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' (१९३४) की रचना कर पाठकों के बीच पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की थी, पर उपन्यास में जीवन की धड़कन न होने के कारण इसका कोई स्थायी मूल्य न हो सका। सन् १९३६ में इनका 'तीन वर्ष' नामक उपन्यास छपा, जो अपनी 'अनुपंकिल' भावुकता के कारण पाठकों में काफी लोकप्रिय हुआ राधिकारमणप्रसाद सिंह ने 'राम रहीम' (१९३७) में कतिपय सामाजिक पहलुओं का उद्घाटन किया, पर उनका लगभग सारा ध्यान भाषा को 'चुलबुलाहट' से युक्त बनाने में ही लगा रहा।

सियारामशरण गुप्त-कृत 'गोद' (१९३२), 'अंतिम आकांक्षा' (१९३४) और 'भारी' (१९३७) गांधी दर्शन पर आधारित मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास हैं, जिनमें क्रमशः लांछनाग्रस्त निरपराध व्यक्तियों की मनोव्यथा, घरेलू नौकरों की अनुकरणीय मर्यादा और नारी समस्याओं के निराकरण के लिए नये-पुराने मूल्यों के समन्वय पर बल दिया गया है। भगवतीप्रसाद बाजपेयी के उपन्यासों 'प्रेमपंच' 'मीठी चुटकी', 'अनाथ पत्नी', 'त्याग' 'निमा' आदि में मध्यवर्गीय पारिवारिक सामाजिक जीवन का मनोविश्लेषणपरक चित्रण मिलता है। अपने पात्रों के संदर्भ में जीवन की उपलब्धि- अनुपलब्धियों का तटस्थ, व्यावहारिक और कहीं-कहीं भावुकतापूर्ण प्रस्तुतिकरण उल्लेखनीय विशेषताएं हैं। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

रचित 'अप्सरा' (१९३१), 'अलका' (१९३३), 'प्रभावती' (१९३६) और 'निरुपमा' (१९३६) उपन्यास भले ही प्रसाद के कथा-साहित्य की भांति विषय निरूपण और शैली दोनों की दृष्टि से उनकी कवि-चेतना से प्रभावित हैं, किंतु इनके उल्लेख के बिना इस काल के उपन्यास साहित्य का विश्लेषण अधूरा रहेगा। जहां प्रेमचंद मे हिंदी उपन्यास को प्रथम बार साहित्य का दर्जा प्रदान किया और जैनेंद्र ने उसे 'आधुनिक' बनाया, वहीं प्रसाद, कौशिक, उग्र, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, निराला आदि ने भी अपने-अपने ढंग से उसे समृद्धि प्रदान कर परवर्ती उपन्यासकारों का मार्गदर्शन किया।

८.३.३ प्रेमचंदोतर युगीन उपन्यास:

प्रेमचंद के उपरांत हिंदी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखायी पड़ता है, जिन्हें स्थूल से तीन दशकों में बांटा जा सकता है ; १९५० तक के उपन्यास, १९५० से १९६० तक के उपन्यास और साठोत्तरी उपन्यास। पहला दशक मुख्यतः फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित है, दूसरा, प्रयोगात्मक विशेषताओं से और तीसरा, आधुनिकतावादी विचारधारा से पहले दशक में फ्रायड से प्रभावित हो कर जिस कथा-साहित्य की रचना की गयी, उसकी पृष्ठभूमि जैनेंद्र पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे । जैनेंद्र का प्रत्येक उपन्यास अंतर्विरोधों का उपन्यास बन गया है । यह प्रवृत्ति मनोविज्ञान दार्शनिकता वैयक्तिकता आदि के माध्यम से विविध रूपों में उभरी है । उनके नारीपात्र यदि एक और समाज की मर्यादाओं को बनाये रखना चाहते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने अस्तित्व की पहचान भी करना चाहते हैं । ऐसी स्थिति में आत्मयातना के अतिरिक्त और कोई राह शेष नहीं रहती । उनके पात्र समाज को न तोड़ कर स्वयं टूटते हैं, किंतु अपने को तोड़ कर किसी को निर्मित नहीं करते । नियति हारकर, धर्म आदि में अटूट आस्था उनके उपन्यासों को आधुनिक नहीं बनने देती, वे रोमेंटिक 'एगोनी' का रूप ले लेते हैं ।

'अज्ञेय - कृत 'शेखर : एक जीवनी' (१९४१-१९४४) के प्रकाशन के साथ हिंदी-उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ आया । यह रचना 'अज्ञेय' जी ने अमृतसर जेल में बैठकर लिखी थी । इस जेल में उन्होंने अपने जीवन को याद करते हुए ३०० से अधिक पन्ने पेंसिल से लिख डाले । बाद में वही शेखर : एक जीवनी के नाम से प्रकाशित की गयी । इसका मूल मंतव्य है ; स्वतंत्रता की खोज । उसका सर्वप्रथम समावेश इसी उपन्यास में दिखायी देता है । यह खोज अपने को सबसे काट कर नहीं की गयी है, बल्कि अन्य संदर्भों में, यानी मानवीय परिस्थितियों के बीच की गयी है । उसकी तलाश में शेखर अनेक प्रकार के आंतरिक संघर्षों से जूझता और भीतरी तनावों से गुज़रता है, किंतु अपने निषेधात्मक रोमैंटिक विद्रोह को ले कर वह बहिर्मुखी नहीं हो पाता । फलस्वरूप सारा संघर्ष मौखिक हो कर रह जाता है, क्रिया (ऐक्ट) में नहीं बदलता ।

'शेखर : एक जीवनी' के दूसरे खंड में अधिक व्यवस्था है । पहले भाग का विद्रोह सृजन की भूमिका मालूम पड़ता है, क्योंकि इसमें उसका बिखरा व्यक्तित्व संघटित हो कर रचनात्मक बनता है किंतु राष्ट्र, राष्ट्रीयता, भाषा आदि के संबंध में उसके विचार क्रियात्मकता से न जुड़ने के कारण सतही प्रतीत होते हैं । दूसरी ओर शशि और शेखर के संबंध को ले कर जो आपत्तियां उठायी जाती हैं, ये नैतिक अधिक है, वास्तविक कम स्मरण रखना चाहिए कि शेखर विद्रोही है और समाज द्वारा निर्मित प्रतिमान उसे सत्य नहीं हैं। जिस प्रामाणिक

अनुभूति की चर्चा आज की रचनाओं के संदर्भ में की जाती है, वह इस उपन्यास में पहली बार मिलती है । शेखर अपनी अनुभूतियों को निश्छल अभिव्यक्ति देता है, जो परिदृश्य उसके अनुभव के भीतर नहीं आया, वह इस उपन्यास, में भी नहीं आया है। यह शेखर की कमज़ोरी और उपन्यासकार की ईमानदारी है। काल की दृष्टि से भी यह उपन्यास प्रयोगधर्मी है। अज्ञेय के दूसरे उपन्यास 'नदी के द्वीप' (१९५१) को सामान्यतः शेखर की संवेदना का विकास माना जाता है । शेखर और भुवन तथा रेखा और शशि में एक तरह का सादृश्य लगता है, पर इस पर तो नहीं देना चाहिए, 'नदी के द्वीप' को स्वाति कृति के रू अधिक संगत है। नायक 'शेखर' की तुलना में, 'भुवन' की तेजस्विता कृत्रिम, आरोपित और अविश्व है। वह ठीक ढंग से स्थित (सिचुएट) नहीं हो पाता, फलस्वरूप आत्मकेंद्रित और दंभी पन है । 'शेखर : एक जीवनी' की शशि भी 'सिचुएटेड' चरित्र है, पर रेखा कहीं भी संदर्भित नहीं है इसलिए उसकी बौद्धिक ऊंचाई स्वयं नदी का द्वीप है, प्रवाह से अलग 'नदी के द्वीप' का प्रतीक पूर्णतः अर्थवान नहीं बनता, क्योंकि प्रवाह उसे काटता छांटता, उसकी रूपरेखा को बदलता चलता है, कभी-कभी तो उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर देता है। इसके सभी पात्र रेखा पर सीधी सी रेखा पर चलने के कारण बदलाव से नहीं टकराते । 'अपने-अपने अजनबी" (१९६१) अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है, जिसमें एक प्रकार की धार्मिक दृष्टि संपन्नता दिख पड़ती है। पहले दोनों उपन्यासों में यौन कल्प की स्थापना के साथ-साथ उन्होंने मसीहाई दृष्टिकोण भी अपनाया है, 'अपने-अपने अजनवी' इसी की फलश्रुति है । इसमें मुख्यम स्वतंत्रता के चरण की है, जो संत्रास, अकेलेपन, बेगानगी, मृत्युबोध, अजनबीपन आदि से सह ही संयुक्त हो गयी है। स्वतंत्रता को अहंकार से जोड़ कर अज्ञेय ने इसमें अस्तित्ववादी स्वतः के मूल अर्थ को ही बदल दिया है।

कथाकार इलाचंद्र जोशी का पहला उपन्यास 'घृणामयी' सन् १९२९ में ही प्रकाशित हो चुका था, किंतु 'संन्यासी' (१९४१) के द्वारा ही उन्हें उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली। इस उपन्यास में हो पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की विवृत्ति देखी जाती है । संन्यासी के अतिरिक्त उनके 'पर्दे का रानी' (१९४१), 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित' (१९४६), 'मुक्तिपथ' (१९५०), 'जिप्सी', 'जहाज की पंछी' (१९५५), 'ऋतुचक्र', 'भूत का भविष्य' (१९७३) आदि प्रकाशित हो चुके हैं। 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी' और 'प्रेत और छाप' में एबनॉर्मल चरित्रों को लिया गया है । इनके मुख्य पात्र किसी-न-किसी मनोवैज्ञानिकों के शिकार हैं । जब तक उन्हें ग्रंथि का रहस्य नहीं मालूम होता तब तक वे अनेक प्रकार असामाजिक कार्यों में संलग्न रहते हैं, किंतु जिस क्षण उनकी ग्रंथियों का मूलोद्घाटन हो जाता है। 'संन्यासी' में आत्महीनता की ग्रंथि है, तो 'प्रेत और छाया' में इडिपस ग्रंथि और 'पर्दे की रानी' के पात्र भी मानसिक कुंठाओं से ग्रस्त हैं।

उपन्यासकार यशपाल (१९०३) 'दादा कामरेड' में पूंजीवाद, गांधीवाद और क्रांतिकारियों के आतंकवाद का विरोध करते हुए वादा किया गया है। 'देशद्रोही' सन् १९४७ की क्रांति से संबद्ध है। झूठा सच इनका प्रसिद्ध उपन्यास है, जिसे देशव्यापी भ्रष्टाचार के अत्यंत निपुणता से चित्रित करते हुए विश्वसनीय बनाया गया है। किंतु दोनों भागों में कम्युनिष्ट पार्टी को जो तरजीह दी गयी है, वह लेखक की पक्षधरता की सूचक है। अपने इन कमज़ोरियों के कारण 'झूठा सच' को अपेक्षित रचनात्मक ऊंचाई नहीं मिल सकी । फिर भी हिंदी साहित्य के उपन्यास विधा में उसकी ख्याति महानतम श्रेणी में गिनी जाती है।

मार्क्सवादी उपन्यासकार रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का उपन्यास 'चढ़ती धूप' (१९४५), 'नयी इमारत' (१९४६), 'उल्का' (१९४७) और 'मरुप्रदीप' (१९५१) आदि प्रसिद्ध हैं। समाज, संस्कृति और राजनीति के संदर्भ में समकालीन परिवेश के विविध पक्ष को रूपायित करना इन उपन्यासों की मुख्य उपलब्धि है। भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास 'आखिरी दांव' और 'अपने खिलौने अपनी असंगतियों तथा बिखराव के कारण साधारण स्तर के उपन्यास बन कर रह गये हैं, किंतु 'भूले- बिसरे चित्र' (१९५९) से उन्हें प्रतिष्ठा मिली है। इसमें चार पीढ़ियों की परिवर्तमान जीवन-- दृष्टियों की कथा है- सन् १८८५ से १९३० तक। अश्क कृत उपन्यास 'गिरती दीवारें' (१९४७) सर्वोत्तम है। यथार्थवादी परंपरा के उपन्यासों में यह अपना ऐतिहासिक स्थान रखता है। इसके पूर्व यथार्थवादी परंपरा का शायद ही कोई ऐसा उपन्यास हो, जो मध्यवर्ग की विवशता, हार, लाचारी और संघर्ष को वास्तविकता की भूमि पर प्रतिष्ठित कर सका हो। उपन्यास का मुख्य पात्र अमेजन न केवल आर्थिक परिस्थितियों से जूझते हुए अपने आदर्श को तोड़ने के लिए बाध्य होता है, अपितु यह काम कुंठाओं से भी ग्रस्त है। उसकी समस्या आर्थिक उतनी नहीं मालूम पड़ती, जितनी की कामजन्य। फिर भी, यह उपन्यास मध्यवर्गीय नैतिक वर्जनाओं को तोड़ने की प्रेरणा देता है और यही इसकी सफलता का रहस्य है।

अमृतलाल नागर कृत 'तयायी मसनद', 'सेठ यांकमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'एकद नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' (१९७२) उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूंद और समुद्र' इनमें विशेष महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। 'बूंद और समुद्र' क्रमशः व्यक्ति और समाज के प्रतीक हैं। लखनऊ के चौक के रूप में इसमें भारतीय समाज के विभिन्न रूपों, राज नीतियों, आचार-विचारों, जीवनदृष्टियों, मर्यादाओं, टूटती और निर्मित होती हुई व्यवस्थाओं अनगिनत चित्र हैं। इस उफनते हुए समुद्र में व्यक्ति-बूंद की क्या स्थिति है, यह उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य है। उपन्यास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र व्यक्ति और समाज के संघातों को अत्यंत प्रभावशाली ट्रेजेडी है, पर अन्य पात्र वैचारिक अधिक और जीवंत कम बन पड़े हैं। एक दूसरे स्तर पर इसमें आज के बुद्धिजीवी का संकट भी चित्रित किया गया है। 'अमृत और विष' उनका दूसरा महाकाय उपन्यास है। इसमें भी अनेक प्रकार की जीवन स्थितियों, आंदोलनों और रोक रिवाजों के ब्यौरों को अंकित किया गया है। किंतु अपने अतिरिक्त फैलाव के फलस्वरूप यह उपन्यास गहरे जीवन से रिक्त हो कर विवरणात्मक हो गया है। उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, 'मानस का हंस' (१९७२)। इसमें गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त को सफल औपन्यासिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। ऐतिहासिक संदर्भों के अनुरूप तथ्य-संपादन मात्र को शैली न अपना कर इसमें रोमानी कल्पना का भी सहज सन्निवेश किया गया है।

वृंदावन लाल वर्मा की रचना 'झांसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'अहिल्याबाई', 'मायोज शिथिय', 'भुवनविक्रम' आदि ऐतिहासिक उपन्यास है। इनमें 'झांसी की रानी' और 'मृगनयनी' मुख्य हैं। 'झांसी की रानी' में किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों जैसा रोमांस नहीं है, किंतु अत्यधिक तथ्याश्रयी और विवरणात्मक हो जाने के कारण यह उपन्यास इतिवृत्तात्मक हो गया है। इसके विपरीत 'मृगनयनी' में तत्कालीन परिवेश को उसकी समग्रता में आंकलित करने का प्रयास दिखायी पड़ता है। बीच-बीच में ऐसे प्रसंग भी आ गये हैं, जो आज की समस्याओं से भी जुड़ जाते हैं। किंतु, पूरे उपन्यास को इस धरातल पर नहीं

उतारा गया है। हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में दूसरा उल्लेखनीय नाम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचंद्रलेख' और 'पुनर्नवा' के अतिरिक्त उनका एक अन्य 'अनामदास का पोथा' प्रकाशित हुआ है। द्विवेदी जी के उपन्यास इतिहास के तथ्यों पर आधारित नहीं हैं, उनमें कल्पना के आधार पर ऐतिहासिक वातावरण की अर्थवान सृष्टि की गयी है। यह अर्थवत्ता उनके नये ऐतिहासिक दृष्टिकोण की देन है। वे किसी कालखंड को जीवंत रूप में प्रस्तुत करने के साथ-साथ उसे आज की ज्वलंत समस्याओं के साथ भी जोड़ते चलते हैं और इस संदर्भ में ही समग्रतः उनका गंभीर जीवनदर्शन भी प्रतिफलित हो जाता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में उन्होंने मध्यकालीन जड़ता पर प्रहार करते हुए उसे आधुनिक चैतन्य से संपृक्त किया है। अनेक प्रकार की विरोधी धर्म-साधनाओं के कारण समाज अनेकशः विभक्त और खंडित हो चुका था, राजनीतिक स्थिति अस्थिर और चंचल थी। उपन्यासकार ने इन अस्थिरताओं और विघटनों के बीच नये मूल्यों की खोज करने की कोशिश की है सारा समाज एक प्रकार के अवरोध में है भट्टिनी महामाया, निपुणिका, सुचरिता, यहां तक कि वांणभट्ट भी अवरुद्ध है। इसी भांति रांगेय राघव ने 'मुद्दों का टोला' में मोहनजोदड़ो के गणतंत्र का चित्रण किया है। चतुरसेन शास्त्री-कृत 'वैशाली की नगरवधू' भी गणतंत्र से संबद्ध है। इन उपन्यासों की तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि जहां राहुल के उपन्यासों पर मार्क्सवादी जीवनदर्शन सदा उनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को बहुत कुछ धूमिल और असंगतिपूर्ण बना देता है और 'वैशाली की नगरवधू' पर आधुनिक जीवन को लाद कर तत्कालीन इतिहास की प्रामाणिकता को ही संदिग्ध बना दिया गया है, वहीं 'मुर्दों का टीला' में इतिहास और मार्क्सवादी जीवनदर्शन संबंधी उपर्युक्त असंगतियां नहीं मिलतीं।

ग्रामिण उपन्यासों की अपनी अलग पहचान रही है।ग्रामांचल उपन्यास की श्रेणी में आने वाले उपन्यासों को आंचलिक कह कर उन्हें सीमित कर दिया जाता है। रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (१९५२) प्रकाशित हो चुका था, पर इसे आंचलिक नहीं कहा गया, यद्यपि इसमें आंचलिकता का कम रंग नहीं है। रेणु ने अपने उपन्यासों में ग्रामांचल को जो प्रधानता दी है, उसके आधार पर केवल उन्हीं की कृतियों को 'आंचलिक' कहा जाना चाहिए। 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नयी पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन', 'वरुण के बेटे' आदि नागार्जुन के प्रकाशित उपन्यास हैं। ग्रामांचल को आधार बना कर राही मासूम रजा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, हिमांशु श्रीवास्तव आदि ने भी उपन्यास लिखे हैं राही का 'आधा गांव' शिया मुसलमानों की जिंदगी पर लिखा गया पहला उपन्यास है। इसमें भारत-विभाजन के पहले और बाद की ज़िंदगी को उभारा गया है। और टूटन इसमें एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ में चित्रित है, जिन्हें आधुनिकता बोध के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए। पर राष्ट्रीय आकांक्षाओं के संदर्भ में यह उपन्यास तीखा दर्द उभारता है। शिवप्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता-बोध का सन्निविष्ट करने की कोशिश की है। इसमें उस परिवेश का चित्रण है, जिसमें नये-पुराने मूल्यों, नयी-पुरानी पीढ़ी, भिन्न-भिन्न वर्गों और जातियों की टकराहट में सारे मूल्य गड्डमड्ड हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी वैतरणी में घिर जाता है, 'गा चह पार जतन बहु हेरा, पावत नाव न योहित बेरा।' वैतरणी को पार न करने का मतलब है नरक गांव नरक हो गये हैं, जहां अलगाव और टूटन कई स्तरों पर घटित होते हैं वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा समूचे गांव के स्तर पर इस उपन्यास में जिस गांव की परिकल्पना की गयी

है, वह पिछली परिकल्पनाओं से भिन्न है। रामदरश मिश्र-कृत पानी की प्राचीर जल टूटता हुआ तथा 'सूमता हुआ तालाब' और हिंमाशु श्रीवास्तव का 'रथ के पहिये' भी अपने-अपने ढंग से प्रवशाली ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। रामदरश मिश्र का उपन्यास 'जल टूटता हुआ' उत्तरप्रदेश के कछार अंचल की दमघोंट समस्याओं, विसंगतियों, अभावों और आंतरिक संदर्भों को तीव्रता से अभिव्यक्त करने वाली एक सशक्त कृति है। आधुनिकीकरण और बाहरी सभ्यता के संक्रमण के बीच निरंतर बदल रहे गांवों के विभिन्न आयामों को इस उपन्यास में उद्घाटित किया गया है।

आधुनिकता-बोध के उपन्यास यंत्रीकरण, दो महायुद्धों और अस्तित्ववादी चिंतन के फलस्वरूप आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उसे ले कर भी पिछले दशक में उपन्यासों की रचना हुई है। आस्थाविहीन समाज, अनिश्चर्य की स्थिति में लटके हुए इंसान और आत्मनिवासन की अभिव्यक्ति देने की पहल मोहन राकेश ने अपने उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' (१९६१) में की। इसके अनुसार प्रेम कोई शाश्वत उदात्त मूल्य नहीं रह गया है, वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षाएँ और आधुनिक जीवन की सफलताएँ प्रेम की आंतरिक विवशता में दरारें पैदा कर देती हैं उनका दूसरा उपन्यास' आने वाला कल' आधुनिकता से अधिक प्रभावित है। उसका नायक सब कुछ को छोड़ कर या अस्वीकार करके एक निषेधात्मक स्थिति में जा पहुंचता है, पर यह अस्वीकार उसे कहीं भी ले जाने में असमर्थ है और जड़ जीवन को जीने की सड़ांध उसकी नियति हो जाती है।

राजकमल चौधरी का उपन्यास 'मछली मरी हुई' समलैंगिक यौनाचार में लिप्त स्त्रियों की कहानी है। विषयवस्तु के अनोखेपन तथा तटस्थतापरक लेखकीय दृष्टिकोण के कारण इस उपन्यास का अलग अस्तित्व है। इस प्रकार की विषयवस्तु को चुनने पर भी इसमें अश्लीलता नहीं मिलती। श्रीकांत वर्मा-कृत 'दूसरी बार', महेंद्र भल्ला - कृत एक पति के नोट्स', कमलेश्वर-कृत 'डाक बंगला' और 'काली आंधी', गंगाप्रसाद विमल- कृत 'अपने से अलग' आदि उपन्यास भी आधुनिकता की झोंके में लिखे गये हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे मार्क्सवादी ओघ में लिखी गयी रचनाएँ। आज के जीवन-सत्य की आंशिक झलक देते हुए भी इन्हें चुकी हुई संभावनाओं का उपन्यास कहा जायेगा। आधुनिकता के कुछ चुनिंदा नुस्खों, अस्तित्ववादी दर्शन के कुछ मुहावरों, ज्यां जेने, सादे, काम, काका की भंगिमाओं के आधार पर लिखे गये इन उपन्यासों को देखने पर निराशा ही हाथ लगेगी। इनमें मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे' ही ठीक-ठिकाने का उपन्यास माना जायेगा। अपनी विषयवस्तु और तटस्थता में 'मछली मरी हुई' भी विशिष्ट है।

आधुनिकता बोध के उपन्यासों की उपर्युक्त परंपरा में 'लाल टीन की छत (निर्मल वर्मा) और 'आपका बंटी) (मन्नू भंडारी) भी काफ़ी प्रसिद्ध हैं। इनमें कहीं वैयक्तिक, तो कहीं पारिवारिक- सामाजिक विषमताओं का मुखर विरोध मिलता है। इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त भी उपन्यासकारों को एक लंबी कतार है, जिसमें भीष्म साहनी (तमस), रामकुमार भ्रमर, कृष्ण बलदेव, वैद गिरिराज किशोर (जुगलबंदी), शिवानी, कृष्णा सोबती (डार से बिछुड़ी, मित्रो मरजा), उषा प्रियंवदा (पचपन खंभे लाल दीवारें), रमेश बक्षी (अठारह सूरज के पौधे), लक्ष्मीकांत वर्मा, मधुकर गंगाधर, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित (मुर्दाघर), आरिंगपूड़ि बालशौरि रेड्डी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सातवें आठवें दशक की चेतना का प्रतिनिधित्व लक्ष्मीकांत वर्मा के 'एक कटी हुई जिंदगी : एक कटा हुआ काग़ज़ (१९६५): 'टेराकोटा' (१९७१); लक्ष्मीनारायण लाल के 'प्रेम अपवित्र 'नदी', कृष्णा सोबती के 'सूरजमुखी अंधेरे के' (१९७२), 'मित्रो मरजानी' (१९६७); उपेन्द्रनाथ अश्क के 'शहर में घूमता आईना' (१९६३): भारतभूषण अग्रवाल के 'लौटती लहरों की बांसुरी (१९६४); राजेन्द्र यादव के 'अनदेखे अनजान पुल' (१९६३); मन्मथगुप्त के 'शहीद और शोहदे ' (१९७०); फणीश्वरनाथ रेणु के 'जुलूस' (१९६५) 'कितने चौराहे' (१९६६), 'कलंक-मुक्ति' (१९७६); रामदरश मिश्र के जाल टूटता हुआ' (१९६९), 'सूखता हुआ तालाब' (१९७२) ; जगदीशचंद्र के 'धरती धन न अपना' (१९७२) ; भीष्म साहनी के 'कड़ियाँ' (१९७०), 'तमस' (१९७३); उषा प्रियंवदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें' (१९६१), 'रुकोगी नहीं, राधिका' (१९६७) ; मन्नु भंडारी की 'आपका बंटी' (१९७१), 'महाभोज', कमलेश्वर का 'डाक बंगला' (१९६२), 'तीसरा आदमी' (१९६४), 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' (१९६५), 'आगामी अतीत' (१९७६), 'काली आंधी'; प्रयाग शुक्ल के 'गठरी' (१९८६); मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे' (१९६१), 'अंतराल' (१९७२) ; निर्मल वर्मा के 'ये दिन' (१९६४), 'लाल टीन की छत'; गिरिराज किशोर के 'यात्राएं' (१९७१), 'जुगलबंदी', 'चिड़ियाघर', हृदयेश के 'गांत' (१९७०), 'हत्या' (१९७१) गंगाप्रसाद विमल के 'अपने से अलग': मृदुला गर्ग के 'चितकोबरा'; मंजुल भगत, 'लेडी क्लब', जगदंबाप्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' (१९७४); राही मासूम रजा के 'आधा गांव' (१९६६); टोपी शुक्ला, 'हिम्मत जौनपुरी', 'दिल एक सादा काग़ज़ '; श्रीलाल शुक्ल के 'रागदरबारी' (१९६८), 'अज्ञातवास', 'आदमी का जहर'; कृष्णा अग्निहोत्री के 'टपरेवाले'; निरुपमा सेवती के 'बंटता हुआ आदमी' मालती पलूकर के 'इन्नी'; रजनी पनिक्कर के 'महानगर की मीता', 'दूरियां', मेहरुन्निसा परवेज के 'आंखों की दहलीज', 'उसका घर' मालती जोशी के 'पाषाण युग': ममता कालिया के 'येघर'; शशिप्रभा शास्त्री के 'सीढ़ियां'; नरेन्द्र कोहली के 'दीक्षा', 'अवसर'; हरिशंकर परसाई के 'रानी नागमती की कहानी: सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के 'पागल कुत्तों का मसीहा' (१९७७), 'सोया हुआ जल' (१९७७), 'कच्ची सड़क' (१९७८), 'उड़ते हुए रंग' (१९७४), 'अंधेरे पर अंधेरा' (१९८०); मीनाक्षी पुरी के जाने-पहचाने अजनबी' हरिप्रकाश त्यागी के 'दूसरा आदमी लाओ'; श्रीकांत वर्मा के 'दूसरी बार'; सुरेन्द्र तिवारी के 'फिर भी कुछ': प्रभाकर माचवे के 'तीस- चालीस-पचास', 'दर्द के पैबंद', 'किसलिए', 'छूत': विष्णु प्रभाकर के 'स्वप्नमयी' रवीन्द्र कालिया के ख़ुदा सही सलामत है'; नरेन्द्र कोहली के 'युद्ध' (दो भाग), 'जंगल की कहानी', 'अवसर', 'साथ सहा गया दुःख', 'अभिज्ञान'; नासिरा शर्मा के 'सात नदियां एक समुंदर'; यादवेन्द्र शर्मा 'चंद्र' के 'हजार भेड़ों का सवार' राजी सेठ के 'तत्सत': सुदर्शन राके 'सम्मोहन'; विवेकी राय के 'सोना-माटी'; शिवसागर मिश्र के 'अजन्मा वह', 'अक्षत'; द्रोणवीर के 'टूटे हुए सूर्य' आदि उपन्यासों की एक लंबी सूची पर ध्यान जाता है। कोहली के 'टप्पर 'गाड़ी', पानू खोलियो के 'बिंब'; अनिरुद्ध पांडेय के 'पन्ना पुखराज'; 'मुद्राराक्षस' के 'हम सब 'मंसाराम' आदि उपन्यास भी इसी बीच प्रकाशित हुए हैं।

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में 'नयी कहानी', 'आंचलिक कहानी' 'ग्रामकथा', 'नगरकथा' आदि कथांदोलनो से जुड़ कर या उनसे बिना जुड़े उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में अवतरित हुए हैं। इस कालावधि में इनमें से सक्रिय रहने वाले उपन्यासकार हैं : विष्णु प्रभाकर 'अर्धनारीश्वर' (१९९२), 'संकल्प' : (१९९३), लक्ष्मीनारायण लाल : 'पुरुषोत्तम' (१९८३), 'गली अनारकली' (१९८५), केनाट "एक प्लेस' (१९८६), प्रभाकर माचवे : आंखें मेरी

बाक़ी उनका' (१९८३), 'लापता' (१९८४), नरेश मेहता 'उत्तरकथा' (भाग २, १९८२), कमलेश्वर : 'सुबह, दोपहर, शाम' (१९८२), 'रेगिस्तान' (१९८८), 'कितने पाकिस्तान' (२०००), कृष्ण बलदेव वैद: 'गुजरा हुआ जमाना (१९८१), 'काला कोलाज' (१९८९), 'नर-नारी' (१९९६), 'मालक' (१९९९), नौकरानी को डायरी' (२०००), लक्ष्मीकांत वर्मा मुंशी, श्रीलाल शुक्ल पड़ाव' (१९८७), 'बिस्रामपुर का संत' (१९९८), 'राग-विराग' (२००५), शैलेश मटियानी 'गोपुली गफ़ूरन' (१९८१), 'चंद औरतों का शहर' (१९८१), 'बावन नदियों का संगम' (१९८१), 'अर्द्धकुंभ की यात्रा' (१९८३), 'मुठभेड़' (१९८४), 'उत्तरकांड' (१९९५), राजेंद्र अवस्थी एक रजनीगंधा की चोरी' (१९८५), रामदरश मिश्र 'बिना दरवाज़े का मकान' (१९८४), 'दूसरा घर' (१९८६), 'थकी हुई सुबह' (१९९४), 'बीस यरस' (१९९६), उपा प्रियंवदा : 'शेष यात्रा' (१९८४), 'अंतवंशी' (२०००), निर्मल वर्मा : 'रात का रिपोर्टर' (१९८९), 'अंतिम अरण्य' (२०००), गुलशेर खां शानी : 'सांप और सीढ़ी' (१९८३, पूर्व रूप 'कस्तूरी' : १९६१), राही मासूम रजा : 'असंतोष के दिन' (१९८६), 'नीम का पेड़' (२००३), उर्दू उपन्यास का प्रभात त्रिपाठी-कृत हिंदी रूपांतर), गिरिराज किशोर : 'तीसरी सुचा' (१९८२), 'यथाप्रस्तावित' (१९८२), 'परिशिष्ट' (१९८४), 'असलाह' (१९८७), 'अंतध्वंस' (१९९०), 'ढाई घर' (१९९१), 'यातनाघर' (१९९७), 'पहला गिरमिटिया' (१९९९), शिवप्रसाद सिंह : 'नीला चांद' (१९८८), 'शैलूष' (१९८९), 'मंजुशिमा' (१९८९), 'औरत' (१९९२), 'कुहरे में युद्ध' (१९९३), 'दिल्ली दूर है' (१९९३), 'वैश्वानर' (१९९६), विवेकीराय ' "माटी' (१९८३), 'समर शेष है' (१९८८), 'मंगल भवन' (१९९४), अमंगलहारी' (२०००), 'देहरी पार' (२००३), कृष्णा सोबती 'दिलोदानिश' (१९९३), 'समय सरगम' (२००२), : महेंद्र भल्ला 'उड़ने से पेश्वर' (१९८७), 'दो देश और तीसरी उदासी' (१९९७), विश्वम्भराय उपाध्याय : 'जाग मछंदर गोरख आया' (१९८३), 'दूसरा भूतनाथ' (१९८५), 'जोगी मत जा' (१९८९), 'विक्षुब्ध' (१९९०), 'विश्वबाहु परशुराम' (१९९७), 'प्रतिरोध' (१९९८), 'कठपुली' (१९९२), जगदीशचंद्र : 'घासगोदाम' (१९८५), नरककुंड में बास' (१९९४), अमरकांत 'बीच की दीवार' (१९८१), 'सुखजीवी' (१९८२), 'लाट को वापसी' (२०००), 'ज़मीन अपनी तो थी' (२००१) आदि।

मिथिलेश्वर : 'यह अंत नहीं' (२०००), 'सुरंग में सुबह' (२००३), काशीनाथ सिंह : 'काशी का अस्सी' (२००२), भीमसेन त्यागी : 'काला गुलाब' (१९८१), 'लमीन' (२००४), संजीव : 'जंगल जहां शुरू होता है' (२०००), 'सूत्रधार' (२००३), प्रियंवद : 'परछाई नाच' (२०००), स्वयं प्रकाश: 'ईंधन' (२००४), असगर वजाहत : 'कैसी आग लगायी' (२००४). भगवानदास मोरवाल : 'बायल तेरा देस में' (२००४), 'रेत' (२००८) दूधनाथ सिंह : 'आखिरी कलाम' (२००३), तेजिंदर : 'काला पादरी (२००२), राकेशकुमार सिंह : 'पठार पर कोहरा (२००३), हरिराम मीणा : 'धूणी तपे तीर' (२००८), रणेन्द्र : 'ग्लोबल गाँव के देवता' (२००९), महुआ माजी : 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ' (२०१२)) इत्यादि। इस विगत् पच्चीस वर्ष की हिंदी उपन्यास की प्रवृत्तियां इस बात का प्रमाण हैं कि हिंदी- उपन्यास में सक्रियता रही है और वस्तु एवं शिल्प के स्तर पर बड़ी विविधता आयी है। विविधता का कारण कई पीढ़ियों की युगपत् सक्रियता है जब पीढ़ी बदलती है तो उसकी संवेदना, उसकी जीवनदृष्टि में भी मौलिक और सूक्ष्म परिवर्तन होता है, क्योंकि संवेदना और दृष्टि के निर्माण में जहां व्यक्ति की अपनी निजी जैविक संरचना, पारंपरिक संस्कार अपनी भूमिका निभाते हैं, वहाँ उसका परिवेश भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

८.४ सारांश

हिंदी के उपन्यासकारों ने सामूहिक अनुभव और मूल्य प्रणाली से वैयक्तिक अनुभव और मूल्य-प्रणाली की दिशा में यात्रा की है । पूंजीवादी, बाज़ारवादी और उपभोगवादी अर्थव्यवस्था, महानगरीय परिवेश और सामाजिक गतिशीलता ने अब उपन्यासकार को वर्गप्रतिनिधिकता से अलग करके स्वायत्त व्यक्ति इकाई बना दिया है । फलतः व्यक्तिशः उपन्यासकारों का अनुभव क्षेत्र सीमित और विशिष्ट होता गया है। स्त्री-विमर्श और दलित विमर्श जैसी चीजें इसी बदलाव का परिणाम हैं । फलतः विगत् पच्चीस वर्षों के हिंदी उपन्यास में वस्तु और शिल्प, दोनों के स्तर पर अत्यधिक प्रयोगशीलता आयी है । इसीलिए कथा कहने के लिए ऐसे-ऐसे चमत्कारपूर्ण शिल्पगत प्रयोग इस कालावधि में उपन्यासकारों ने किये हैं, जिनकी पहले का उपन्यासकार स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था । नयी पीढ़ी के उपन्यासकारों के लिए मौलिकता बीजमंत्र हो गयी है ।

८.५ बोध प्रश्न

१. उपन्यास का अर्थ बताते हुए उसके विकास क्रम के बारे सविस्तार लिखिए ।

२. हिन्दी उपन्यास के विकास यात्रा को सोदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ।

३. हिन्दी उपन्यास के विकासक्रम पर प्रकाश डालिए ।

८.६ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

१. हिन्दी का प्रथम उपन्यास कौनसा है?

उत्तर: परीक्षा गुरू – लाल श्रीनिवासदास

२. हिन्दी उपन्यास विधा का विकास कितने काल खंडों में हुआ है?

उत्तर: चार भागों में

३. प्रेमचंद युग का समय कब से कब तक माना जाता है?

उत्तर: सन् १९१६ से १९३६ तक

४. तिलिस्मी और ऐय्यारी उपन्यास किस युग में लिखे गये?

उत्तर: प्रेमचंद युग

५. मैलाआंचल उपन्यास के लेखक है?

उत्तर: फणिश्वरनाथ रेणू

८.७ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

९

हिंदी कहानी : विकास यात्रा

इकाई की रूपरेखा

९.० उद्देश्य

९.१ प्रस्तावना

९.२ हिंदी कहानी : अर्थ एवं परिभाषा

 ९.२.१ कहानी का अर्थ

 ९.२.२ कहानी की परिभाषा

९.३ हिंदी कहानी : विकास यात्रा

 ९.३.१ प्रारंभिक युग (१८०० ई. से १९०० ई.) तक

 ९.३.२ प्रेमचंद पूर्व कहानी (सन् १९०० से १९१५ तक)

 ९.३.३ प्रेमचंदयुगीन कहानी (सन् १९१६ से १९३६ तक)

 ९.३.४ प्रेमचंदोत्तर कहानी (सन् १९३६ से १९५० तक)

 ९.३.५ नयी कहानी (सन् १९५० से अब तक)

९.४ सारांश

९.५ बोध प्रश्न

९.६ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

९.७ संदर्भ ग्रंथ

९.० उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी कहानी का आरम्भ, विकास क्रम, और युग विभाजन के आधार पर कहानी विधा का समग्र अध्ययन कर सकेंगे।

९.१ प्रस्तावना

कहानी मानव जीवन के किसी एक घटना या मनोभाव का रोचक, कौतुहल पूर्ण चित्रण है। कहानियाँ मानव सभ्यता के आदिकाल से ही मनोरंजन एवं आनंद का साधन रही है। केवल मनोरंजन ही नहीं, वरन् शिक्षा प्रदान करने नीति और उपदेश देने के लिए अच्छे साधन का काम करती है। हमारे देश में मनोरंजन के लिए जहाँ वृहत् कथा मंजरी और कथा-सरितासागर सदृश रोचक कहानी-ग्रन्थ मिलते है, वहाँ मानव - व्यवहार संबंधी नीतिपूर्ण, उपदेषात्मक कहानियों के लिए पंचतंत्र एवं हितोपदेष जैसी रचनाएँ भी मिलती हैं। इसके अतिरिक्त उपनिषदों की कहानियाँ तो मानव को दार्शनिक जीवन की गहराइयों से सराबोर कर देती हैं। इस प्रकार कहानी वह सरव, सरस, प्रिय एवं माध्यम है जिसके द्वारा हम ऊँची

से ऊँची शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। मनुष्य के जीवन में कहानी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कहानी छोटी हो या बड़ी एक सीख अवश्य दे जाती है। कहानियों द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व को निखारने में सहायता मिलती है। कहानियों के माध्यम से दी गयी सीख ही मनुष्य के आन्तरिक जीवन से जुड़कर उसके वर्तमान को सँवारती है। बचपन से ही लोक कथाओं, धार्मिक कथाओं, पौराणिक कथाओं और ऐतिहासिक कथाओं को सुनकर बच्चे की चेतना धर्म, समाज और मानवता के प्रति विश्वास ग्रहण करती है। उसी परम्परा का निर्वाह करते हुए प्रेम से जुड़ी कहानियाँ, जैसे 'नल-दमयंती', 'दुष्यंत-शकुंतला', 'सत्यवान-सावित्री' आदि के माध्यम से मनुष्य के हृदय में प्रेम की भावना विकसित होती है, इनसे प्रेरित होकर वह भी अपने जीवन में कहीं न कहीं उस प्रेम को ढूँढने लगता है। अधिकतर कहानियाँ मनोरंजक और काल्पनिक होती हैं किन्तु कहीं न कहीं वह कल्पना से जुड़कर वास्तविकता एवं अपने पात्रों द्वारा वर्तमान की यथार्थ स्थितियों का चित्रण करती हैं। इस प्रकार कहानी मनुष्य को नैतिक और संवेदनशील बनाती है। कहानी को हम अनेक नामों से जानते हैं जिनमें मनुष्य पूर्व घटनाओं एवं काल्पनिक घटनाओं को कहानी के माध्यम से व्यक्त करता है।

९.२ हिंदी कहानी : अर्थ एवं परिभाषा

९.२.१ कहानी का अर्थ:

कहानी को विभिन्न शब्दों से संज्ञान्वित किया गया है और इन्हीं शब्दों के माध्यम से कहानी के अर्थ और भाव को स्पष्ट करने की कोशिश की गयी है। यहाँ विभिन्न शब्दकोश, भाषाकोश, अर्थकोश, पारिभाषिक शब्दावली कोश आदि के माध्यम से कहानी शब्द के अर्थ का मूल भाव स्पष्ट किया गया है।

वृहद हिन्दी शब्दकोष के अनुसार:

"हिन्दी शब्दकोश में कहानी का अर्थ कथा, आख्यायिका, वृत्तान्त, किस्सा, यथार्थ और कल्पना के मिश्रण से प्रस्तुत कोई घटना, विवरण जो उद्देश्य प्रधान हो, गद्य साहित्य की एक समादृत विधा शॉर्ट स्टोरी, मनगढ़ंत बात क्यों कहानी बनाये जा रहे हो।"

हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश, बद्रीनाथ कपूर

अंग्रेजी भाषा में कहानी को 'स्टोरी', 'फेबल', 'टेल' कहते हैं।

उर्दू-हिन्दी शब्दकोश के अनुसार, आचार्य रामचंद्र वर्मा

उर्दू में कहानी को 'किस्सा' कहा जाता है।

वृहद हिन्दी शब्दकोश के अनुसार, स. श्याम बहादुर वर्मा

संस्कृत में कहानी को 'आख्यान', 'उपाख्यान' एवं 'कथा' कहते हैं।

९.२.२ कहानी की परिभाषा:

कहानी अथवा आख्यान की परम्परा पुरातन काल से भारतीय समाज का अभिन्न अंग रही है। कहानी अलग-अलग नामों से जानी जाती रही है लेकिन विकास के क्रम में यह एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हुई। इसलिए इसे भी एक सुनिश्चित परिभाषा की आवश्यकता पड़ी।

भारतीय लेखकों द्वारा परिभाषित:

- पं. रामचंद्र शुक्ल "कहानी साहित्य का वह रूप है, जिसमे कथा प्रवाह एवं कथोपकथन में अर्थ अपने प्रकृत रूप मे अधिक विद्यमान रहता है।"
- नामवर सिंह "कहानी छोटी मुंह बड़ी बात होती है।"
- मुंशी प्रेमचन्द ''गल्प (कहानी) एक ऐसी गद्य रचना है, जो किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करती है। कहानी के विभिन्न चरित्र, कहानी की शैली और कथानक उसी एक मनोभाव को पुष्ट करते हैं। यह रमणीय उद्यान न होकर, सुगन्धित फूलों से युक्त एक गमला है।''
- बाबू गुलाब राय के अनुसार, "छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना हैं, जिसमें एक दिन या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति केन्द्रित घटना या घटनाओं का आवश्यक, परन्तु कुछ अप्रत्याशित ढंग से उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतूहलपूर्ण वर्णन हो।"
- डॉ. श्यामसुन्दर दास के शब्दों में, "आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य को ध्यान में रखकर लिखा गया नाटकीय आख्यान हैं।"

पाश्चात्य लेखकों द्वारा परिभाषित:

- चार्ल्स वैरेट के अनुसार, "कहानी एक लघु वर्णनात्मक रचना हैं, जिसमें वास्तविक जीवन को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता हैं। कहानी का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन करना हैं।"
- एडगर एलिन के अनुसार- "कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखी गई हो जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्वों के अतिरिक्त और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो।"

९.३ हिंदी कहानी : विकास यात्रा

कहानियों की प्राचीन परम्परा तथा उससे जुड़ी लोक कथाओं को भी शामिल करना होगा क्योंकि कहानियों के उद्भव में धार्मिक कथायें तथा लोककथाएँ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अगर हम वैदिक साहित्य में झाँक कर देखें तो कहानियों का आविर्भाव वहीं से आरम्भ होता है। हिन्दी के कथा साहित्य में वैदिक संस्कृत कालीन साहित्य तथा लौकिक

साहित्य का अधिक योगदान है। जिसमें कथा सरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि। इस प्रकार लोक कथा विभिन्न स्रोतों से जुड़ी होती है। हिंदी कहानी के उद्भव और विकास में बांग्ला साहित्य का विशेष योगदान रहा है। अंग्रेजी का साहित्य अनुवाद के रूप में बांग्ला में आया और बांग्ला से यह हिंदी में आया। बांग्ला में कहानी को गल्प कहा जाता है। जैसा कि शुक्ल जी कहते हैं "अंग्रेजी की मासिक पत्रिकाओ में छोटी-छोटी आख्यायिकाएं व कहानियाँ निकला करती हैं, वैसी ही कहानियों की रचना "गल्प के नाम से बंग भाषा में चल पड़ी थी।" इस प्रकार बांग्ला में गल्प के नाम से कहानियाँ लिखी गयीं जो धीरे-धीरे हिन्दी में आया। अरबी-फारसी साहित्य में भी कहानियों का रूप देखेंतो वहां अधिकतर तिलस्मी, ऐयारी कहानियाँ मिलती हैं जैसे- 'हातिमताई', 'अलिफ़ लैला', आदि कहानियाँ उसी साहित्य की देन हैं, जिसका प्रभाव हिन्दी कहानियों पर पड़ा। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कहानियों का उद्भव प्राचीन काल में ही आरम्भ हो गया था जिसमे धार्मिक कथाओं, किंवदंतियों एव लोक कथाओं, अंग्रेजी साहित्य, बांग्ला कथा साहित्य तथा अरबी-फारसी साहित्य का बड़ा योगदान रहा है।

हिंदी कहानी का उद्भव लगभग सन् १९०० से माना जाता है। मानव जन्म के साथ ही कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी को कहने तथा सुनने की प्रकृति निर्मित हुई। यही कारण है कि सभी सभ्य तथा आदिम समाज में कहानियाँ पायी जाती हैं। कथा-किस्सों का इतिहास भारतीय परंपरा में बहुत पुराना है। हितोपदेश की कथाओं और बैताल पचीसी जैसी कथाओं के माध्यम से भारतीय समाज में नीति-नैतिकता और आदर्श की शिक्षाएँ दी जाती रही हैं। कहानी हिन्दी गद्य लेखन की बहुचर्चित और सर्वमान्य विधा है। इस विधा का उद्भव उन्नीसवीं सदी में हुआ। बांग्ला भाषा में कहानी को गल्प कहा जाता है। मानव समाज के आरम्भ के साथ ही कहानी का भी उद्भव हुआ। कहानी कहने और सुनने की परंपरा मानव के स्वभाव में रही। यही कारण है कि हर समाज में उनकी कहानियाँ मौजूद हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी सुदीर्घ और समृद्ध परंपरा रही है। "वेद एवं उपनिषद में वर्णित 'यम-यमी', 'पुरुरवा-उर्वशी', 'सनत्कुमार- नारद', 'गंगावतरण', 'श्रृंग', 'नहुष', 'ययाति', 'शकुन्तला', 'नल-दमयन्ती' जैसे चर्चित आख्यान कहानी के प्राचीन रूप हैं।

प्राचीनकाल में सदियों तक प्रचलित वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्रा, अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्व आदि की कथाएँ, जिनका कथानक घटना प्रधान हुआ करता था, वे भी कहानी के ही रूप हैं। 'गुणढ्य' की 'वृहत्कथा' को जिसमें 'उदयन', 'वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है। इसके बाद 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'कथा सरित्सागर' जैसी साहित्यिक एवं शिक्षाप्रद कहानियों का युग आरम्भ हुआ। इन कहानियों से श्रोताओं ने मनोरंजन के साथ ही नैतिक शिक्षा भी प्राप्त की। प्रायः इन कहानियों में असत्य पर सत्य की विजय दिखाई गई। अन्याय पर न्याय की जीत दिखाई गई और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई है।

हिंदी कहानी आज के समय की लोकप्रिय विधा बन गयी है। हिंदी कहानी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है क्योंकि कहानी में जीवन, समय और समाज से जुड़ा कोई भी पक्ष अछूता नहीं रह गया है। हिंदी कहानी के लेखन में महिलाओं के साथ ही अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों का आगमन हुआ है। आज के कहानीकारों में मृदुला गर्ग, काशीनाथ सिंह, गोविंद मिश्र, उदय

प्रकाश, प्रभा खेतान, ज्ञान रंजन और सुधा अरोड़ा जैसे अनेक साहित्यकारों की सक्रियता देखी जा सकती है। आज प्रवासी कहानी के रूप में प्रवासी भारतीयों की रचनाएँ भी खूब चर्चित हो रही है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज की हिंदी कहानी अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को निभाते हुए जीवन के अनेक पक्षों का समग्र और सटीक चित्रण कर रही है। कालखंड के अनुसार हिन्दी कहानी के उत्तपति और विकास को निम्न विभाजन के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता हैं।

९.३.१ प्रारंभिक युग (१८०० ई. से १९०० ई.) तक:

कहानी के रूप में साहित्य की जिस विधा का हम अध्ययन करते हैं, वह पाश्चात्य साहित्य के माध्यम से हिंदी साहित्य में आई है। हिन्दी कहानी के विकास में सन् १९०० में आरम्भ होने वाली पत्रिका सरस्वती का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। गद्य के विकास की दृष्टि से भारतेंदु युग एक सुनिश्चित आरम्भ बिन्दु माना जाता है। सन् १८५७ ई. से भारतेंदु युग की शुरुआत मानी जाती है। इस कालखंड में भारतेंदु हरिश्चंद्र सहित अन्य साहित्यकार नाटकों और निबंधों के लेखन में ज्यादा सक्रिय थे। हालाँकि इस काल में कुछ कहानियाँ लिखी गई, मगर उन्हें हिंदी की मौलिक कहानी नहीं माना जाता है। इसी युग में विभिन्न मासिक एवं साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ जो विचारों की लड़ाई के लिए उपयुक्त माध्यम बना। भारतेन्दु युग के लेखकों ने भारत विरोधी ब्रिटिश प्रचार और शोषण के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष के लिए एक सशक्त माध्यम के रूप में जनजागरण के लिए इनका प्रयोग किया। 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन', 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण' आदि पत्र पत्रिकाओं में अपनी रचनाओं और सम्पादकीय लेखों द्वारा अपना विरोध व्यक्त किया।

गद्य विधाओं के विकास की दृष्टि से कहानी भारतेन्दु युग में उपन्यास निबन्ध आदि की तरह विकसित नहीं हुई लेकिन तत्कालीन निबन्धों और अन्य गद्य रूपों में जिन शैलियों का आविर्भाव हो रहा था उनमें कहानी के तत्व सक्रिय थे जो कालान्तर में एक जीवन्त विधा के रूप में विकसित हुई। गद्य रूपों के इसी अभिनव और चमत्कृत कर देने वाले विकास के कारण ही 'मुंशी इंशा अल्लाह खां' की सन् १८०८ में लिखी 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी कहानी के रूप निर्धारण की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं मिला किन्तु वह अपने महत्व को स्थापित कर सकी।

सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन सन् १९०० में हुआ था। हिंदी कहानी की दृष्टि से इस पत्रिका की भूमिका महात्त्वपूर्ण रही है। इसी पत्रिका में सन् १९०० के जून माह के अंक में किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' प्रकाशित हुई । इस कहानी को प्रथम हिन्दी कहानी मानने पर इसलिए भी आपत्ति की जाती है क्योंकि इस पर शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' की छाया दिखती थी। आचार्य शुक्ल ने इसकी मौलिकता पर सन्देह व्यक्त किया था। इसी पत्रिका में हिन्दी की पहली कहानी मानी जाने वाली इंशा अल्लाह खां द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी' प्रकाशित हुयी थी, इसी पत्रिका में प्रमुख साहित्यकार वृन्दावलाल वर्मा की कहानी 'राखीबन्द भाई' और 'तातार और एक वीर राजपूत' भी प्रकाशित हुई थी, 'माधवराव सप्रे' की 'एक टोकरी मिट्टी' (१९०१) भगवान दास की 'प्लेग की चुड़ैल' (१९०२) पंडित गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय'(१९०३) लाला पार्वती नंदन की 'बिजली'

(१९०४) और बंग महिला की 'दुलाई वाली' (१९०७) प्रमुख कहानी है, जिसने कहानी विधा को एक स्वतन्त्र विधा के रूप में स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई है। आरम्भ में कहानी विधा बड़ी उपेक्षित रही थी. कहानी विधा को सामाजिक प्रतिष्ठा न मिलने के कारण श्रीमती राजा बाला घोष ने अपना नाम छिपा कर छद्म नाम 'बंग महिला' के नाम से और बाबू गिरिजा कुमार घोष जी अपने छद्म नाम 'पार्वती नंदन' के नाम से लिखते हैं।

९.३.२ प्रेमचंद पूर्व कहानी (सन् १९०० से १९१५ तक):

हिंदी कहानी का प्रथम दौर सन् १९०० से १९१५ तक का माना जाता है। इसके उपरांत 'सरस्वती' पत्रिका के बाद 'इंदु' प्रकाशित हुई और इसमें जयशंकर प्रसाद जी कि कहानियाँ प्रकाशित होने लगी, जिसमें से 'प्रसाद की प्रारंभिक महत्वपूर्ण कहानियाँ - आग, चंदा, गुलाम, चितौड़ – उद्धार आदि इंदु के प्रारंभिक वर्षो में प्रकाशित हुई ।" 'गुलबहार' 'किशोरीलाल गोस्वामी' (१९०२, 'पंडित और पंडितानी' गिरिजादत्त वाजपेयी (१९०३), 'ग्यारह वर्ष का समय' रामचंद्र शुक्ल (१९०३), 'दुलाईवाली' बंगमहिला (१९०७), 'मन की चंचलता' माधवप्रसाद मिश्र (१९०७),'विद्या बहार 'विद्यानाथ शर्मा (१९०९), 'राखीबंद भाई' वृन्दावनलाल वर्मा (१९०९), 'ग्राम' जयशंकर 'प्रसाद' (१९११), 'सुखमय जीवन' चंद्रधर शर्मा गुलेरी (१९११), 'रसिया बालम' जयशंकर प्रसाद (१९१२), 'परदेसी' विश्वम्भरनाथ जिज्जा (१९१२), 'कानों में कंगना 'राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह (१९१३), 'रक्षाबंधन' विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' (१९१३), 'उसने कहा था' चंद्रधर शर्मा गुलेरी (१९१५), आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास के सभी चिन्ह मिल जाते हैं।

प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर मुड़ा और प्रसाद के आगमन से रोमांटिक यथार्थवाद की ओर। चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' (१९१५) में यह अपनी पूरी रंगीनी में मिलता है। सन् १९२२ में उग्र का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश हुआ। उग्र न तो प्रसाद की तरह रोमैंटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। वे केवल यथार्थवादी थे, प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया।

९.३.३ प्रेमचंदयुगीन कहानी (सन् १९१६ से १९३६ तक):

हिन्दी कहानी का विकास सन् १९१६ से १९३६ के बीच जितनी गति के साथ हुआ उतनी गति किसी अन्य साहित्यिक विधा के विकास में नहीं देखी जाती। हिंदी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद के आने के साथ ही एक नया युग शुरू होता है। एक ध्रुव तारे की तरह से वे साहित्य जगत में चमक उठते है। इसे प्रेमचंद युग के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखीं। प्रेमचन्द की कहानियों का कथ्य यथार्थ जीवन से सम्बद्ध था। हिन्दी-उर्दू के जानकार प्रेमचंद ने तत्कालीन परिस्थितियों पर बड़े साहस से लिखा। इस काल में जनता में ब्रिटिश काल से मुक्ति पाने के लिए छटपटाहट बढ़ रही थी और प्रेमचन्द अपनी कहानी के माध्यम से इस आन्दोलन को प्रखर कर रहे थे। उस समय तक प्रेमचंद प्रबुद्ध मध्यमवर्गीय चेतना के प्रतीक बन गए थे। प्रेमचन्द ने देश की तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों को समझ लिया था और अपनी कहानियों के माध्यम से अपने विचारो और संवेदनाओं को वाणी देने का काम आरम्भ कर दिया था।

प्रेमचन्द ने अपने पहले ही कहानी संग्रह 'सोजे वतन' से ही जातीय और राष्ट्रीय सवालों को जोड़ दिया था। इसी परम्परा को उन्होंने आगे अपनी कहानी 'आहुति' 'जुलूस', 'समरयात्रा', 'बूढी काकी', 'पंच-परमेश्वर', 'पूस की रात', 'कौशल', 'माँ', बड़े भाई 'साहब', 'स्वामी', 'शांति', 'नाशा', 'घर जमाई', 'ईदगाह', 'लैला' 'कफन' और 'क्रिकेट मैच' आदि प्रेमचंद की सुप्रसिद्ध कहानियाँ है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से जन-जागृति, लोकहित, स्त्री चेतना, मानवीय मूल्य, त्याग, प्रेम, कर्मठ, लोक चेतना और आत्म शक्ति को जगाने का कार्य किया। प्रेमचन्द धार्मिक पाखंड को देश हित के लिए बहुत ही हानिकारक मानते थे। उनकी 'अंधेर' तथा 'खून सफेद' आदि कहानियों में हिन्दू समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंड का तीखा चित्रण मिलता है। समाज में फैले भ्रष्टाचार के प्रतिरोध में उन्होंने 'नमक का दरोगा' कहानी लिखी थी। अपनी कहानी 'बड़े घर की बेटी' में ग्रामीण मध्यमवर्ग की पारिवारिक बनावट और मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया है। प्रेमचन्द की प्रायः सभी कहानियों में चरित्र या घटना केन्द्र में रहती है साथ ही ऐतिहासिक पात्रों को केंद्र में रख कर भी उन्होंने कई कहानियाँ लिखी हैं। उदाहरण के तौर पर 'रानी सारन्धा', 'राजा हरदौल', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुंड' आदि प्रमुख कहानियाँ हैं। अत: एक लेखक के रूप में वे अपने ऐतिहासिक चरित्रों का प्रयोग अपने जन आन्दोलन को मुखर करने के लिए करते हैं।

गांधीवादी सिद्धांतों और आचरणों के प्रति अपने गहरे विश्वास के कारण ही प्रेमचन्द अपनी कहानी में यथार्थवाद को अपर्याप्त मानकर टिप्पणी करते हैं। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है, यह समझना भूल होगी कि कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। किसान के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हुए वे कहते हैं कि मनुष्य समाज दो भागों में बंट गया है। बड़ा हिस्सा मरने और खपने वालों का है और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का है जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने वश में किये हुए है। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में ग्रामीण परिवेश, सामान्य गरीब, मजदूर तथा निम्न समाज के मनुष्यों के जीवन को उभारा है। 'ठाकुर का कुआं' कहानी में प्रेमचन्द ने दलित समाज की समस्याओं का चित्रण किया है। इस दौर में अंग्रेजी और बांग्ला साहित्य का प्रभाव कम होने लगा और हिंदी कहानी में भारतीय समाज दिखने लगा। इस कालखंड में जयशंकर प्रसाद ने भारतीय संस्कृति को आधार बनाकर कई कहानियाँ लिखीं। इस कालखंड में चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, वृंदावनलाल वर्मा, विश्वम्भरनाथ कौशिक, पंडित बेचन शर्मा उग्र, अली अब्बास हुसैनी, राय कृष्ण दास, शिवपूजन सहाय, चंडीप्रसाद ह्रदयेश, विनोद शंकर व्यास, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी आदि ने कई कहानियाँ लिखीं।

हिन्दी कहानी मंच पर प्रसाद का प्रवेश एक ऐतिहासिक घटना है.कहानी के क्षेत्र में प्रसाद जी आधुनिक ढंग की कहानियों के रचयिता माने जाते हैं। सन् १९१२ ई. में 'इंदु' पत्रिका में उनकी पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। जयशंकर प्रसाद जी ने लगभग कुल ७० कहानियाँ रचि हैं। उनकी अधिकतर कहानियों में भावना की प्रधानता है किन्तु उन्होंने यथार्थ की दृष्टि से भी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी वातावरण-प्रधान कहानियाँ अत्यंत सफल हुई हैं। उन्होंने ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों पर मौलिक एवं कलात्मक कहानियाँ लिखी हैं। भावना-प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ लिखी हैं। भावना प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ, रहस्यवादी, प्रतीकात्मक और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उत्तम कहानियाँ भी उन्होंने लिखी हैं। जयशंकर

प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवन्त वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है। उनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियों के नाम हैं; 'आकाशदीप', 'गुंडा', 'पुरस्कार', 'सालवती', 'स्वर्ग के खंडहर में', 'आँधी', 'इंद्रजाल', 'छोटा जादूगर', 'बिसाती', 'मधुआ', 'विरामचिन्ह', 'समुद्र संतरण' आदि अपनी कहानियों में जिन अमर चरित्रों की उन्होंने उजागर किया हैं ; उनमें से प्रमुख रूप से 'चंपा', 'मधुलिका', 'लैला', 'इरावती', 'सालवती' और 'मधुआ' कहानी का 'शराबी', 'गुंडा' कहानी का 'नन्हकूसिंह' 'ममता' और 'घीसू' जो आज भी साहित्य क्षेत्र में जीवित है।

जैनेन्द्र ने सन् १९२७-२८ में कहानी लिखना आरंभ किया। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी कहानी का नया उत्थान शुरू हुआ। सन् १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। यशपाल राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे, अतः वह प्रभाव उनकी कहानियों में भी आया। विश्वम्भरनाथ कौशिक तत्कालीन कहानीकार थे। प्रेमचन्द के समान साहित्य में इनका दृष्टिकोण भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद था। इनकी अधिकांश कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं। इन कहानियों के पात्रों के चरित्र निर्माण में लेखक ने मनोविज्ञान का सहारा लिया है और सुधारवादी मनोवृत्तियों से परिचालित होने के कारण उन्हें अन्त में दानव से देवता बना दिया है। इनकी प्रमुख कहानियाँ ‘रक्षाबंधन’, ‘उद्धार’, ‘माता का हृदय’, ‘प्रेम का पापी’, ‘परिणाम’, ‘सुप्रबंध अंतिम भेंट’ आदि हैं।

कहानीकार बैचेन शर्मा ‘उग्र’ की कहानियों की पृष्ठभूमि कस्बाई तथा महानगरीय रही है। प्रेमचन्द और उग्र की उम्र में बीस वर्ष का अंतर होने के बावजूद दोनों की कहानियों में स्वतंत्रता की प्रतिबद्धता देखी जा सकती है। गांधी के आंदोलन का उन पर भरपूर असर था। इनकी प्रमुख कहानियाँ ‘बलिदान’, ‘देश द्रोह’, ‘पागल का ओट’, ‘दोजख की आग’, ‘चाकलेट’ आदि हैं। कथाकार सुदर्शन भी प्रेमचन्द परम्परा से जुडे हुए कहानीकार हैं। इनका दृष्टिकोण सुधारवादी है। ये आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं। इन्होंने अपनी कहानियो में समस्यायों का आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किया है। रचनाकार 'सुदर्शन' की भाषा सरल, स्वाभाविक, प्रभावोत्पादक और मुहावरेदार है। इनकी प्रमुख कहानी ‘सेवा धर्म’, ‘हार की जीत’, ‘तीर्थ यात्रा’, ‘गरीब की आह’, ‘आशीर्वाद’ आदि प्रमुख है। लेखक आचार्य चतुरसेन भी इस युग के प्रमुख कथाकार रहे हैं। इनकी प्रमुख कहानियों में 'अक्षत', 'रजकण', 'वीर बालक', 'मेघनाद', 'सीताराम', 'सिंहगढ़ विजय', 'वीरगाथा', 'लम्बग्रीव', 'दुखवा मैं कासों कहूं सजनी', 'कैदी', 'आदर्श बालक', 'सोया हुआ शहर', 'कहानी खत्म हो गई', 'धरती और आसमान' आदि हैं। इस प्रकार से देखा जाय तो इस काल में प्रेमचंद ने कहानी की मजबूत नींव रखी और इनके समकालीन कथाकारों ने मजबूती प्रदान की। पूर्व काल की अपेक्षा इस काल में अधिक कहानियों का प्रकाशन हुआ, जिसमें रुढ़िवादी व्यवस्था, अंधविश्वास, स्त्री शोषण तथा ग्रामीण समाज की समस्याओं को दर्शाया गया है। हिन्दी कहानी के विकास में इस युग का बहुत योगदान रहा है।

९.३.४ प्रेमचंदोत्तर कहानी (सन् १९३६ से १९५० तक):

प्रेमचंद का देहांत सन् १९३६ में हुआ था लेकिन उनके निधन से पहले प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। जिसमें अधिकतम प्रगतिशील लेखक जुड़े थे। सन् १९३६ से १९५० ई. तक के कालखंड को प्रेमचंदोत्तर काल या द्वितीय युग कहा जा सकता है। इस युग में हिन्दी कहानी के क्षेत्र का विकास हुआ। यशपाल अपने सक्रिय क्रान्तिकारी जीवन के कारण जेल में थे। जैनेंद्र और इलाचंद्र जोशी ने मनोविश्लेषणवादी कहानियाँ लिखीं तथा रांगेय राघव और फणीश्वरनाथ रेणु ने आंचलिक कहानियाँ लिखीं। यशपाल ने प्रगतिवादी विचारधारा को आधार बनाकर कहानियाँ लिखीं। इस कालखंड में यथार्थपरक-सामाजिक परंपरा, ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परंपरा, यौनवादी परंपरा, हास्य-रस परंपरा और साहसिक परंपरा की कहानियाँ लिखी गई। इन परंपराओं का विस्तार और विकास आने वाले समय में हुआ। इस कालखंड में अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, नागार्जुन, विष्णु प्रभाकर आदि कहानीकारों ने हिंदी कहानी के विकास में योगदान दिया।

यशपाल एक मार्क्सवादी कहानीकार थे। उनकी कहानियों में अधिकतर समाज के वर्ग संघर्ष, मजदूर शोषण आदि का चित्रण मिलता है। यशपाल की कहानियों में सर्वदा कथा रस मिलता है। मनोविश्लेषण और तीखा व्यंग्य इनकी कहानियों की विशेषताएँ हैं। उनके प्रमुख कहानी संग्रह 'ज्ञानदान' (१९३३), 'अभिशप्त' (१९३३), तथा प्रसिद्ध कहानियाँ 'पिंजड़े की उड़ान' (१९३९), 'तर्क का तूफ़ान' (१९४४), 'भस्मावृतचिंगारी (१९४६), 'वो दुनिया' (१९४८), 'फूलो का कुर्ता' (१९४९), 'धर्मयुद्ध' (१९५०), 'उत्तराधिकारी' (१९५१), 'चित्र का शीर्षक' (१९५१), 'उत्तमी की माँ' (१९५५), 'तुमने कहा था कि मैं सुन्दर हूं' (१९५४), 'सच बोलने की भूल' (१९६२), 'खच्चर और आदमी' (१९६५), 'भूख के तीन दिन' (१९६८) प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनेंद्र कुमार का विशिष्ट स्थान है। उनके प्रमुख कहानी संग्रह में 'फाँसी' (१९२९), 'वातायन' (१९३०), 'नीलम देश की राजकन्या' (१९३३), 'एक रात' (१९३४), 'दो चिड़ियाँ' (१९३५), 'पाजेब' (१९४२),'जयसंधि' (१९४९) आदि प्रमुख हैं।

कथाकार इलाचंद जोशी का उत्तरांचल में जन्मे होने के कारण, वहाँ के प्राकृतिक वातावरण का इनके चिन्तन पर बहुत प्रभाव पड़ा। अध्ययन में रुचि रखने वाले इलाचन्द्र जोशी ने छोटी उम्र में ही भारतीय महाकाव्यों के साथ-साथ विदेश के प्रमुख कवियों और उपन्यासकारों की रचनाओं का अध्ययन कर लिया था। 'धूप रेखा' (१९३८), 'आहुति' (१९४५), आदि इनके प्रमुख संग्रह हैं। हिन्दी के शेक्सपियर कहे जाने वाले असाधारण प्रतिभा के धनी रचनाकार 'रांगेय राघव' ने बहुत ही चर्चित कहानियाँ लिखी है, जिसमें प्रमुख रूप से 'पंच परमेश्वर', 'अवसाद का छल', 'गूंगे', 'प्रवासी', 'घिसटता कम्बल', 'पेड़', 'नारी का विक्षोभ', 'काई', 'समुद्र के फेन', 'देवदासी', 'कठपुतले', 'तबेले का धुंधलका', 'जाति और पेशा', 'नई जिंदगी के लिए', 'ऊंट की करवट', 'बांबी और मंतर', 'गदल', 'कुत्ते की दुम और शैतान : नए टेक्नीक्स', 'जानवर-देवता', 'भय', 'अधूरी मूरत' आदि प्रमुख हैं।

कथा-साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ देने वाले कथाकार, ललित-निबन्धकार, सम्पादक और अध्यापक के रूप में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' को जाना जाता है। इनके प्रमुख कहानी संग्रह 'विप्रगाथा' (१९३७), 'परम्परा' (१९४४), 'कोठरी की बात' (१९४५),

'शरणार्थी' (१९४८), 'जयदोल' (१९५१), 'ये तेरे प्रति रूप' (१९६१) आदि है। अज्ञेय प्रयोगधर्मा कलाकार थे, उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है उसके प्रथम प्रस्तुतकर्ता अज्ञेय ही ठहरते हैं। अश्क, प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है, कहानी नहीं। इसके बाद सन् १९५० के आसपास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगीं। आधुनिकता बोध की कहानियाँ या नई कहानी नाम दिया गया।

कहानीकार विष्णु प्रभाकर हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक रहे हैं। उनकी कृतियों में देशप्रेम, राष्ट्रवाद, तथा सामाजिक विकास मुख्य भाव हैं। इनके प्रमुख कहानी संग्रह 'संघर्ष के बाद', 'धरती अब भी धूम रही है', 'मेरा वतन', 'खिलौने', 'आदि और अन्त' इत्यादि हिंदी साहित्य की अमूल धरोहर है। पद्मभूषण से सम्मानित भगवती चरण वर्मा उस युग के प्रमुख लेखक रहे है। 'मोर्चाबंदी' कहानी संग्रह उनका सबसे चर्चित संकलन रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कई लेखक ऐसे थे, जो प्रेमचंद के समय से लिख रहे थे लेकिन अपनी उपस्थिति का एहसास बहुत बाद में हुआ। ऐसे लेखकों में 'उपेन्द्रनाथ अश्क', 'भैरव प्रसाद गुप्त', 'विष्णु प्रभाकर', 'अमृत लाल नागर', 'अमृत राय' आदि प्रमुख हैं। प्रेमचन्दोत्तर कहानी का यह युग आजादी के कुछ वर्षो के बाद तक बना रहा। इसी बीच कहानीकारों की एक नयी पीढ़ी की दस्तक सुनायी पड़ने लगी, जिसने देश की आजादी के बाद अपना होश संभाला और वयस्क हुए थे। समाज, राजनीति, परिवार और साहित्य के प्रति उनमे एक तीखा असंतोष था। इस असंतोष की तीव्रता और उसके विरुद्ध नया कुछ करने का उत्साह कहानी में एक नए सर्जनात्मक विस्फोट का संकेत बनकर सामने आता है। यह रचनात्मक विस्फोट ही नयी कहानी के रूप में हमारे सामने आता है।

९.३.५ नयी कहानी (सन् १९५० से अब तक):

नयी कहानी का आरंभ सन् १९५० ई. से देखा जाता है।इसमें 'नई कहानी', 'सचेतन कहानी', 'समांतर कहानी', 'अ-कहानी' और 'सक्रिय कहानी' आदि धाराओं का उल्लेख किया जा सकता है। १९५० तक हिन्दी कहानी का एक विस्तृत दौर समाप्त हो जाता है और हिन्दी कहानी परिपक्वता के दौर में प्रवेश करती है। पिछली एक सदी में हिंदी कहानी ने आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, आँचलिकता आदि के दौर से गुजरते हुए सुदीर्घ यात्रा में अनेक उपलब्धियाँ हासिल की है। मोटे तौर पर सन् १९५४ से १९६३ तक का समय को 'नयी कहानी' के रूप में कहा जा सकता है। नयी कहानी सबसे पहले किसने कहा इस बात पर मतभेद है। कुछ लोग इसे नामवर सिंह की देन कहते है, तो कुछ इसका श्रेय दुष्यंत कुमार को देते हैं।

हिंदी साहित्य के श्रृंखला में नामवर सिंह का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। नामवर सिंह अपनी पुस्तक 'कहानी-नयी कहानी' में कहते हैं कि “कहानी की चर्चा में अनायास ही नई कहानी शब्द चल पड़ा और सुविधानुसार इसका प्रयोग कहानीकारों ने भी किया और आलोचकों ने भी।” परंपरागत हिन्दी कहानियों से अलगाने के लिए इन्हें नई कहानियाँ कहा जाने लगा। वस्तुतः नई कहानियाँ नाम नई कविता के वज़न पर रखा गया।

कुछ लोग इन कहानियों को पूर्ववर्ती पीढ़ी की कहानियों का विकास मानते हैं और कुछ परंपरा से कटकर या उसे अस्वीकार कर इसे एकदम नई कहने की हठधर्मी से बाज नहीं आते। वस्तुतः इन नामों में कुछ अर्थपूर्ण नहीं है।

'नई कहानी' से भी अपने को अलगाने के लिए और नाम रखे गये ; 'सचेतन कहानी', 'अकहानी' आदि, नामों पर बहस करना बेईमानी है। कहानी तो कहानी है। युग परिवर्तन के साथ उसकी प्रवृत्तियाँ बदलेंगी ही। स्वतंत्रता – प्राप्ति के कुछ ही वर्षों बाद भारतीय परिवेश में प्रसन्नता - अवसाद के विरोधी स्वर सुनाई पड़ने लगे। कुछ लोग राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रति आशान्वित थे और कुछ लोगों का मोह-भंग हो चुका था। स्वतंत्रता की प्राप्ति एक रोमांटिक घटना थी। ग्राम तथा उसके अंचल संबद्ध कहानियों में रोमानी यथार्थ चित्रित हुआ है। 'शिवप्रसाद सिंह', 'मार्कण्डेय' और 'फणीश्वरनाथ रेणु' की कहानियों को इसी कोटि में रखा जा सकता है। उनकी कुछ कहानियों में जीवत्व भी मिलता है किंतु इस तरह की अधिकांश कहानियाँ, जाने-समझे और आंशिक रूप से भोगे यथार्थ पर आधारित होने पर भी, पुराने मूल्यों का ही प्रतिपादन करती हैं। इन दो दशकों में देखते देखते दादा, बाबा, माई के प्रति व्यक्त की गई आस्था उलट गई और वह पुराने-नए मूल्यों के संघर्ष के रूप में चित्रित की जाने लगी। यह टकराहट नए बदलाव की सूचना देती है। आधुनिक जीवन में कुछ ऐसा टूट गया है कि पुराने सारे संबंध बदल गए हैं। रागपूर्ण संबंध अपने तनावों में मूल्यहीन होने के साथ अर्थहीन भी हो गये हैं।

कथाकार 'मोहन राकेश' ने इन तनावों को मुख्य रूप से अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। लेखक कमलेश्वर तनावों के बीच मूल्य दृष्टि की तलाश करते हैं। रचनाकार 'निर्मल वर्मा' मूलतः रोमेंटिक होते हुए भी कुछ कहानियों में आज की सामाजिक विडंबन को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करते हैं। 'धर्मवीर भारती', 'रघुवीर सहाय' और 'नरेश मेहता' कवि पहले हैं और कहानीकार बाद में। इनमें भारती का व्यक्तित्व सबसे अधिक निर्लेप क्षमतावान और मूल्यपरक है। उनकी कहानियों पर उनका कवि व्यक्तित्व कहीं हावी नहीं होता। इस दौर में 'कमलेश्वर', 'मार्कंडेय', 'मोहन राकेश', 'राजेंद्र यादव', 'कृष्णा सोबती', 'धर्मवीर भारती', 'अमरकांत' आदि कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से हिंदी कथा-साहित्य को समृद्ध किया। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श जैसे विमर्शों के माध्यम से हिंदी कहानी के क्षेत्र को बहुत विस्तार मिला। 'हरिशंकर परसाई', 'रवींद्रनाथ त्यागी' और 'शरद जोशी' जैसे कहानीकारों ने हास्य-व्यंग्य की शैली में कहानियाँ लिखकर समय और समाज की समस्याओं को प्रकट किया।

१. नयी कहानी:

नयी कहानी का सूत्रपात सन् १९५० के आसपास नई कविता की तर्ज पर हुआ। नये कहानीकारों में प्रमुख हैं ; मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, अमरकान्त, मार्कण्डेय, मन्नू भण्डारी, राजकमल चौधरी, श्रीकान्त वर्मा आदि। इन सभी प्रसिद्ध हिंदी रचनाकारों को नयी कहानी के विकास का सहायक माना जाता है। 'देवताओं की मूर्तियाँ' (१९५२), 'खेल-खिलौने' (१९५३), 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' (१९५७), 'अभिमन्यु की आत्महत्या' (१९५९), 'छोटे-छोटे ताजमहल' (१९६१), 'किनारे से किनारे तक' (१९६२), 'टूटना' (१९६६), 'चौखटे तोड़ते त्रिकोण' (१९८७), 'ये जो आतिश

गालिब' (प्रेम कहानियाँ) (२००८), 'वहाँ तक पहुँचने की दौड़', 'हासिल' आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। 'एक प्लेट सैलाब' (१९६२), 'मैं हार गई' (१९५७), 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'यही सच है' (१९६६), 'त्रिशंकु', 'आंखों देखा झूठ' तथा 'अकेली'। 'अकेली' कहानी सोमा बुआ नाम के पात्र को केंद्र में रखकर लिखी गई है। सोमा अपने पास पड़ोस से घुलने-मिलने के प्रयासों के बावजूद अकेली पड़ जाती है। वह अकेली इसलिए है क्योंकि वह परित्यक्ता है, बूढ़ी हो चली है तथा उसका पुत्र भी उसे छोड़कर जा चुका है। अपने परिवेश के साथ घुलने मिलने के उसके प्रयास भी एक तरफा हैं।

२. सचेतन कहानी:

'आधार' नामक पत्रिका में महीप सिंह जी ने 'सचेतन कहानी विशेषांक' निकाला। जिससे सन् १९६४ के आसपास 'महीप सिंह' द्वारा सचतेन कहानी का प्रवर्तन माना जाता है। वस्तुत: इस कहानी में वैचारिकता को विशेष महत्व दिया जाता है। इस वर्ग के कहानीकार में 'महीप सिं'ह, 'रामकुमार भ्रमर', 'बलराज पण्डित', 'हिमांशु जोशी', 'सुदर्शन चोपड़ा', 'देवेन्द्र सत्यार्थी' अग्रिम स्थान रखते हैं।

३. समकालीन कहानी:

इस कहानी आन्दोलन के प्रवर्तक डा. गंगा प्रसाद 'विमल' हैं। 'संजय', 'उदय प्रकाश', 'अब्दुल बिस्मिल्लाह', 'रमेश उपाध्याय', 'स्वयं प्रकाश', 'शिवमूर्ति' आदि समकालीन कहानीकार की श्रेणी में आते हैं। 'अब्दुल बिस्मिल्लाह' की रचनाओं में भारतीय मुस्लिम संस्कृति का अंश अधिकार मात्रा में देखने को मिलता है। उनकी रचनाएँ अधिकतर भारतीय मुस्लिम की समस्याओं को उजागर करती हैं। 'बिस्मिल्लाह' की प्रमुख कहानियों में 'अतिथि देवो भव', 'रफ रफ मेल', 'कितने कितने सवाल', 'रैन बसेरा', 'टूटा हुआ पंख' और 'जीनिया के फूल' आदि प्रमुख है। कथाकार उदय प्रकाश ने अपने लेखन के माध्यम से हिंदी साहित्य की कहानियों को सराबोर कर दिया है। उनकी कहानियों में 'दरियायी घोड़ा' (१९८९), 'तिरिछ' (१९८९), 'दत्तात्रेय के दुख' (२००२), 'पॉलगोमरा का स्कूटर' (१९९७), 'नेलकटर', 'अरेबा परेबा', 'और अंत में प्रार्थना', 'मोहनदास' (२००६), 'मैंगोसिल', 'पीली छतरीवाली लड़की' (२००१), 'राम सजीवन की प्रेमकथा', 'मेंगोलिस', 'दिल्ली की दीवार' आदि प्रमुख है। उदय प्रकाश की कहानियों में विखंडित परिवार, मानसिक तनाव, प्रेम का टूटना आदि समस्याएँ निहित होती हैं।

४. अकहानी:

सन् १९६० के आसपास कुछ ऐसे कथाकार सामने आए, जिन्होंने कहानी के स्वीकृत मूल्यों के प्रति निषेध व्यक्त करते हुए अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा की। डॉ. नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा को इस कहानी आन्दोलन का प्रवर्तक उनकी कहानी 'एक और शुरुआत' के आधार पर बताया है। इस तरह की कुछ अन्य कहानियां हैं ; 'कृष्णबलदेव' की कहानी 'त्रिकोण', 'रमेश वक्षी' की कहानी 'पिता-दर-पिता', 'दूधनाथ सिंह' की कहानी 'सुखान्त', 'रवीन्द्र कालिया' की कहानी 'एक डरी हुई औरत', 'सुदर्शन चोपड़ा' की कहानी 'सड़क दुर्घटना', गंगाप्रसाद 'विमल' की कहानी 'विध्वंस' आदि है।

५. समानान्तर कहानी:

इस आन्दोलन के सूत्रधार कमलेश्वर हैं, जिन्होंने सन् १९७१ के आसपास समानान्तर कहानी का प्रवर्तन किया। 'धर्मयुग' पत्रिका में इस कहानी आन्दोलन का जमकर विरोध किया गया। इस प्रकार की कहानियों में निम्नवर्गीय समाज की स्थितियों, विषमताओं एवं समस्याओं का खुलकर चित्रण हुआ है। 'सारिका' पत्रिका ने इस आन्दोलन को बढ़ावा दिया। इस आन्दोलन से जुड़े कुछ कहानीकारों में 'कमलेश्वर', 'से. रा. यात्री', 'श्रवण कुमार', 'नरेन्द्र कोहली', 'हिमांशु जोशी', 'निरूपमा सोवती', 'मृदुला गर्ग', 'मणि मधुकर' आदि है।

९.४ सारांश

कहानी हिन्दी साहित्य कि गद्य विधाओं में महत्वपूर्ण विधा हैं। अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानी छोटी होती है। अत: पाठक कम समय में इसे पढ़ लेता है इसलिए कहानी विधा समाज में ज्यादा पसंद की जाती है। कहानी को पढ़ते समय पाठक का मन उत्साहित हो जाता हैं। कहानी की परम्परा हमारे समाज में बहुत पहले से ही है। हमारे तमाम धर्म ग्रंथो और नीतिशास्त्रों. में छोटी छोटी कहानियों के माध्यम से नैतिक सीख देने का काम करते है। उन्हीं कहानियों से प्रेरणा लेकर लोक कथाओं का आविर्भाव हुआ है। पहले की कहानी पौराणिक तथा धार्मिक कथाओं पर आधारित होती थी। समय के साथ बदलते हुए कहानी में ऐतिहासिक कथाओं का समावेश हुआ।

स्वतंत्रता पूर्व कहानी के आरंभिक काल में भारतेंदु जी के समय में कहानियों में राष्ट्रीयता और नैतिकता को प्राथमिकता दी जाती थी। भारतेंदु जी के बाद 'सरस्वती' पत्रिका के आगमन से ही कहानियों में किसान और ग्राम आ गया। प्रेमचंद ने लगभग अपनी सभी कहानियों में किसान और ग्राम को ही प्रमुखता दी है। स्वतंत्रता के बाद कहानी एक नए दौर में पहुँच जाती है। जहाँ पर लेखक अपने आस-पास घटित होने वाली समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करने लगा। मानव जीवन में घटने वाली समस्या, पारिवारिक समस्याएँ, दलित, गरीबी, शोषण मध्यम वर्गीय, समाज की आर्थिक समस्याओं को अपना कथानक बना कर लेखक ने कहानियों का निर्माण करने लगा।

९.५ बोध प्रश्न

१. हिन्दी कहानी के विकासक्रम को उदाहरण सहित वर्णित कीजिए।

२. हिन्दी कहानी के विकास यात्रा को सोदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

३. कहानी का अर्थ बताते हुए उसके विकास क्रम को बताइए।

९.६ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

१. कहानी को प्राचीन काल में किस नाम से पुकारा जाता था?

उत्तर: गल्प या आख्यायिका

२. हिन्दी की प्रथम कहानी कौनसी है?

उत्तर: रानी केतकी की कहानी

३. चंद्रधर शर्मा गुलेरी किस युग के कहानीकार है?

उत्तर: प्रेमचंद युग

४. हिन्दी में हास्यरस की कहानियाँ लिखने वाले दो लेखक के नाम लिखिए?

उत्तर: जी. पी. क्षीवास्तव, हरिशंकर शर्मा

५. समान्तर कहानी की अवधारणा किसने प्रस्तुत की?

उत्तर: कमलेश्वर

९.७ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

१०

आलोचना : विकास यात्रा

इकाई की रूपरेखा

१०.० उद्देश्य

१०.१ प्रस्तावना

१०.२ हिंदी आलोचना : अर्थ एवं परिभाषा

  १०.२.१ हिंदी आलोचना : अर्थ

  १०.२.२ हिंदी आलोचना : परिभाषा

१०.३ आलोचना : विकास यात्रा

१०.४ सारांश

१०.५ बोध प्रश्न

१०.६ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

१०.७ संदर्भ ग्रंथ

१०.० उद्देश्य

उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध आदि विधाओं को समझने के लिए आलोचना की आवश्यकता पड़ी। इस इकाई में हम आलोचना का अर्थ, परिभाषा, आलोचना की विकास यात्रा के विषय में जानेंगे।

१०.१ प्रस्तावना

भारतेंदु हरिश्चन्द्र के समय से ही हिंदी साहित्य में आधुनिक काल की शुरुआत हुई और इसी युग से अनेक गद्य-विधाओं, जैसे कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि- की विकास यात्रा आरंभ हुई। रचना को समझने के लिए आलोचना की जरूरत पड़ती है। आलोचना का अर्थ है किसी वस्तु या कृति का सम्यक् मूल्यांकन करना। इस मूल्यांकन-प्रक्रिया में रसास्वादन, विवेचन, परीक्षण, विश्लेषण आदि का योगदान होता है। आलोचना, रचना और पाठक या सहृदय के बीच सेतु का कार्य करती है। यह रचना के मूल्य और सौंदर्य को उद्घाटित करती है, पाठक की समझ का विस्तार करती है और कृति को जाँचने-परखने के लिए उसे आलोचनात्मक दृष्टि देती है। रचना के गुण-दोष विवेचन से लेकर उसमें अंतर्निहित सौंदर्य और मूल्य के उद्घाटन तक की यात्रा करने वाली आलोचना की भी अनेक पद्धतियाँ हैं जैसे निर्णयात्मक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना, सैद्धांतिक आलोचना, व्यावहारिक आलोचना आदि। इस अध्याय में हम आलोचना के अर्थ, परिभाषा, उद्भव एवं विकास पर दृष्टि डालेंगे।

१०.२ हिंदी आलोचना : अर्थ एवं परिभाषा

१०.२.१ हिंदी आलोचना : अर्थ:

'आलोचना' 'लोच्' धातु से बना है; आ+लोच्+अन+आ अर्थात् आलोचना। लोच् का अर्थ है देखना । इसीलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या अथवा उसका होना मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है । नित्य के व्यावहारिक जीवन में किसी न किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा किसी नए कार्यकलाप की समीक्षा में हमारी सहज प्रवृत्ति होती है । किंतु संस्कारों, चिंतन क्षमता एवं सामाजिक नित्य के अवधारणा प्रवृत्ति अन्य व्यक्तिगत विशेषताओं के आधार पर उसकी आलोचना की जाती है ।

१०.२.२ हिंदी आलोचना : परिभाषा:

'आलोचना' शब्द 'लुच' धातु से बना है । 'लुच' का अर्थ है 'देखना' । अस्तु समीक्षा और समालोचना शब्दों का भी यही अर्थ है । अंग्रेजी के 'क्रिटिसिज्म' शब्द के समानार्थी रूप में 'आलोचना' का व्यवहार होता है । संस्कृत में प्रचलित 'टीका-व्याख्या' और 'काव्य-सिद्धान्त निरूपण' के लिए भी आलोचना शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है ।

भारतीय विद्वान:

१. **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल:** “आधुनिक आलोचना, संस्कृत के काव्य-सिद्धान्त निरूपण से स्वतंत्र है । आलोचना का कार्य है किसी साहित्यिक रचना की अच्छी तरह परीक्षा करके उसके रूप, गुण और अर्थव्यस्था का निर्धारण करना ।”

२. **डॉ. श्यामसुन्दर दास:** “यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा ।”

३. **डॉ. भगीरथ मिश्र:** आलोचना का कार्य कवि और उसकी कृति का यथार्थ मूल प्रकट करना है ।

पाश्चात्य विद्वान:

१. **डाइडन:** “आलोचना निर्णय का एक मानदंड है जो विचारशील पाठकों को आनंद प्रदान करने वाली साहित्य विशेषता का लेखा-जोखा करती है। यह हमारे तर्क का मूल्य मानदंड है ।”

२. **मैथ्यू अर्नाल्ड:** “सर्वश्रेष्ठ विचारों भावों की खोज करना और उसके रसोई में योगदान देना आलोचना के महत्वपूर्ण कार्य है ।”

३. **टी एस इलियट:** “आलोचना का उद्देश्य किसी वस्तु के मूल्य का निर्णय करना है ।”

१०.३ हिंदी आलोचना : विकास यात्रा

हिंदी में आलोचना का उद्भव और विकास आधुनिक काल में हुआ है । अत: हिंदी साहित्य में आलोचना एक महत्त्वपूर्ण विधा मानी जाती है । इसी के आधार पर रचना का मूल अर्थ

उभरकर सामने आता है। अनेक आलोचकों की उत्कृष्ट आलोचनाओं ने यह प्रमाणित किया कि आलोचना रचना की अनुवर्ती नहीं है बल्कि उसकी भी एक स्वतंत्र सत्ता है और रचना की तरह वह भी एक सृजन है।

१. शुक्ल पूर्व हिंदी आलोचना:

रीतिकाल में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों से प्रेरणा लेकर केशवदास, चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र, भिखारीदास आदि अनेक आचार्य-कवियों ने रस, छंद, अलंकार, रीति. शब्दशक्ति और नायक-नायिका भेद से संबंधित अनेक लक्षण-ग्रंथों की रचना की किंतु इनसे सिद्धांत-निरूपण से आगे बढ़कर व्यावहारिक समीक्षा का मार्ग प्रशस्त नहीं हुआ। इसका एक बड़ा कारण यह था कि उस समय तक गद्य का विकास नहीं हुआ था। सारी बातें पद्य में लिखी जाती थीं। पद्य में किसी बात पर तर्क-वितर्क करना, उसका सम्यक् मूल्यांकन और विश्लेषण करना संभव नहीं था, इसलिए व्यावहारिक आलोचना का मार्ग अवरुद्ध रहा। रीतिकाल में व्यावहारिक आलोचना का रूप संस्कृत की सूत्र-शैली के रूप में ही प्रचलित रहा- वह भी पद्य में ही। इस काल में कवियों की विशेषताओं को सूत्र-रूप में व्यक्त करने की पद्धति क्षीण रूप में प्रचलित थी। आलोचना का यह स्फुट रूप, गहन चिन्तन, मनन और विश्लेषण से शून्य था। इसमें प्रभावात्मक अभिव्यक्ति और प्रशंसात्मक मूल्यांकन की प्रधानता थी। अस्तु खंडन-मंडन की इस शैली से साहित्य का न तो मूल्यांकन संभव था, न उसका रसास्वादन।

१) भारतेंदु युगीन आलोचना:

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ भारतेंदु के समय (सन् १८५०-१८८५) के साथ ही माना जाता है। भारतीय जनता में बौद्धिकता, तार्किकता और भौतिकवादी दृष्टिकोण का प्रसार हुआ और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अन्य गद्य रूपों के साथ हिंदी आलोचना के नए और आधुनिक रूप का जन्म हुआ। भारतेंदु द्वारा सम्पादित- 'कविवचनसुधा' और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में समीक्षा के स्तम्भों में पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित होती थीं। 'हिंदी प्रदीप', 'भारतमित्र', 'ब्राह्मण', 'आनंद कादम्बिनी' आदि ने भी पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित करके इस विधा को गति प्रदान की। यद्यपि आरंभ में ये समीक्षाएँ परिचयात्मक एवं साधारण कोटि की थीं लेकिन धीरे-धीरे उनमें निखार और परिष्कार भी आता गया। भारतेंदु ने अपने 'नाटक' नामक लेख में नाटक पर विचार करते समय उसकी प्रकृति, समसामयिक जीवन रुचि, स्वाभाविकता, यथार्थता और प्राचीन नाट्यशास्त्र की उपयोगिता तथा नए नाटकों की आवश्यकता का जो विवेचन किया है, उसे हिंदी आलोचना का प्रथम उन्मेष मानना चाहिए और भारतेंदु को हिंदी का प्रथम आलोचक। यद्यपि भारतेंदु व्यावहारिक आलोचना का मार्ग प्रशस्त नहीं कर सके, वे ज्यादातर सैद्धांतिक विवेचन तक ही सीमित रह गए, किंतु उनके विवेचन में आलोचना-दृष्टि का जो उन्मेष हुआ, उसको बालकृष्ण भट्ट और चौधरी बदरी नारायण "प्रेमघन" ने आगे बढ़ाया।

आलोचना के अंतर्गत किसी कृति के मूल्यांकन का कार्य इन्हीं दोनों की समीक्षाओं से आरंभ हुआ। प्रेमघन जी ने 'आनंद कादम्बिनी' में बाणभट्ट की 'कादम्बरी' की जहाँ प्रशंसात्मक समीक्षा की, वहीं बाबू गदाधर सिंह द्वारा लिखे गए 'बंग विजेता' नामक बंगला उपन्यास की विस्तृत समीक्षा उपन्यास के तत्वों के आधार पर की और स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता

तथा सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से उपन्यास के गुण-दोषों का उल्लेख किया । लाला श्रीनिवास दास के "संयोगिता स्वयंवर" नाटक की समीक्षा जहाँ प्रेमघन ने 'आनंद कादम्बिनी' में बड़े प्रशंसात्मक ढंग से की, वहीं बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' में 'सच्ची समालोचना' के नाम से उसकी कटु समीक्षा की । इस तरह भारतेंदु युग में एक ओर परम्परागत साहित्य सिद्धांतों को विकसित करने का प्रयत्न हुआ और दूसरी ओर व्यावहारिक समीक्षा का सूत्रपात हुआ।

२) द्विवेदी युगीन आलोचना:

हिंदी भाषा और साहित्य के विकास एवं परिष्कार के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जो कार्य किया, वह हिंदी साहित्य में अद्वितीय है। उनके युग में हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि तो हुई ही, साहित्यालोचना के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य हुआ । इस युग में यद्यपि हिंदी आलोचना का गंभीर एवं तात्विक रूप तो नहीं निखरा किंतु अनेक महत्वपूर्ण आलोचना-पद्धतियाँ अवश्य विकसित हुई, जैसे - शास्त्रीय आलोचना, तुलानात्मक मूल्यांकन एवं निर्णय, परिचयात्मक तथा व्याख्यात्मक आलोचना, अन्वेषण तथा अनुसंधानपरक समीक्षा आदि।

प्राचीन सिद्धांतों के परिपोषण और विवेचन के साथ ही इस युग के नवीन सिद्धांतों के प्रतिपादन का भी कार्य हुआ है । इस दृष्टि से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पुन्नालाल बख्शी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास और गुलाब राय के नाम उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी जी ने 'रसारंजन' में विषय के अनुकूल छंदयोजना, सरल भाषा के प्रयोग, अर्थ-सौरस्य, मनोरंजन के स्थान पर युगबोध, नैतिकता, मर्यादा, देश-प्रेम आदि से संबंधित उच्च भावों की अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया और रीतिकालीन कविता की अतिश्रृंगारिकता तथा विलासिता की प्रवृत्ति की कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि इससे न तो देश और समाज का कल्याण हो सकता है, न उसके सर्जक का ही । उन्होंने अपने 'कवि कर्त्तव्य' नामक निबंध में विस्तार के साथ कवि के नए कर्तव्यों का बोध कराते हुए काव्य-विषय, काव्य-भाषा, शैली, उद्देश्य आदि का जो विवेचन किया है, उससे पता चलता है कि द्विवेदी जी नवीनता के पोषक थे और नयी परिस्थितियों में साहित्य साधना को नए दायित्वों से जोड़ना चाहते थे। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से इस कार्य को सम्पन्न किया और हिंदी भाषा, साहित्य और आलोचना को नयी दिशा प्रदान की।

द्विवेदी-युग में तुलनात्मक समीक्षा में विशेष प्रगति हुई। इस युग में साहित्यकारों का संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेजी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं के साहित्य से घनिष्ठ परिचय होने के कारण तुलनात्मक एवं निर्णयात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति का विकास हुआ । इस क्षेत्र में पदमसिंह शर्मा, मिश्रबंधु (श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र, गणेश बिहारी मिश्र), लाला भगवानदीन और कृष्णबिहारी मिश्र ने विशेष कार्य किया। सबसे पहले पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी' और फारसी के कवि 'सादी' की तुलनात्मक आलोचना की, उसके बाद मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी नवरत्न' नामक ग्रंथ में तुलनात्मक मूल्यांकन के आधार पर हिंदी के नौ कवियों (सूर, तुलसी, देव, बिहारी, केशव, भूषण, सेनापति, चन्द, हरिशचन्द्र) को श्रेणीबद्ध करके उनकी आलोचना प्रकाशित की । बाद में उनके इस श्रेणी-निर्धारण में परिवर्तन भी होता रहा मिश्र बंधुओं ने देव को बिहारी से ऊँचा कवि माना, इसके उत्तर में पद्मसिंह शर्मा ने

'बिहारी' को बड़ा सिद्ध किया। बाद में तुलना के इस अखाड़े में कृष्णबिहारी मिश्र और लाला भगवानदीन भी आ गए। इस तरह तुलनात्मक समीक्षा का एक ऐसा मार्ग निकला जिसमें प्रचीन सिद्धांतों के आलोक में हिंदी कवियों की व्यावहारिक समीक्षा की गई। यह शास्त्रीय आलोचना के भीतर जन्म लेने वाली वह व्यावहारिक समीक्षा थी, जिसमें गुण-दोष विवेचन और बड़ा-छोटा सिद्ध करने की प्रवृत्ति अधिक थी। जीवन और समाज के व्यापक संदर्भों में साहित्य को समझने की यदि कोशिश की गई होती तो इस आलोचना में अधिक व्यापकता आ जाती।

इस युग में 'साहित्यालोचन' की प्रवृत्तियों और आदर्शों पर अनेक लेख 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती', 'समालोचक', 'इन्द्र', 'माधुरी', आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने 'समालोचना' नामक लेख प्रकाशित करके समालोचक के गुणों - मूलग्रंथ का ज्ञान, सत्य-प्रीति, शांत स्वभाव और सहृदयता - को रेखांकित किया। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'विक्रमांकदेव चरित नैषधचरित चर्चा' और 'कालिदास की निरंकुशता' जैसे लेखों से व्यावहारिक समीक्षा का मार्ग प्रशस्त किया और संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, मराठी और उर्दू साहित्य में प्राप्त महत्वपूर्ण सामग्री की जानकारी हिंदी पाठकों को दी, जिसे आचार्य शुक्ल ने 'एक मुहल्ले की बात दूसरे मुहल्ले तक पहुँचाने' का कार्य कहा। किंतु यह नहीं भूलना चाहिए कि यह हिंदी पाठकों, सर्जकों और समीक्षकों को ज्ञान से समृद्ध करने वाला एक महत्वपूर्ण कार्य था।

द्विवेदी युग में ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की व्यावहारिक समीक्षा की व्याख्यात्मक पद्धति विकसित हुई। चूँकि शुक्ल जी की आलोचना कई तरह से हिंदी आलोचना में एक मानक की तरह है और द्विवेदी युग की आलोचना से काफी आगे की है, इसलिए इसकी विशेष चर्चा शुक्ल युगीन हिंदी आलोचना के अंतर्गत की जाएगी। द्विवेदी युग में ही अनुसंधानपरक समीक्षा का विकास हुआ। वैसे तो 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित लेखों से ही इस पद्धति के दर्शन होने लगे थे, किंतु उसका सम्यक् विकास द्विवेदी-युग में सन् १९२१ ई. में बाबू श्याम सुंदर दास के काशी हिंदू विश्वद्यिालय में हिंदी विभाग में नियुक्त होने के बाद ही हुआ। शोध या अनुसंधानपरक आलोचना में अनुपलब्ध या अज्ञात तथ्यों का अन्वेषण तथा उपलब्ध तथ्यों का नवीन आख्यान आवश्यक होता है। बाबू श्यामसुंदर दास, राधाकृष्ण दास, जगन्नाथ दास रत्नाकर और सुधाकर द्विवेदी ने द्विवेदी युगीन अनुसंधानपरक आलोचना का स्वरूप विकसित करने में योग दिया है।

सारांशत: इस प्रकार द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना विभिन्न पद्धतियों को विकसित करती हुई उत्तरोत्तर शक्ति सम्पन्न हुई। इसी युग में पाश्चात्य साहित्य से परिचित होकर और उसका स्वस्थ प्रभाव ग्रहण कर हिंदी आलोचना ने स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त किया और इसमें कवि-विशेष के सामान्य गण-दोष के विवेचन के साथ ही रचना की गहरी छान-बीन, देश और समाज के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की उपयोगिता और मूल्यवत्ता को परखने की प्रवृत्ति विकसित हुई।

३) शुक्ल युगीन आलोचना:

द्विवेदी-युग की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा को विकसित एवं समृद्ध करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। वे हिंदी आलोचना के प्रशस्त-पथ पर एक ऐसे आलोक-

स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिसके प्रकाश में हम आगे और पीछे दोनों ओर बहुत दूर तक देख सकते हैं। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि यद्यपि द्विवेदी-युग में विस्तृत समालोचना का मार्ग प्रशस्त हो गया था, किंतु वह आलोचना भाषा के गुण-दोष विवेचन, रस, अलंकार आदि की समीचीनता आदि बहिरंग बातों तक ही सीमित थी। उसमें स्थायी साहित्य में परिगणित होने वाली समालोचना, जिसमें किसी कवि की अन्तर्वृत्ति का सूक्ष्म व्यवच्छेद होता है, उसकी मानसिक प्रवृत्ति की विशेषताएँ दिखाई जाती हैं, बहुत ही कम दिखाई पड़ी। इस युग में आलोचकों का ध्यान गुण-दोष कथन से आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और उनकी अंत:वृत्ति की छानबीन की ओर गया। इस प्रकार की समीक्षा का आदर्श शुक्ल जी की सूर, जायसी और तुलसी संबंधी समीक्षाओं में देखा जा सकता है।

इन समीक्षाओं में शुक्ल जी के गंभीर अध्ययन, वस्तुनिष्ठ विवेचन, सारग्राहिणी दृष्टि, संवेदनशील हृदय और प्रखर बौद्धिकता का सामंजस्य, प्राचीनता और नवीनता के समुचित समन्वय से प्राप्त प्रगतिशील विचारधारा, रसवादी, नीतिवादी, मर्यादावादी और लोकवादी दृष्टि का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है। इन सबके चलते शुक्ल जी ने हिंदी आलोचना में अपना विशिष्ट व्यक्तित्व स्थापित किया और वे एक ऐसे आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित हुए जिसमें सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा का उत्कृष्ट रूप दिखाई पड़ता है। हिंदी में ही नहीं, आधुनिक काल की समूची भारतीय आलोचना-परम्परा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विशिष्ट स्थान और महत्व है।

शुक्ल जी ने सूर, तुलसी, जायसी आदि मध्यकालीन कवियों और छायावादी काव्यधारा का गंभीर मूल्यांकन करके जहाँ व्यावहारिक आलोचना का आदर्श प्रस्तुत किया और हिंदी आलोचना को उन्नति के शिखर तक पहुँचाया, वहीं 'चिंतामणि' और 'रसमीमांसा' जैसे ग्रंथों से सैद्धांतिक आलोचना को नई गरिमा और ऊँचाई प्रदान की। 'कविता क्या है', 'काव्य में रहस्यवाद', 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूप' आदि निबंधों में शुक्ल जी ने अपनी काव्यशास्त्रीय मेधा और स्वतंत्र चिंतन-शक्ति के साथ-साथ भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र के विशद् एवं गंभीर ज्ञान तथा व्यापक लोकानुभव और गहरी लोकसंस्कृति का जो परिचय दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

आचार्य शुक्ल ने अपनी व्यावहारिक समीक्षा में जिस तरह के सूत्रात्मक निष्कर्ष और आलोचना के नए मानदंड प्रस्तुत किए हैं, वे उनकी समीक्षा-शक्ति और साहित्य में गहरी पैठ के प्रमाण हैं। उनकी शास्त्रीय समीक्षा में उनका पाण्डित्य, मौलिकता और सूक्ष्म पर्यवेक्षण पग-पग पर दिखाई पड़ता है। हिंदी की सैद्धांतिक आलोचना को परिचय और सामान्य विवेचन के धरातल से उठाकर गंभीर मूल्यांकन और व्यावहारिक सिद्धांत प्रतिपादन की उच्चभूमि पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। सूर, तुलसी, जायसी संबंधी उनकी आलोचनाएँ व्यावहारिक आलोचना का प्रतिमान बनी हुई हैं। आचार्य शुक्ल लोकवादी समीक्षक हैं। लोकमंगल, लोक धर्म, लोक मर्यादा आदि को केंद्र में रखकर ही वे साहित्य की श्रेष्ठता और उत्कृष्टता का निदर्शन करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के साथ-साथ हिंदी आलोचना को समर्थ और गतिशील बनाने वाले आलोचकों में पं. कृष्णशंकर शुक्ल, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गुलाब राय, लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' के नाम उल्लेखनीय हैं। कृष्णशंकर ने 'केशव की काव्यकला' और

'कविकर रत्नाकर' नामक कृतियों में केशवदास और जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' की जीवनी और उनके काव्य के विभिन्न पक्षों पर सहृदयतापूर्वक प्रकाश डाला है। इन दोनों पुस्तकों की प्रशंसा करते हुए आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास-ग्रंथ में लिखा - 'केशव की काव्यकला' में पंडित कृष्णशंकर शुक्ल ने अच्छा विद्वत्तापूर्ण अनुसंधान भी किया है। इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी 'हिंदी साहित्य का अतीत' और 'बिहारी की वाग्विभूति' जैसे ग्रंथों में उत्कृष्ट आलोचना-प्रतिभा का परिचय दिया है। इन्होंने रीतिकाल के महत्वपूर्ण कवियों, बिहारी, केशव, घनानंद, भूषण, रसखान आदि की विस्तृत समीक्षा करके अपनी सिद्धांतनिष्ठ, अनुसंधानपरक और सारग्राही आलोचना-पद्धति से हिंदी आलोचना को काफी शक्ति प्रदान की है। उनकी रीतिकाव्य की व्याख्याएँ और टीकाएँ भी आलोचना के बड़े काम की हैं।

लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ने 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' में क्रोचे के 'अभिव्यंजनावाद' और उसके प्रकाश में भारतीय काव्यशास्त्र और हिंदी के नवीन काव्य पर विचार करते हुए अपनी सहृदयता, विद्वत्ता और मर्मग्राहिता का परिचय दिया है। बाबू गुलाबराय ने 'सिद्धांत और अध्ययन', 'काव्य के रूप' और 'नवरस' जैसे ग्रंथों के माध्यम से हिंदी की सैद्धांतिक आलोचना को पुष्ट किया। उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल की ही तरह भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के समन्वय से नवीन आलोचना-सिद्धांतों को विकसित करने का कार्य किया। पाश्चात्य एवं भारतीय काव्यशास्त्रों की मान्यताओं का गंभीर अध्ययन-विश्लेषण करके अपनी समन्वय बुद्धि द्वारा आचार्य शुक्ल ने भी हिंदी के एक नए आलोचना-शास्त्र के निर्माण का कार्य किया। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि "शुक्लजी ने संस्कृत काव्यशास्त्र का पुनराख्यान कर और पाश्चात्य आलोचना-सिद्धांतों को अपने अनुरूप ढालकर हिंदी के लिए एक नए आलोचना-शास्त्र का निर्माण किया।" शुक्लानुवर्ती आलोचकों ने उनके इस कार्य में योग दिया, यह दूसरी बात है कि वे आचार्य शुक्ल की सी गहराई, व्यापकता और ऊँचाई का परिचय नहीं दे सके, फिर भी उनके योगदान को कम करके नहीं आँका जा सकता है।

४) शुक्लोत्तर युगीन आलोचना:

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना के केंद्र में वीरगाथा काल से लेकर छायावादी काव्यधारा तक का साहित्य रहा है। उनके समीक्षा-सिद्धांत और काव्य के प्रतिमान विशेष रूप से भक्तिकाव्य के आधार पर निर्मित हुए हैं। जिस समय शुक्ल जी का आलोचक व्यक्तित्व अपने पूरे निखार पर था। उसी समय व्यक्ति चेतना को केंद्र में रखकर छायावादी काव्यधारा का विकास हुआ, जिसकी आचार्य शुक्ल ने कड़ी आलोचना की। रसवादी, परम्परानिष्ठ, लोकमंगलवादी और मर्यादावादी आचार्य शुक्ल व्यक्ति के सुख-दुख, आशा-आकांक्षा, प्रेम-विरह और मानवीय सौंदर्य के आकर्षण से परिपूर्ण छायावादी कविता को अपेक्षित सहृदयता से न देख-समझ सके। वस्तुत: इसे नन्ददुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी और डॉ. नगेंद्र जैसे समर्थ आलोचकों का बल प्राप्त हुआ। इन आलोचकों ने आचार्य शुक्ल की आलोचना-परम्परा का विकास करते हुए अनेक संदर्भो में अपनी स्वतंत्र दृष्टि और मौलिकता का परिचय दिया है। शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना का विकास कई रूपों में हुआ। यहाँ पर आचार्य शुक्ल के बाद से स्वतंत्रता प्राप्ति तक की हिंदी आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तियों एवं पद्धतियों पर प्रकाश डाला जा रहा है। आचार्य शुक्ल के बाद हिंदी में

स्वच्छन्दतावादी, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक और मार्क्सवादी आलोचना का विकास हुआ। इनका स्वतंत्र रूप से परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

१. स्वच्छन्दतावादी आलोचना:

स्वच्छन्दतावादी आलोचना का विकास हिंदी की छायावादी काव्यधारा के मूल्यांकन के साथ हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के व्यापक प्रभाव के बावजूद भी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद को अपना समर्थन दिया और इस काव्यधारा के सौंदर्य को प्रभावशाली ढंग से उद्घाटित किया। उन्होंने छायावादी कवियों के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए साहित्य की स्वायत्त सत्ता की घोषणा की और कहा - "काव्य का महत्व तो काव्य के अंतर्गत ही है, किसी बाहरी वस्तु में नहीं। काव्य और साहित्य की स्वतंत्र सत्ता है, उसकी स्वतंत्र प्रक्रिया है और उसकी परीक्षा के स्वतंत्र साधन हैं।"

वाजपेयी जी की इस आलोचना को, स्वच्छन्दता को चरम मूल्य मानने के कारण 'स्वच्छन्दतावादी' और काव्य-सौष्ठव पर बल देने के कारण 'सौष्ठववादी' संज्ञा मिली। नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'आधुनिक साहित्य', नया साहित्य : नए प्रश्न', 'जयशंकर प्रसाद', 'कवि निराला', 'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' आदि जैसे आलोचनात्मक ग्रंथों में छायावाद, स्वच्छन्दतावाद और छायावादी कवियों - पंत, निराला, प्रसाद - का मूल्यांकन प्रस्तुत किया और इस नवीन काव्यधारा के संदर्भ में नए समीक्षा-सिद्धांतों का निर्माण किया। वाजपेयी जी के साथ ही डॉ. नगेन्द्र ने छायावादी काव्य का जो मूल्यांकन प्रस्तुत किया, वह भी हिंदी की स्वच्छन्दतावादी आलोचना को परिपुष्ट करने वाला है। 'आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृत्तियाँ' और 'सुमित्रानंदन पंत' जैसे ग्रंथों से उन्हें छायावादी आलोचक के रूप में ख्याति मिली। उन्होंने काव्य में आत्माभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण माना और छायावाद को 'स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह' कहा। उन्होंने यह स्थापित किया कि भक्ति आंदोलन के बाद हिंदी साहित्य में छायावाद एक बड़ा काव्यान्दोलन था। पंत के काव्य का मूल्यांकन करके डॉ. नगेन्द्र ने जहाँ उनके काव्य को समझने की दृष्टि दी, वहीं उनकी कविता से ही अपनी आलोचना के मूल्य भी निकाले।

२. मनोवैज्ञानिक:

मनोविश्लेषणवादी आलोचना का संबंध फ्रायड के मनोविज्ञान कला-सिद्धांत से है जो यह मानता है कि साहित्य और कलाएँ मनुष्य की दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति हैं। इनके अनुसार मनुष्य की दमित वासनाओं का उदात्तीकृत रूप ही साहित्य या कला में व्यक्त होता है। दमित वासनाएँ काममूला होती हैं। मनोवैज्ञानिक आलोचक कवि के व्यक्तिगत जीवन के आधार पर उसकी वासनाओं का विश्लेषण करता है और उसके साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति को रेखांकित करता है। मनोविश्लेषणवादी साहित्य-दृष्टि के अनुसार साहित्य-निर्माण की प्रेरणा मनुष्य की चेतना से नहीं, अवचेतन में दमित वासनाओं में मिलती है चूंकि ये वासनाएँ प्रवृत्तिमूलक और वैयक्तिक होती हैं, अत: यह माना जाता है कि साहित्य का संबंध व्यक्ति-चेतना से अधिक है, सामाजिक चेतना से नहीं अत: साहित्य सामाजिक होने की अपेक्षा व्यक्तिगत होता है। इस तरह कला मूलत: स्वान्तः सुखाय होती है। मनोविश्लेषणवादी, नैतिकता के प्रश्न को भी महत्व नहीं देता।

इलाचन्द्र जोशी ने साहित्य-रचना और समीक्षा का उल्लेखनीय कार्य किया है । उन्होंने 'साहित्य-सर्जना' नामक पुस्तक से अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की स्थापना की और विवेचना', 'विश्लेषण', 'देखा-परखा' जैसी कृतियों में मनोवैज्ञानिक आलोचना का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया । भारतीय साहित्य में प्रगतिशीलता', 'महादेवी जी का आलोचना-साहित्य', 'छायावादी तथा प्रगतिपंथी कवियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण', 'कामायनी', 'शरतचन्द्र की प्रतिभा', आदि निबंधों में उनकी मनोविश्लेषणवादी समीक्षा-दृष्टि व्यावहारिक रूप से प्रकट हुई है। इलाचन्द्र जोशी का मानना है कि हिंदी का भक्ति साहित्य दमित काम-कंठा का ही प्रतीक है । छायावादी काव्य में भी उन्हें यौन-संबंधों की कुंठाएँ शालीन रूप में अभिव्यक्त हुई दिखाई पड़ती हैं। अत: अज्ञेय, डॉ. नगेन्द्र और डॉ. देवराज की भी समीक्षाओं में भी मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । अज्ञेय के 'त्रिशंक', 'आत्मनेपद', डॉ नगेन्द्र के रस-सिद्धांत के विश्लेषण और पंत-काव्य के मूल्यांकन तथा डॉ. देवराज के साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' नामक ग्रंथों में मनोविश्लेषणवादी समीक्षा-दृष्टि का व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक रूप देखा जा सकता है।

३. ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आलोचना:

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (१९०७) ने हिंदी में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया कि किसी ग्रंथकार का स्थान निर्धारित करने के लिए क्रमागत सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जातीय सातत्य को देखना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि आलोचक को अपनी जातीय परंपरा या सांस्कृतिक विरासत का बोध हो । आचार्य द्विवेदी ने अपनी इस धारणा के तहत 'हिंदी साहित्य की भूमिका', हिंदी साहित्य का आदिकाल' और 'कबीर' जैसे आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने हिंदी साहित्य को ठीक से समझने के लिए। पूर्ववर्ती साहित्य-परम्पराओं (संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश) की जानकारी को आवश्यक माना और उनके साथ हिंदी-साहित्य के घनिष्ठ संबंध को रेखांकित किया। उन्होंने 'मध्यकालीन बोध का स्वरूप', 'भारत के प्राचीन कला - विनोद', 'कालिदास की लालित्य योजना' जैसी रचनाओं के माध्यम से ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आलोचना को परिपुष्ट किया। उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आलोचना किसी कृति का मूल्यांकन इतिहास और संस्कृति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में करती है।

ऐतिहासिक आलोचक के अनुसार मानव-समुदाय की चेतना देश-काल के अनुसार परिवर्तित होते हुए भी परंपरा से बँधी होती है। इसी तरह सांस्कृतिक आलोचना भी रचना में सांस्कृतिक तत्वों की छानबीन करती है और उसके सांस्कृतिक महत्व और अवदान को रेखांकित करती है । द्विवेदी जी ने अपने समीक्षात्मक ग्रंथों में ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आलोचना का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। आचार्य मिश्र ने 'भूषण ग्रंथावली' और परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' में ऐतिहासिक विवेचना एवं मूल्यांकन को चरितार्थ किया है।

४. मार्क्सवादी आलोचना:

प्रेमचंद ने अपने अध्यक्षीय भाषण में साहित्य के नए उद्देश्यों और सौंदर्य की नई कसौटियों और दृष्टियों पर विस्तृत प्रकाश डाला । इसी के साथ हिंदी में प्रगतिशील लेखन और

मूल्यांकन का दौर शुरू हुआ । प्रगतिशील आंदोलन का वैचारिक आधार मार्क्सवादी दर्शन रहा है जो वस्तुजगत को ही चरम सत्य मानता है और विकास की द्वंद्वात्मक प्रणाली में विश्वास करता है । मार्क्सवादी की मान्यता है कि मानव-चेतना का नियमन सामाजिक परिस्थितियाँ करती हैं और कला चेतना मानव चेतना का ही उदात्त रूप है, इसलिए प्रत्येक युग का कलाकार जाने-अनजाने उस वर्ग विशेष का ही प्रतिनिधित्व करता है जिसमें वह पला होता है। यह दुनिया दो वर्गों में विभक्त हैं- एक शोषक वर्ग है, दूसरा शोषित। शोषक वर्ग का पूँजी पर एकाधिपत्य है और शोषित वर्ग अपने अथक श्रम के बावजूद हर तरह से दीन-हीन और विपन्न है। यही सर्वहारा वर्ग है। मार्क्सवाद मानता है कि पूँजीवाद को मिटाने और साम्यवाद की स्थापना का धर्म है कि वह अपनी रचना के माध्यम से सर्वहारा के स्वाभिमान को जागृत करे और उसे अपने हक की लड़ाई के लिए तैयार करे। इस धारणा के तहत जो रचनाएँ होती हैं उन्हें मार्क्सवादी या प्रगतिवादी साहित्य कहते हैं और रचना में उपर्युक्त विशेषताओं की खोजबीन करने वाली आलोचना को मार्क्सवादी आलोचना कहा जाता है।

मार्क्सवादी-विचार-दर्शन से अनुप्राणित होकर आरंभ में जिन आलोचकों ने मार्क्सवादी आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया, जिसमें शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त और रामविलास शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। शिवदान सिंह चौहान ने 'प्रगतिवाद', 'साहित्य की परख', 'आलोचना के मान', 'साहित्य की समस्याएँ' और 'साहित्यानुशीलन', प्रकाशचन्द्र गुप्त ने 'हिंदी साहित्य', 'आधुनिक हिंदी साहित्य' और 'हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा' तथा रामविलास शर्मा ने 'प्रगति और परंपरा', 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', 'आस्था और सौंदर्य' जैसे आलोचनात्मक ग्रंथों से हिंदी की मार्क्सवादी समीक्षा का स्वरूप विकसित किया। तथा रामविलास शर्मा ने आचार्य शुक्ल की लोकमंगल की भावना को. प्रगतिशील साहित्यालोचन के केंद्र में रखकर जिस तरह परम्परा का मूल्यांकन किया है, वह हिंदी की प्रगतिशील आलोचना का श्रेष्ठ उदाहरण है। आगे चलकर हिंदी में मार्क्सवादी समीक्षा का काफी विकास हुआ । इसकी विस्तृत चर्चा स्वात्रंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना के अंतर्गत की जाएगी।

५. नयी समीक्षा:

रामविलास शर्मा के साथ स्वातंत्र्योत्तर काल की प्रगतिशील हिंदी आलोचना या मार्क्सवादी हिंदी आलोचना को सशक्त बनाने वालों में गजानन माधव मुक्तिबोध, नामवर सिंह, रांगेय राघव, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, शिवकुमार मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं । मुक्तिबोध ने 'कामायनी : एक पुनर्विचार', 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध', 'नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' जैसे ग्रंथों से हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना को एक ऐसी ऊँचाई प्रदान की है जिसको छू पाना परवर्ती आलोचना के लिए मुश्किल हो रहा है। मुक्तिबोध ने छायावादी काव्य के प्रति सकारात्मक रुख अपनाया और उसकी प्रगतिशील भूमिका की सराहना भी की । मुक्तिबोध ने कामायनी को द्विअर्थक कृति न मानकर एक फैंटेसी माना और यह स्थापित किया कि कामायनी इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उसमें मनु को देश-कालातीत, शाश्वत मानव का रूप दिया गया है बल्कि उसकी महत्ता इसमें है कि उसमें पूँजीवादी ह्रासगत सभ्यता के भीतर व्यक्ति के भीतरी विकेंद्रीकरण का प्रश्न बड़े जोर से उठाया गया है। 'एक साहित्यिक की डायरी' एवं 'नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' जैसी पुस्तकों की रचना

करके मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि और कला-सिद्धांतों की ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत कर दी, जो फिलहाल हिंदी आलोचना में एक मानक बनी हुई है।

मुक्तिबोध के साथ ही नामवर सिंह ने भी हिंदी की मार्क्सवादी समीक्षा को काफी सुदृढ़ किया है। उनकी महत्वपूर्ण आलोचना-पुस्तकों में छायावाद', 'कविता के नये प्रतिमान', 'दूसरी परम्परा की खोज', और 'वाद-विवाद संवाद', विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन पुस्तकों के आधार पर नामवर सिंह की मार्क्सवादी आलोचना-दृष्टि और उनकी व्यावहारिक समीक्षा का अच्छा परिचय प्राप्त किया जा सकता है। नामवर सिंह एक प्रखर समीक्षक के रूप में जाने जाते हैं। वे रसवादी समीक्षक डॉ. नगेन्द्र, मार्क्सवादी समीक्षक रामविलास शर्मा और कलावादी समीक्षक अशोक वाजपेयी से बराबर भिड़ते रहे हैं और इस भिड़न्त से ही उन्होंने अपनी आलोचना में वह धार पैदा की है जिसका उल्लेख लोग कभी-कभी 'नामवरी तेवर' के रूप में करते हैं। 'वाद-विवाद संवाद' पुस्तक उनकी इस उस्तादी का श्रेष्ठ उदाहरण है। इस पुस्तक में नामवर सिंह ने 'जनतंत्र और समालोचना', आलोचना की स्वायत्तता', 'प्रासंगिकता पर पुनश्च : प्रलय की छाया', 'आलोचना की संस्कृति और संस्कृति की आलोचना' जैसे निबंधों से हिंदी आलोचना को नए सरोकारों से जोड़ते हुए आने वाले खतरों से जिस तरह आगाह किया है, वह उनकी प्रखर आलोचना-दृष्टि और सचेत आलोचना-कर्म का उत्कृष्ट उदाहरण है। वाद-विवाद नामवर सिंह की प्रकृति में है और वे यह मानते हैं कि "वादे-वादे जायते तत्वबोधः।"

नामवर सिंह डॉ. नगेन्द्र, विजयदेव नारायण साही, अशोक वाजपेयी, रामविलास शर्मा और राजेन्द्र यादव से बराबर वाद-विवाद करते रहे हैं। इस विवाद से हिंदी आलोचना को तेवर भी मिला है और दृष्टि भी। मार्क्सवादी आलोचना-परंपरा के अन्य आलोचकों में रांगेय राधव (प्रगतिशील साहित्य के मापदंड, काव्य, यथार्थ और प्रगति, काव्य के मूल विवेच्य) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये रूप-तत्व को बहुत महत्व नहीं देते हैं। इन्होंने द्वन्द्वात्मक भौकिकवाद के आलोक में भारतीय काव्यशास्त्र का भी अध्ययन किया है। ये प्रतिबद्ध मार्क्सवादी समीक्षक हैं। अज्ञेय ने उपने 'तारसप्तक' के वक्तव्य में 'जीवन की जटिलता', 'स्थिति-परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति', 'कवि की उलझी हुई संवेदना', साधारणीकरण और सम्प्रेषण की समस्या, जैसी अनेक नई बातों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और नए भावबोध से लिखी गई कविताओं के लिए नए आलोचना-प्रतिमानों की आवश्यकता पर बल दिया। इसी समय अज्ञेय ने 'तारसप्तक' में लिखा – "नयी कविता का अपने पाठक और स्वयं के प्रति उत्तरदायित्व बढ़ गया है। यह मानकर कि शास्त्रीय आलोचकों से उसका सहानुभूतिपूर्ण तो क्या पूर्वाग्रहरहित अध्ययन भी नहीं मिला है, यह आवश्यक हो गया है कि स्वयं आलोचक तटस्थ और निर्मम भाव से उसका परीक्षण करें। दूसरे शब्दों में परिस्थिति की माँग यह है कि कविगण स्वयं एक दूसरे के आलोचक बनकर सामने आएँ।" कवियों को आलोचना-कर्म में प्रवृत्त करने का यह आह्वान नया नहीं था। छायावादी कवियों ने भी यह कार्य किया था।

यहाँ थोड़ा रुककर आंग्ल-अमरीकी 'नयी समीक्षा' को समझ लेना जरूरी है। टी. एस. इलियट, आई ए. रिचर्ड्स, जॉन क्रो रेन्सम, एलेन टेट, राबर्ट पेन वारेन, आर. पी. ब्लेकमर, क्लीन्थ ब्रुक्स आदि ने 'नयी समीक्षा' का जो शास्त्र और दर्शन तैयार किया उसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं:

१. रचना एक पूर्ण एवं स्वायत्त भाषिक संरचना है। इसलिए भाषा के सर्जनात्मक तत्वों का विश्लेषण ही समीक्षा का मुख्य कार्य है।

२. ऐतिहासिक, सामाजशास्त्रीय, दार्शनिक एवं विश्लेषणवादी समीक्षाएँ अनावश्यक एवं अप्रसांगिक हैं। क्योंकि ये सहित्येतर प्रतिमान हैं।

३. रचना का मूल्यांकन रचना के रूप में ही करना अभीष्ट है।

४. रचना की आंतरिक संगति और संश्लिष्ट विधान के विवेचन-विश्लेषण के लिए उसका गहन पाठ आवश्यक है।

हिंदी के आलोचकों ने भी जटिल भावबोध और तदनुकूल जटिल कलात्मक उपादानों शब्द-संकेतों, बिंबों, प्रतीकों, उपमानों आदि - से युक्त संश्लिष्ट काव्यभाषा वाली नयी कविता की समीक्षा के लिए एक सर्वथा भिन्न समीक्षा-दृष्टि एवं शैली की आवश्यकता का अनुभव किया जिसके फलस्वरूप हिंदी में 'नयी समीक्षा' का प्रसार हुआ। आधुनिक भावबोध को केंद्र में रखकर समीक्षा-कर्म में प्रवृत्त होने वाले समीक्षकों में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, रघुवंश, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेवनारायण साही, जगदीश गुप्त, मलयज, रामस्वरूप चतुर्वेदी, अशोक वाजपेयी, रमेशचन्द्र शाह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन समीक्षकों ने युगीन परिवेश में व्याप्त विसंगति', विडम्बना', 'असहायता', 'निरुद्देश्यता', 'एकाकीपन', 'अजनबीपन', 'ऊब', 'संत्रास', 'कुंठा' आदि का विश्लेषण करते हुए 'अनुभूति की प्रामाणिकता' और 'व्यक्तित्व की अद्वितीयता' को रेखांकित किया और 'अस्मिता के संकट' से गुजरते हुए मनुष्य की मुक्ति की आवश्यकता पर बल दिया। इसके साथ ही रचना को भाषिक सर्जना मानकर काव्य-भाषा के विश्लेषण को समीक्षा का मुख्य विषय बनाया।

नयी समीक्षा की विशेषताओं को उद्घाटित एवं स्थापित करने वाली तथा इस दृष्टि से नयी कविता और कवियों की समीक्षा करने वाली रचनाओं में 'भवंती', 'आत्मनेपद', 'आलवाल', 'अद्यतन' (अज्ञेय), 'नयी कविता के प्रतिमान' (लक्ष्मीकांत वर्मा), हिंदी नवलेखन', 'काव्यधारा के तीन निबंध', 'भाषा और संवेदना', 'सर्जन और भाषिक संरचना',(रामस्वरूप चतुर्वेदी), 'मानवमूल्य और साहित्य' (धर्मवीर भारती), 'साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य' (रघुवंश), नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ' (गिरिजाकुमार माथुर), 'नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ' (जगदीश गुप्त), 'कविता से साक्षात्कार', 'संवाद और एकालाप' (मलयज), 'समानान्तर', 'वागर्थ', 'सबद निरंतर',(रमेशचन्द्र शाह), 'फिलहाल' (अशोक वाजपेयी) आदि उल्लेखनीय हैं। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि हिंदी के नए समीक्षकों ने काव्य के संदर्भ में भाषा के महत्व को स्वीकार किया, उसके सर्जनात्मक तत्वों का विश्लेषण और मूल्यांकन किया, सर्जनात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट रचना की अद्वितीयता और महत्ता को सराहा, संवेदना और शिल्प की अन्विति को रेखांकित किया, वस्तु और रूप के संबंधों का विश्लेषण किया किंतु अमरीकी या पश्चिम के नए समीक्षकों की तरह रचना को उसके ऐतिहासिक संदर्भो से पूरी तरह काटकर नहीं देखा। इतना अवश्य है कि कई समीक्षकों ने कविता के सर्जनात्मक तत्वों के विश्लेषण, उनकी संश्लिष्टता और अनुभव की अद्वितीयता आदि पर विशेष बल देते हुए अपने कलावादी रुझान को अधिक मुखर रूप में व्यक्त किया। यद्यपि नयी समीक्षा का ज्वार बड़ी जल्दी उतर गया, किंतु यह भी एक तथ्य है कि इसकी वेगवती धारा थोड़ी देर के लिए ही सही, मार्क्सवादी समीक्षकों को भी अपने प्रवाह में बहा ले गई।

नयी समीक्षा का संबंध विशेष रूप से कविता से ही रहा है। कहना चाहिए कि यह कविता-केंद्रित ऐसी आलोचना-पद्धति थी जिसने कविता की स्वायत्तता और सर्जनात्मकता पर अधिक बल दिया। उपन्यास, कहानी, नाटक आदि गद्य-विधाओं के मूल्यांकन के लिए इस पद्धति का उपयोग बहुत कम हुआ। नयी समीक्षा की संरचना-केंद्रित आलोचना-दृष्टि को और अधिक सूक्ष्म और सघन करने वाली एक और समीक्षा-पद्धति का विकास हुआ जिसे शैली विज्ञान कहा गया। यह भाषिक विश्लेषण की वह वैज्ञानिक पद्धति है जिसमें भाषा के सभी उपादानों - शब्द, पद, वाक्य, ध्वनि, छंद को अध्ययन का विषय बनाया जाता है। हिंदी में इस समीक्षा-मद्धति के पुरस्कर्ता हैं – रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, जिन्होंने शैली विज्ञान का सिद्धांत भी तैयार किया और तदनुकूल व्यावहारिक शैली वैज्ञानिक समीक्षा भी लिखी। पांडेय शशिभूषण शीतांशु और सुरेश कुमार ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। पं. विद्यानिवास मिश्र ने शैलीविज्ञान की जगह रीति विज्ञान को प्रमुखता प्रदान की, किंतु उनके तर्को को अधिक बल नहीं मिला।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने शैली वैज्ञानिक समीक्षा का जो व्यावहारिक रूप केदारनाथ सिंह की कविता 'इस अनागत का करें क्या' की समीक्षा करके प्रस्तुत किया उसे डॉ. बच्चन सिंह ने कविता की शव-परीक्षा कहकर शैली-वैज्ञानिक समीक्षा की सीमाओं को भली-भाँति उजागर कर दिया। उन्होंने उस समीक्षा की समीक्षा करते हुए लिखा - "स्पष्ट है कि शैली वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर वाक्यों, उपवाक्यों, संज्ञा, सर्वनाम, पद, पद-बंध आदि के माध्यम से कविता की जो परीक्षा की गई है, वह उसकी शव-परीक्षा बन जाती है। इसमें जिस व्याकरण की सहायता ली गई है वह कविता को छोटे-छोटे खंडों में काट तो देता है पर उसे संश्लेषित नहीं कर पाता। इस व्यवच्छेदन-व्यापार से मूल्यांकन का संबंध निःशेष हो जाता है।" दरअसल शैली वैज्ञानिक समीक्षा एक प्रकार का भाषिक विश्लेषण है जो काव्य भाषा को तार-तार करके उसके प्रयोग वैशिष्ट्य और कलात्मक बारीकी को तो प्रस्तुत कर देता है। किंतु न तो काव्यमर्म को उद्घाटित कर पाता है, न ही रचना की मूल्यवत्ता को ठीक से रेखांकित कर पाता है। यह एक तरह से नींबू-निचोड़ समीक्षा है जो रस को बाहर फेंक देती है और गूदे का विश्लेषण करके उसका सौंदर्य देखती हैं।

'नयी समीक्षा' 'शैली विज्ञान' और संरचनावाद' के साथ ही हिंदी में सर्जनात्मक आलोचना की भी काफी चर्चा हुई है। समीक्षक के कार्य की सृजनशीलता की चर्चा करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है "आलोचक या समीक्षक का कार्य, वस्तुत: कलाकार या लेखक से भी अधिक तन्मयतापूर्ण और सृजनशील होता है, उसे एक साथ जीवन के वास्तविक अनुभवों के समुद्र में डूबना पड़ता है और उससे उबरना भी पड़ता है कि जिससे लहरों का पानी उसकी आँखों में न घुस पड़े। उनकी दृष्टि में 'जीवन-सत्यों पर आधारित साहित्य-समीक्षा स्वयं एक सृजनशील कार्य है और वह न केवल लेखक को वरन् पाठक को भी जीवन-सत्यों के अपने उद्घाटनों द्वारा सहायता करती जाती है।' इसीलिए मुक्तिबोध 'आलोचना को रचना की पुनर्सष्टि' मानते हैं। नामवर सिंह भी लगभग इसी तरह की बातें कहते हैं – "आलोचक जब आलोच्य कृति के संपूर्ण कथ्य को कथन-मात्र के रूप में स्वीकार करके आलोचना-कर्म में प्रवृत्त होता है तो उस पर कथ्य-कथन संबंध में प्रवेश करने की कठिन जिम्मेदारी आ जाती है। तादात्म्य के रूप में प्रस्तुत कथ्य-कथन के बीच वह एक तरह से सेंध लगाता है और अंतर्निहित तनाव की तलाश करता है।

आलोचक की यह तलाश ही उसकी सृजनशीलता है।" मुक्तिबोध यह मानते हैं कि रचना में इस प्रकार का सृजनात्मक अंत:प्रवेश उसके कलात्मक सौंदर्य के माध्यम से ही किया जा सकता है – "कलात्मक सौंदर्य तो वह सिंहद्वार है जिसमें से गुजरकर ही कृति के मर्म क्षेत्र में विचरण किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।" अभिप्राय यह कि आलोचना भी एक रचना है और उसकी यह रचनात्मकता आलोच्य कृति में उसकी अभिव्यक्ति के उपकरणों के माध्यम से उसमें अंत: प्रवेश करके ही उपलब्ध की जा सकती है । इसमें कोई संदेह नहीं कि सर्जनात्मक आलोचना उच्च श्रेणी की आलोचना है और वह आलोचक को भी रचनाकार की श्रेणी में रख देती है तथा उसकी आलोचना को रचनात्मक समृद्धि प्रदान करती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना में भी सर्जनात्मकता के तत्व प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं । मुक्तिबोध की पुस्तक 'कामायनी : एक पुनर्विचार' सर्जनात्मक आलोचना का श्रेष्ठ उदाहरण है। अशोक वाजपेयी और मलयज की आलोचनाएँ भी सर्जनात्मक आलोचना की विशेषताओं से परिपूर्ण हैं।

आलोचना का कार्य साहित्य का निर्णय अथवा व्याख्या करना नहीं है । वह स्वयं भी रचनात्मक हो सकती है यदि वह अपने में आलोच्य कृति की पुनर्रचना कर ले । यह पुनर्रचना आलोचक की रचनात्मक क्षमता पर निर्भर करती है। अत: कहा जा सकता है कि रचनात्मक प्रतिभा से संपन्न आलोचक ही सर्जनात्मक समीक्षा लिख सकता है, किंतु इसका सरलीकरण इस रूप में नहीं हो सकता कि रचनाकार ही श्रेष्ठ सर्जनात्मक आलोचक हो सकता है बावजूद इस सत्य के कि अनेक रचनाकारों ने उत्कृष्ट आलोचनाएँ भी लिखी हैं । 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला', 'अज्ञेय', मुक्तिबोध', 'विजयदेव नारायण साही', और 'शमशेर' इस बात के उदाहरण हैं कि उनकी कविताएँ जितनी अच्छी हैं, उतनी ही अच्छी और संभावनापूर्ण उनकी समीक्षाएँ भी हैं। जिस तरह संभावनापूर्ण होकर कोई रचना अत्यधिक रचनात्मक प्रमाणित होती है, उसी तरह संभावनापूर्ण होकर कोई आलोचना भी अपनी रचनात्मकता को प्रत्यक्ष करती है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना का विवेचन करते हुए प्राय: आज तक की हिंदी आलोचना की प्रवृत्तियों और उपलब्धियों को रेखांकित करने की कोशिश की गई है। इस दौर में मुख्य रूप से मार्क्सवादी और रूपवादी प्रवृत्तियों की प्रबलता है लेकिन अत्यधिक प्रभावी और प्रसरणशील आलोचना-पद्धति के रूप में मार्क्सवादी आलोचना का ही विकास हो रहा है। मार्क्सवादी समीक्षकों में रामविलास शर्मा और नामवर सिंह के साथ इधर नए समीक्षकों की एक बड़ी पंक्ति तैयार हुई है। जिसमें शिवकुमार मिश्र, धनंजय वर्मा, निर्मला जैन, नंदकिशोर नवल, शंभुनाथ, कर्णसिंह चौहान, मधुरेश, खगेन्द्र ठाकुर आदि के नाम उल्लेखनीय है।

मार्क्सवादियों में भी जनवादियों की एक अलग पीढ़ी तैयार हो रही है जिसकी अगली पंक्ति में शिवकुमार मिश्र और मैनेजर पाण्डेय दिखाई पड़ रहे हैं। दरअसल इस समय रचना और आलोचना को लेखक-संगठन और लघु पत्रिकाएँ अपने-अपने ढंग से निर्देशित-प्रेरित कर रही हैं और तदनुसार 'किस्म-किस्म' की आलोचना प्रकाश में आ रही है, जिसमें अपने को और अपने पक्षधरों को स्थापित और उत्साहित करने की प्रवृत्ति अधिक है और रचना का वस्तुगत मूल्यांकन गौण हो गया है। एक ही रचना एक खेमे में श्रेष्ठ और महान मानी जाती है. दूसरे खेमे में निकृष्ट और महत्वहीन । यह आलोचना-जगत में एक प्रकार की वही अराजकता है जो वर्तमान भारतीय राजनीति में आए दिन दिखाई पड़ रही है।

१०.४ सारांश

हिंदी आलोचना का उत्तरोत्तर विकास हुआ है और नयी रचनाशीलता के साथ-साथ हिंदी आलोचना ने भी अपने में बराबर परिवर्तन भी किया है। यह रचना के समानान्तर आलोचना की वह यात्रा है जो रचना को परखने का भी कार्य करती है और रचना के दबावों के अनुरूप अपने में नयी शक्ति और सामर्थ्य का भी विकास करती है । हिंदी आलोचना की यह प्रगतिशीलता इस रूप में अधिक स्पष्टता के साथ देखी जा सकती है कि जो आलोचना आरंभ में शास्त्रनिष्ठ और सैद्धांतिक अधिक थी, वह उत्तरोत्तर उन्मुक्त होती हुई आलोचना की सर्जनात्मकता के बिंदु तक पहुँच गई । यदि आलोचना में कठमुल्लापन ही बना रहता, देशी-विदेशी संदर्भो से जुड़कर अपने को नवीन करने की प्रवृत्ति न होती, रचना में अंत:प्रवेश करके रचना-मूल्यों को टटोलने की उत्सुकता न होती तो आलोचना और रचना के बीच घनिष्ठ रिश्ता कायम न हो पाता ।

हिंदी आलोचना के विकास-क्रम का अध्ययन करने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि समय-समय पर अनेक समीक्षकों ने अपनी उत्कृष्ट आलोचना-प्रतिभा और साहित्य की गहरी समझ से हिंदी आलोचना को नई ऊँचाई और गरिमा प्रदान की है । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ नगेन्द्र, डॉ रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, डॉ.नामवर सिंह, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. रघुवंश, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, अशोक वाजपेयी, मलयज, विजयदेव नारायण साही आदि ऐसे आलोचक हैं जिन्हेंने आलोचना को अपनी सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा से समृद्ध किया है और उसे जड़ या स्थिर होने से बचाया है । इनकी व्यावहारिक आलोचनाओं से हिंदी में रचनात्मक उत्कर्ष की नई दिशाएँ भी स्पष्ट हुई हैं । दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि इनकी आलोचनाओं और स्थापनाओं ने रचनाओं के लिए नई चुनौतियाँ भी पेश की हैं । इससे रचना और आलोचना का वह द्वंद्वात्मक रिश्ता भी स्पष्ट हुआ है जो दोनों में गुणात्मक विकास को प्रत्यक्ष करने में सक्षम होता है ।

१०.५ बोध प्रश्न

१. हिन्दी आलोचना का अर्थ बताते हुए उसके विकास क्रम को लिखिए ।

२. हिन्दी आलोचना के विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए ।

३. हिन्दी आलोचना के उद्भव एवं विकास को सोदाहरण लिखिए ।

४. आधुनिक हिन्दी आलोचना की आरंभिक स्थिति पर विस्तार से चर्चा कीजिए ।

१०.६ अतिलघुत्तरीय प्रश्न

१. 'आलोचना का उद्देश्य किसी वस्तु के मूल्य का निर्णय करना है।' आलोचना के संबंध में यह परिभाषा किस विद्वान की है?

उत्तर: टी. एस. इलियट

२. आलोचना से संबंधित दो विद्वानों के नाम लिखिए।

उत्तर: आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल

३. 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की समीक्षा कौनसे विद्वान द्वारा की गई?

उत्तर: श्रीनिवास दास

४. द्विवेदी युग में किस प्रकार की आलोचना विकसित हुई?

उत्तर: सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक

५. चिंतामणि और रस मीमांसा जैसे समीक्षात्मक ग्रंथ के लेखक है?

उत्तर: आचार्य रामचंद्र शुक्ल

१०.७ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र
- हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रामकुमार वर्मा
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
- आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह

*****

११

आत्मकथा

इकाई की रूपरेखा

११.० उद्देश्य
११.१ प्रस्तावना
११.२ आत्मकथा का अर्थ एवं परिभाषा
११.३ आत्मकथा की विशेषताएं
११.४ आत्मकथा का उद्भव एवं विकास
    ११.४.१ आत्मकथा का आरंभिक काल
    ११.४.२ पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु युग)
    ११.४.३ नवजागरण काल (द्विवेदी युग)
    ११.४.४ छायावाद युग
    ११.४.५ छायावादोत्तर युग
    ११.४.६ समकालीन युग (२००० से अब तक)
११.५ सारांश
११.६ दिर्घोत्तरी प्रश्न
११.७ वैकल्पिक प्रश्न

११.० उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से विद्यार्थी आत्मकथा संबंधी समग्र ज्ञान अर्जित कर सकेंगे। इस इकाई में आत्मकथा अर्थ, परिभाषा, विकास क्रम, प्रमुख लेखक और उनके द्वारा लिखित आत्मकथा का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा।

११.१ प्रस्तावना

हिंदी की साहित्य विधाओं में समृद्ध रूप से कविता, कहानी, नाटक, निबंध, उपन्यास का विकास हुआ है ।आधुनिक समय में साहित्य इन्हीं विधाओं में न सिमट कर वह विस्तृत रूप में अन्य विधा जीवनी, आत्मकथा, डायरी, संस्मरण, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, रेखाचित्र आदि विधाओं में विकास हो रहा है। वर्तमान समय में ज्यों- ज्यों जीवन की जटिलता, मन की कुंठाएँ, स्त्रीपुरुष संबधों की रहस्यात्मकता, मानवीय जीवन का संघर्ष बढ़ता जाएगा साहित्य में गद्यात्मक विधाएँ और समृद्ध होती जाएंगी। हिंदी साहित्य की अन्य गद्य विधाओं में चर्चित और समृद्ध विधा आत्मकथा ही मानी जाती है । क्योंकि आत्मकथा का कोई न कोई अंश हमें मध्यकाल में ही पद्य के रूप में मिल जाता है । अतः हम आत्मकथा को पूर्ण रूप से नवीन विधा नहीं कह सकते । लेकिन प्राचीन काल में आत्मकथा लेखन का विकास न के

बराबर ही था आधुनिक समय में आने के पश्चात आत्मकथा लेखन की परम्परा में विकास होता चला गया। आत्मकथा लेखन को समझने से पहले सर्वप्रथम हम जानेंगे आत्मकथा क्या है? इसकी परिभाषा एवं स्वरूप को समझना भी आवश्यक है। आत्मकथा लेखन एक ऐसी परम्परा है जिसमें कोई महान व्यक्ति या लेखक अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का श्रृंखलाबद्ध विवरण स्वयं लिखता है, उसे साहित्य में आत्मकथा कहा जाता है।

आत्मकथा लेखन से समाज में व्यक्ति का संघर्ष, उसके जीवन का अध्याय, सकारात्मक एवं नाकारात्मक पक्ष दोनों स्वरूप पाठकों के समक्ष आते है। जिसमें बहुत घटनाएं ऐसी होती है जो समाज में व्यक्ति को जीवन जीने का सही राह और प्रेरणा श्रोत बन जाती है। वह समाज में बदलाव लाने का नया साधन बन जाता है। इसलिए साहित्य में आत्मकथा महत्वपूर्ण विधा में से मानी जाती है। आत्मकथा में रचनाकार को सदैव निरपेक्ष एवं तटस्थ रहना चाहिए। तभी वह सही रूप से अपने जीवन के कमजोर तथा दृढ़ पक्षों को समाज के सामने रख पायेंगे। आत्मकथा विधा को आंतरिक रूप से समजने के लिए उसकी पृष्ठभूमि एवं अर्थ को समझना अति आवश्यक है।

११.२ आत्मकथा का अर्थ एवं परिभाषा

आत्मकथा का अंग्रेजी में शाब्दिक रूप 'आटोबायोग्राफी' है। संस्कृत में आत्मकथा को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि "आत्मनः विषये कथ्यते यस्यां साआ" त्मकथा अर्थात ऐसी कथा आत्मकथा है जो स्वयं के बारे में लिखी गई हो। आत्मकथा, आत्मचरित, आत्मचरित्र को बहुधा पर्यायवाची शब्द माना जाता है जो स्थूल रूप से सही है लेकिन सूक्ष्म रूप से आत्मकथा व आत्मचरित के मध्य विभाजक रेखा खींची जा सकती है। "एक सूक्ष्म अन्तर कदाचित यह है कि आत्मचरित्र कहलाने वाली रचना किंचित विश्लेषणात्मक एवं विवेक प्रधान होती है तथा आत्मकथा कही जाने वाली कृति अपेक्षया अधिक रोचक और सुपाठ्य होती है।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका "में आत्मकथा के संदर्भ में व्याख्यायित है" आत्मकथा, व्यक्ति के जीये हुए जीवन का ब्यौरा है, जो स्वयं उसके द्वारा लिखा जाता है।" और "आत्मकथा का मूल सिद्धांत आत्मविश्लेषण होना चाहिए।" अतः लेखक स्वयं अपने जीवन का क्रमिक ब्यौरा पेश करता है उसे 'आत्मकथा' कहते हैं। इसी तरह कैसेल ने 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिटरेचर' में आत्मकथा को परिभाषित करते हुए कहा गया है "आत्मकथा व्यक्ति के जीवन का विवरण है, जो स्वयं के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें जीवनी के अन्य प्रकारों से सत्य का अधिकतम समावेश होना चाहिए।" अतः आत्मकथा में लेखक आत्मान्वेषण और आत्मालोचन करता है, जिससे उसका सम्पूर्ण जीवन प्रत्यक्ष रूप से सभी के सामने आता है। इसमें लेखक अपने अंतर्जगत को बहिर्जगत के समक्ष प्रस्तुत करता है। आत्मकथा - लेखक निर्मम होकर अपने दोषों को भी उद्घाटित करता है और इसीलिए उसका लेखन सत्याधारित होता है। प्राचीन समय में १६६५ ही बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'अर्धकथा' रचना ने पद्य में आत्मकथा की नींव पड़ गई थी परन्तु उसका विस्तार आधुनिक काल में होता है आत्मकथा को विविध साहित्यकारों तथा विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है।

पाश्चात्य विद्वान 'पास्कल' ने आत्मकथा को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "आत्मकथा जीवन की या उसके किसी एक भाग की सच्ची घटनाओं को जिस समय में वह पटित हुई हो, उन समस्त चेष्टाओं को पुनर्गठित करती है। इसका मुख्य संबंध आत्मविवेचन से होता है। बाह्य विश्व से नहीं। यद्यपि व्यक्तित्व को अद्वितीय बनाने के लिए बाह्य विश्व को भी लाया जा सकता है और आवश्यकतानुसार छोड़ा भी जा सकता है। जीवन को पुनर्गठित करना एक असंभव कार्य है। एक ही दिन के आगे पीछे का अनुभव असीम होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है आत्मकथा बीती हुई घटनाओं से बनती है।"

भारतीय विद्वानों ने आत्मकथा विधा के विकास के बाद इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। चूंकि आत्मकथा विधा का विकास ही आधुनिक काल में भारतेन्दु के द्वारा किया जाता है इस वजह से भी यह विधा इस समय तक ढंग से अपना रूप ग्रहण न कर पाई थी। जिसके कारण इसे परिभाषित करना कठिन था। भारतेन्दु के समय में यह विधा एक परिचय पत्र के रूप में शुरू हुई थी जो बाद के समय में जाकर अपना वास्तविक रूप ग्रहण कर पाती है।

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार "आत्मकथा लेखक के जीवन का संबंधित वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन तथा अपने व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व प्रदर्शित किया जाना संभव है।"

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "अपने द्वारा लिखी हुई अपनी जीवनी को आत्मकथा कहते है।"

डॉ . नगेन्द्र ने आत्मकथा को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथक की रचना नहीं करता , कोई स्वप्न सृष्टि नहीं करता, वरन् अपने गत जीवन के खट्टे - मीठे, उनके अंधेरे, प्रसन्न - विषान्ण, साधारण असाधारण संचयन पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है। अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता है। और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य संबंध सूत्रों की पड़ताल करता है।"

११.३ आत्मकथा की विशेषताएँ

आत्मकथा की विशेषताएँ आत्मकथा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं।

(i) आत्मकथा का नायक अपने आप एक लेखक होता है।

(ii) आत्मकथा में काल्पनिक प्रसंगों हेतु कोई जगह नहीं होती क्योंकि आत्मकथा यथार्थ व प्रामाणिक कथनों पर आधारित होती है।

(iii) आत्मकथा में केवल आत्म-विश्लेषण ही नहीं होता अपितु बाहरी संसार से सम्बन्धित क्रियाओं प्रतिक्रियाओं का भी विवेचन किया जाता है।

(iv) आत्मकथा की शैली में इस प्रकार की प्रभावोत्पादकता होनी चाहिए जो पाठक के मस्तिष्क व अर्न्तमन पर पूर्णत: अभिव्यक्त हो जाये।

(v) आत्मकथा के लेखक को अपने जीवन सम्बन्धी घटनाओं व परिस्थितियों का उल्लेख पूरी ईमानदारी से करना चाहिए क्योंकि ईमानदारी व सच्चाई आत्मकथा का मुख्य प्राण है। अतएव सत्यता की रक्षा करना लेखक का धर्म है।

११.४ आत्मकथा का उद्भव एवं विकास

११.४.१ आत्मकथा का आरंभिक काल:

सर्वप्रथम आत्मकथा की आरंभिक अवस्था प्राचीन काल के संस्कृत साहित्य में आत्मचरित के माध्यम से हमारे समरूप उपस्थित है उसमें कवि अपनी रचनाओं के साथ साथ अपने जीवन का भी परिचय दिता है। जो उस समय प्राचीन ग्रंथों में तथा शिलालेखो में उपलब्ध है जैसे 'शिशुपाल वध' रचना में कवि माघ ने अपना तथा पितामह का परिचय दिया है और अपनी वंश- परम्परा का गुणगान किया है । संस्कृत में महाकवि बाणभट्ट द्वारा रचित 'हर्षचरित तथा 'कादम्बरी में कवि ने अपने जीवन की घटनाओं का उल्लेख किया है जहाँ पर कुछ अंश आत्मकथा की प्रवृत्ति मिलती है । प्रारंभिक काल के कुछ रचनाओं में आत्मकथा का अंश भर प्राप्त हुआ है । आत्मकथा के रूप में जैन कवि बनारसीदास की 'अर्धकथा' (१६४१) हिन्दी की प्रथम आत्मकथाओं में गिनी जाती है । हिन्दी के प्राचीन साहित्य में आत्मकथात्मक सामग्री भी यत्र-तत्र ही मिलती है, सुनिश्चित और व्यवस्थित आत्मकथाओं के लिखे जाने का तो कोई प्रचलन ही न था। यह आत्मकथा पद्य में लिखी गयी है। आत्मकथा का सुव्यवस्थित विकास आधुनिक काल में हुआ।

११.४.२ पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु युग):

आधुनिक युग के पुनर्जागरण काल में जहाँ राजनीतिक स्थितियों में उथल- पुथल चल रही थी वही साहित्य के अन्य गद्य विधा के रूप में आत्मकथा लिखने की ओर लेखकों का ध्यान गया। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' नाम से आत्मकथा लिखना प्रारम्भ किया था । जितना अंश वे लिख सके ,उसमें उन्होंने अपने परिवेश के समय देशकाल, वातावरण के साथ साथ राजनीति में मुफ्तखोरी, सिफारिशे आदि का सजीव चित्र खीचा है। स्वामी दयानन्द ने पूना के व्याख्यानों के अन्तर्गत अपने जीवन से सम्बद्ध विवरण दिये थे। अम्बिकादत्त व्यास ने 'निजवृत्तान्त 'नामक आत्मकथा लिखी। भारतेन्दु मंडल के प्रसिद्ध रचनाकार प्रतापनारायण मिश्र की आत्मकथा 'प्रताप चरित' है, जो अपूर्ण रह गयी। यह इनके ग्रंथावली में संकलित किया गया है। स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मकथा 'कल्याण पथ का पथिक' हिन्दी की प्रारम्भिक आत्मकथाओं मे एक है। इस प्रकार भारतेन्दु काल के रचनाकरों में भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र तथा अम्बिकादत्त व्यास ने आत्मकथा को लिख कर इस विधा को विस्तृत करने में अपना योगदान दिया। कालान्तर में अनेक सम्बद्ध और स्फुट आत्मकथाएँ हिन्दी में लिखी जाती रही। स्पष्ट रूप से लिखी गयी आत्मकथाओं मे श्यामसुन्दर दास की 'मेरी आत्मकहानी' और राजेन्द्रप्रसाद की 'आत्मकथा' प्रमुख है । राजेन्द्र बाबू की आत्मकथा उनके जीवन की कथामात्र न होकर समस्त समकालीन घटनाओं, व्यक्तियों और आन्दोलनों का भी इतिहास है।

११.४.३ नवजागरण काल (द्विवेदी युग):

द्विवेदी युग में विविध रचनाकरों ने अपनी आत्मकथा के द्वारा अपने जीवन के समस्त सामजिक, राजनैतिक, परिवारिक, सांस्कृतिक तथा देशकाल आदि के तत्काल वातावरण तथा घटनाओं को अपने आत्मचरित के माध्यम से उद्धृत किया है जिसमें महावीर प्रसाद द्विवेदी की आत्मकथा, गुलाबराय की 'मेरी असफलताएँ' या सियारामशरण गुप्त की 'झूठ - सच', 'बाल्यस्मृति' आदि रचनाओं में स्वाभाविकता, सहृदयता और निष्कपट आत्मप्रकाशन के गुण विद्यमान है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने जीवन काल में हिंदी के विकास में बहुमूल्य योगदान दिया है। लेखकों के अनुभव, उनका जीवन, संघर्ष यात्रा सभी का सूक्ष्म रूप से उन्होंने अपने आत्मकथा के माध्यम से उजागर किया है।

११.४.४ छायावाद युग:

छायावाद युग में रचनाकार रामविलास शर्मा, स्वामी दयानन्द, सत्यानन्द अग्निहोत्री आदि ने समाज की उन्नति के लिए समाज में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अपनी आत्कथा के माध्यम से उन्होंने इस विधा को भी पोषित किया है। जिसमें स्वामी दयानन्द लिखित जीवनचरित्र (संवत् १९१७ वि.), सत्यानन्द अग्निहोत्री लिखित 'मुझ में देव-जीवन का विकास' (१९१० ई.), भाई परमानन्द लिखित 'आप बीती' (१९२१ ई.), सुभाषचंद्र बोस द्वारा रचित 'तरुण के स्वप्न' (१९३३) शीर्षक कृतियाँ उल्लेखनीय है। श्री रामविलास शुक्ल लिखित में 'क्रान्तिकारी कैसे बना' (१९३३ ई.), भवानीदयाल संन्यासी कृत प्रवासी की कहानी (१९३९ ई.) इस काल में महात्मा गांधी की आत्मकथा का अनुवाद श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने आत्मकथा के नाम से किया तथा सुभाषचंद्र भोस की आत्मकथा का अनुवाद गिरीशचन्द्र जोशी ने किया। यह दोनों आत्मकथा प्रेरणात्मक है, जो पाठको को जीवन के अग्रसित करता रहेगा।

डॉ . रामविलास शर्मा की आत्मकथा 'अपनी धरती अपने लोग' तीन खण्डों में प्रकाशित है। तीनों खण्डों का परिचय डॉ. साहब के ही शब्दों में इस प्रकार दिया है -"पहला खण्ड मुँडेर पर सूरज बचपन से शुरू होकर अध्यापन कार्य से छुट्टी पाने तक, मेरे जीवन और परिवेश के संस्मरण प्रस्तुत करता है। दूसरे खण्ड देर सबेर में उन राजनीतिक कार्यकर्ताओं और लेखकों के संस्मरण हैं, जिनसे थोड़ी या ज्यादा देर के लिए मेरा सम्पर्क हुआ था। इसके सिवा मेरे लेखन कार्य की प्रेरणाएँ योजनाएँ उनके देर - सबेर पूरा होने की आशाएँ - आकांक्षाएँ भी यहाँ देखी जायँगी। तीसरा खण्ड आपस की बातें छात्रजीवन से लेकर बुढ़ापे तक भाइयों के नाम, मुख्यतः बड़े भाई के नाम, मेरे पत्रों का संकलन है। यहाँ संस्मरण नहीं व्यक्तियों, घटनाओं पर मेरी ताजी प्रतिक्रिया और टिप्पणियाँ हैं।" वस्तुत : डॉ. शर्मा के जीवन का स्वप्न था कि अपने लोग गरीबी की रेखा से ऊपर आएँ, अपनी धरती की उर्वरता बनी रहे तथा हिन्दी प्रदेश और सारे देश का सांस्कृतिक विकास हो। यह स्वप्न ही उनके लेखन का प्रेरणा स्रोत है।

११.४.५ छायावादोत्तर युग:

छायावादोत्तर युग में आत्मकथा विधा का विकास बेहद विस्तृत रूप में हुआ जिसमें अधिकतर रचनाकारों ने अपने जीवन से सम्बंधित घटनाओं को निष्पक्ष रूप से लिखा है।

एक प्रेरणाश्रोत के रूप में पाठकों के समक्ष उपलब्ध हुआ है। जिसमें प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ.श्यामसुन्दरदास रचित 'मेरी आत्मकहानी' १९४१ ई. में प्रकाशित हुई। हिन्ही साहित्य जगत के प्रमुख प्रसिद्ध रचनाकार महापंडित राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी जीवनयात्रा (१९४६ ई.) जो तीन खंडो में विभाजित है। उसका प्रकाशन हुआ जिसमें उन्होंने अपने घुमक्कड़ जीवन का सम्पूर्ण विवरण पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। तथा अन्य रचनाकरों में डॉ . राजेन्द्रप्रसाद रचित 'आत्मकथा (१९४७ ई.), वियोगी हरि कृत 'मेरा जीवन-प्रवाह (१९४८ ई.), देवेन्द्र सत्यार्थी की तीन खण्डों में प्रकाशित आत्मकथा 'चाँद सूरज के बीरन' (१९५४ ई.) 'नीलयाक्षिणी' (१९८५ ई.) तथा 'नाच मेरी बुलबुल' (१९९९ ई.), सेठ गोविन्ददास कृत आत्मनिरीक्षण (तीन भागों में १९५८ ई.), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' रचित 'अपनी खबर' (१९६० ई.) तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'मेरी आत्मकहानी' (१९६३ ई.) महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इसी क्रम में 'जीवन के चार अध्याय' (१९६६ई.) श्री भुवनेश्वर मिश्र माधव कृतियाँ भी स्मरणीय हैं। प्रेमचन्दजी ने 'हंस' के आत्मकथांक में कुछ साहित्यकारों की संक्षिप्त आत्मकथाएँ प्रकाशित की थीं।

अतः हिन्दी में आत्मचरित्र लिखने की कला विकसित हो गयी है। पिछले ३० वर्षों में कुछ महत्त्वपूर्ण आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनमें क्या भूलूँ क्या याद करूँ (१९६९ ई.), नीड़ का निर्माण फिर (१९७० ई.), बसेरे से दूर (१९७८ ई.) और दशहार से सोपान तक (१९८५ ई.), (चार खण्डों में) हरिवंश राय बच्चन आत्मकथा प्रकाशित है। चारखण्डों में प्रकाशित हरिवंश राय 'बच्चन' की आत्मकथा स्वयं उन्हीं के शब्दों में एक 'स्मृति यात्रा यज्ञ' है। इसमें उनका आरम्भिक जीवन, वंश, संघर्ष, विश्वविद्यालय के उनके अनुभव, इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिन्दी प्रोड्यूसर का उनका अनुभव, विदेश मंत्रालय में आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी (हिन्दी) के रूप में राजनीतिक कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिये किये गये उनके प्रयत्न, सचिवालय के सचिवों की मानसिकता तथा वहाँ से अवकाश लेने के बाद का उनका जीवन अनुभव एक बृहद् उपन्यास की रोचक शैली में जीवन्त और साकार हो उठा है यौवन के द्वार पर (१९७० ई.), डॉ. देवराज उपाध्याय; अपनी कहानी (१९७० ई.), वृन्दावन लाल वर्मा; मेरी फिल्मी आत्मकथा (१९४७ ई.), बलराज साहनी; घर की बात (१९८३ ई.), मेरे सात जनम (तीन खण्डों में), हंसराज रहबर; मेरी जीवन धारा (१९८७ ई.), यशपाल जैन; तपती पगडंडियों पर पद यात्रा (१९८९ ई.), कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'; आत्म परिचय (१९८८ ई.), 'रेणु'; टुकड़े टुकड़े दास्तान (१९८६ ई.), अमृतलाल नागर; अर्धकथा (१९८८ ई.), डॉ. नगेन्द्र तथा सहचर है समय (१९९१ ई.), रामदरश मिश्र की आत्मकथाएँ विशेष रूप से चर्चित हुई हैं। इस सन्दर्भ में कुछ नये प्रयोग भी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। डॉ. नगेन्द्र की अर्धकथा में स्वयं उन्हीं के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि इसमें जीवन का 'अर्धसत्य' व्यक्त हुआ है। वे कहते हैं- "यह मेरे जीवन का केवल अर्धसत्य है- अर्थात् उपर्युक्त तीन खण्डों में मैंने केवल अपने बहिरंग जीवन का ही विवरण उसका समभागी बनने की उदारता मुझमें नहीं है। जहाँ मैं खड़ा हूँ , 'रोशनी का दिया है। x x x जहाँ तक अंतरंग जीवन का प्रश्न है, वह नितान्त मेरा अपना है आपको उसका समभागी बनाने की उदारता मुझमें नहीं है गर्दिश के दिन (१९८० ई.) शीर्षक से कमलेश्वर के संपादकत्व में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के बारह रचनाकारों का 'आत्मकथ्य' एक साथ प्रकाशित हुआ है। हंसराज रहबर के जीवन में अनेक उतार - चढ़ाव आये हैं। उन्होंने सन् १९८५ से १९८९ तक के अपने जीवन - सन्दर्भों को तीन खण्डों में मेरे सात जनम

शीर्षक से लिपिबद्ध किया है। इसमें आधुनिक साहित्यिक गतिविधियों के सम्बन्ध में भी मूल्यवान सामग्री सुरक्षित है। इधर १९९८ ई. में इसका चौथा खण्ड प्रकाशित हुआ है।

रामदरश मिश्र की आत्मकथा 'सहचर है समय' (१९९१ ई.) के नाम खण्डों में लिखी गयी से प्रकाशित हुई है। इसमें मिश्र की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण परिवेश से निकलकर संघर्ष के रास्ते अपने जीवन का लक्ष्य तलाश करने वाले एक साहित्यकार का पूरा अनुभव - संसार, अपनी व्याप्ति में लगभग आधे भारत को समेटे हुए, साकार हो उठा है। इसी परम्परा में इधर इनकी एक आत्मीय क्षणों को व्यक्त करने वाली रचना फुरसत के दिन (२००० ई.) प्रकाशित हुई है। इसमें विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने से लेकर सन् १९९९ ई. तक के आपके निजी और पारिवारिक जीवन के दुःख - सुख का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। सुख इतना कि मन कविता की पंक्तियाँ गुन - गुनाने लगे और दुःख इतना की उसकी जमी हुई पर्तो को पिघलाने के लिए अंधेरे को सहायक और साथी बनाना पड़े। पिछले कुछ वर्षों में आत्म कथा - लेखन की परम्परा में एक उल्लेखनीय बात यह हुई है कि अब महिला लेखिकायें भी मुक्त मन से अपनी आत्मकथाएँ लिखने लगी हैं। काल - क्रम से देखा जाय तो दस्तक जिन्दगी की (१९९० ई.) और मोड़ जिन्दगी का (१९९६ ई.) इन दो खण्डों में प्रकाशित प्रतिभा अग्रवाल की आत्मकथा सबसे पहले आती है। इसी क्रम में क्रमशः जो कहा नहीं गया (१९९६ ई.) कुसुम अंसल, लगता नहीं है दिल मेरा (१९९७ ई.) कृष्णा अग्निहोत्री, बूँद बावड़ी (१९९९ ई.) इस प्रकार छायावादोत्तर काल में प्रगति- प्रयोग काल से लेकर नवलेखन काल तक के अधिकतर रचनाकरों ने आपने आत्मकथा को लिखकर इस विधा को विस्तृत किया है।

११.४.६ समकालीन युग (२००० से अब तक):

समकालीन युग में विमर्श की धारा का प्रवाह हुआ जिसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श तथा किन्नर विमर्श के माध्यम से साहित्य कार दलित व्यक्तियों के दुःख - दर्द तथा उनके जीवन को अभियक्त किया। हिंदी साहित्य में आत्मकथा विधा के माध्यम से दलित, किन्नर, आदिवासी, स्त्रियों के स्वयं की आपबीती लिख कर समाज के काले पक्ष को बाहर लाया जिसमें स्त्री विमर्श की लेखिकाओं ने समाज की रुढीवादी परम्पराओं का उल्लेख अपने आत्मकथा के माध्यम से किया है। दस्तक जिन्दगी की १९९० तथा मोड़ जिन्दगी की दो खण्डों में प्रतिभा अग्रवाल की आत्मकथा सबसे पहले आती है।प्रसिद्ध कथा लेखिका कृष्णाअग्निहोत्री को उनकी आत्मकथा 'लगता नहीं दिल मेरा' से विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। इसमें उन्होंने अपने जीवन के अच्छे - बुरे अनुभवों को दो - टूक शब्दों में साहस के साथ व्यक्त किया है। अपनी आत्मकथा के विषय में वे स्वयं कहती हैं- "मैंने अपनी आप बीती को बिल्कुल तटस्थ मुद्रा के साथ अभिव्यक्त किया है ..... मेरे मरघट, मधुवन नहीं बने परन्तु यहाँ जलती भावनाओं के शव जिन्दगी की ओर खींच ले जाते हैं और एक प्रश्न है - हम क्यों नहीं मानव बने रह सकते ? क्यों नहीं स्वयं मानव रहकर अन्य मानव अस्मिता स्वीकार कर लेते हैं ?" हमें लगता है, जबतक मनुष्य के भीतर का पशु जीवित है, यह प्रश्न इसी प्रकार पूछा जाता रहेगा। उसके बाद मैत्रेयी पुष्पा की दो खण्डों में कस्तूरी कुण्डल बसै (२००२ ई.), गुड़िया भीतर गुड़िया (२००८ ई.), मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा कस्तूरी कुण्डत बसै उतनी ही सर्जनात्मक है, जितना कोई उपन्यास होता है, या हो सकता है। मैत्रेयी की माता का नाम कस्तूरी था। वे अपने समय की एक ऐसी जीवंत महिला थीं,

जिन्होंने अपने बल बूते पर अपना रास्ता बनाया था। रमणिका गुप्त की दो खण्डों में हादसे (२००५ ई.) आप हुदरी (२०१५ ई.), मन्नू भण्डारी की 'एक कहानी यह भी (२००७ ई.), प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या' (२००७ ई), चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की पिजरे की मैना (२००८ ई.), कृष्णा अग्निहोत्री की और - और औरत (२०१० ई.), डॉ. सुषम बेदी की आरोह-अवरोह (२०१५ ई.), डॉ. निर्मला जैन की जमाने में हम (२०१५ ई.), आदि आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई हैं। 'जमाने में हम' इस आत्मकथा के बहाने निर्मला जैन ने अपने बचपन की स्मृतियों को एक बार पुनः जीवित किया है। साथ ही दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की उठा - पटक की अन्दरूनी कहानी को भी चित्रित किया है।

दलित विमर्श में दलित लेखकों ने भी आत्मकथा के माध्यम से समाज के सामाजिक व्यवस्था के काले स्वरूप को समक्ष लाया है। जिसमें प्रथम दलित आत्मकथा मोहन नैमिशायराण जी की जो दो भागों में 'अपने अपने पिंजरे भाग (१९९५ ई.) तथा दूसरा भाग २००० ई. प्रकाशित है। इसके उपरान्त अनेक दलित साहित्यकारों ने आत्मकथा लिखा है जो इस प्रकार है - ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन (१९९७ ई.) जूठन भाग दो (२०१५ ई.), डॉ. सूरजपाल चौहान की तिरस्कृत (२००२ ई.) तथा संतप्त (२००६ ई.), रूप नारायण सोनकर की नागफनी (२००७ ई)., श्यौराज सिंह बेचैन की मेरा बचपन मेरे कन्धों पर (२००९ ई.), डॉ. धर्मवीर की 'मेरी पत्नी और भेड़िया' (२०१० ई.), डॉ. तुलसीराम की 'मुर्दहिया', तथा 'मणिकर्णिका' (२०१४ ई.), डॉ. तुलसीराम की दो खण्डों में लिखी गयी आत्मकथा 'मुर्दहिया' (२०१० ई.) तथा मणिकर्णिका जिसमें केवल दलित ही नहीं अपितु गाँव का सम्पूर्ण लोकजीवन ही केन्द्र में है। १८४ पृष्ठों की इस आत्मकथा में आरम्भिक पढ़ाई से लेकर मैट्रिक तक की पढ़ाई का चित्रण है। परन्तु यहाँ लेखक केन्द्र में नहीं है। केन्द्र में है दलित जीवन, अंध श्रद्धाएँ, कर्मकाण्ड, भूतों के प्रति भय, सवर्णों का जीवन, दलितों का संघर्ष, दरिद्रता, रोजी - रोटी की तलाश, त्योहार, पूजा - पाठ, लोक - गीत, दलित बाह्य संघर्ष आदि का उल्लेख किया है। तथा सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा शिकंजे का दर्द (२०१२ ई .) की आत्मकथाओं ने हिन्दी - जगत् का ध्यान आकृष्ट किया है।

अन्य समका समय के प्रसिद्ध साहित्यकारों में रवीन्द्र कालिया की गालिब छूटी शराब' २०००, भगवतीचरण वर्मा की 'कहि न जायका कहिए' (२००१ ई.), राजेन्द्र यादव की 'मुड-मुड़ कर देखता हूँ (२००१ ई.) अखिलेश की वह जो यथार्थ (२००१ ई.), भीष्म साहनी की 'आज के अतीत' (२००३ ई.), अशोक वाजपेयी की पावभर जीरे में (२००३ ई.), स्वदेश दीपक की 'मैंने मांडू नहीं देखा' (२००३ ई.), रवीन्द्रनाथ त्यागी की 'वसन्त से पतझड़ तक' (२००५ ई.), राजेन्द्र यादव का आत्मकथ्य 'देहरि भई विदेस (२००५ ई.) [सं.], विष्णु प्रभाकर की पंखहीन खण्ड, मुक्त गगन में खण्ड और पंछी उड़ गया (२००४ ई.), एक अन्तहीन तलाश (२००७ ई.) रामकमल राय, भूली नहीं जो यादें (२००७ ई.) दीनानाथ मल्होत्रा, सागर के इस पार से उस पार तक (२००८ ई.) कृष्ण बिहारी, मेरी आत्मकथा कालजयी संघर्षगाथा (२००७ ई.) डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, गुजरा कहाँ कहाँ से (२००७ ई.), कहना जरूरी था (२००९ ई.), मैं था और मेरा आकाश (२०११ ई.) कन्हैयालाल नंदन, यों ही जिया (२००७ ई.) डॉ. देवेश ठाकुर, जोखिम (२००९ ई.) हृदयेश (१९३०-२०१६ ई.), मेरे दिन मेरे वर्ष (२००९ ई.) एकान्त श्रीवास्तव, पानी बिच मीन प्यासी (२०१० ई.), और कहाँ तक कहें युगों की बात (२०१२ ई.) मिथिलेश्वर, माटी पंख और आकाश (२०१२ ई.) ज्ञानेश्वर मूले, आलोचक का आकाश (२०१२ ई.) मधुरेश,

कमबख्त निन्दर (२०१३ ई.), डॉ. नरेन्द्र मोहन, कितनी धूप में कितनी बार (२०१३ ई.), डॉ. महीप सिंह मेरा मुझमें कुछ नहीं (२०१३ ई.), रमेश उपाध्याय, आत्म स्वीकृति (२०१४ ई.) नरेन्द्र कोहली, डगर डगर पर मगर (२०१४ ई.) हरदर्शन सहगल, अस्ति और भवति (२०१४ ई.) डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, जाग चेत कुछ करौ उपाई (२०१५ ई.) मिथिलेश्वर, जीवन प्रवाह में बहते हुए (२०१५ ई.) डॉ. लालबहादुर वर्मा, क्या हाल सुनावा (२०१५ ई.) डॉ. नरेन्द्र मोहन, मेरी साहित्यिक यात्रा (२०१६ ई.) भीष्म साहनी, जिन्दगी का क्या किया (२०१७ ई.) धीरेन्द्र अस्थाना की आत्मकथायें विशेष रूप से चर्चित हुई हैं।

११.५ सारांश

निष्कर्षतः कहा जा सकता है की साहित्य के माध्यम से व्यक्ति अपने काल तथा परिवेश में घटी घटनाओं को मानवीय धरातल पर अभिव्यक्त करता है जिसमें आत्मकथा विधा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है यह आदिकाल में विस्तृत रूप से भले ही विकसित नहीं हुई लेखिन आत्मचरित लिखने का चलन उसी काल में हो गया था और उसका विकार आधुनिक काल में हुआ जिसमें व्यक्ति अपने से जुडी तमाम घटनाओं को पाठकों के सामने अभिव्यक्त किया है। वर्तमान समय में आत्मकथा स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हो चुकी है। विमर्श के क्षेत्र में विविध साहित्य करों ने आत्मकथा के लिख कर समाज में परिवर्तन और समानता लाने की क्रांति के रूप में सामने आई। जिसमें सामाज के उन पक्षों को सामने रखा जो आज तक पर्दें में था। इस प्रकार आत्मकथा एक विकसित विधा के रूप में हमारे समक्ष है जिसमें साहित्यकारों, कृतिकारों, ऐतिहासिक पुरूषों की आत्मकथा के माध्यम से पाठकों के क्रमक्षेत्र प्रेरणा श्रोत बनकर उपस्थित हुई है।

११.६ दिर्घोत्तरी प्रश्न

१. आत्मकथा का परिभाषा एवं स्वरुप लिखिए

२. आत्मकथा का उद्दभव एवं विकास यात्रा लिखिए ।

११.७ वैकल्पिक प्रश्न

१) सर्वप्रथम आत्मकथा किसकी मानी जाती है ?

   १. अर्धकथा

   २. आपबीती

   ३. मेरी जीवन यात्रा

   ४. मेरी आत्मकथा

२) भारतेन्दु हरिश्चंद्र की आत्मकथा का नाम क्या है ?

१. आपबीती

२. मेरी जीवन यात्रा

३. मेरी आत्मकथा

४. 'कुछ आपबीती, कुछ जगबीती

३) जूठन आत्मकथा की रचनाकार की रचना है ?

१. मोहन दास नैमिशराय

२. ओम प्रकाश वाल्मीकि

३. तुलसीराम

४. सूरजपाल चौहान

४) आत्मकथा का विकास किस काल में होता है

१. आदिकाल

२. भक्तिकाल

३. रीतिकाल

४. आधुनिक काल

५) आपहुदारी किसकी आत्मकथा है ?

१. रमणिका गुप्ता

२. कृष्णा अग्निहोत्री

३. मन्नू भंडारी

४. इनमें से कोई नहीं

*****

१२

जीवनी

इकाई की रूपरेखा

१२.० उद्देश्य

१२.१ प्रस्तावना

१२.२ जीवनी की परिभाषा एवं स्वरुप

१२.३ जीवनी के भेद

१२.४ जीवनी का उद्भव एवं विकास

  १२.४.१ भारतेन्दु युग

  १२.४.२ द्विवेदी युग

  १२.४.३ छायावाद युग

  १२.४.४ छायावादोत्तर काल

  १२.४.५ समकालीन युग २००० से अब तक

१२.५ सारांश

१२.६ दिर्घोत्तरी प्रश्न

१२.७ वैकल्पिक प्रश्न

१२.० उद्देश्य

इस इकाई में हम जीवनी विधा का अध्ययन करेंगे। इसके अंतर्गत जीवनी की अर्थ, परिभाषा व समयकाल के अनुसार जीवनी के विकास क्रम को समझेंगे साथ ही प्रमुख जीवनी के विकास क्रम को भी अध्ययन करेंगे।

१२.१ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में जीवनी एक महत्वपूर्ण विधा है, जिसमें किसी महान् व्यक्ति के जीवन की घटनाओं, उसके कार्यकलापों तथा अन्य गुणों का आत्मीयता, औपचारिकता तथा गम्भीरता से व्यवस्थित रूप में वर्णन किया जाता है। इसमें व्यक्ति विशेष के जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं का वर्णन किया जाता है जीवनी द्वारा पाठक उसके अन्तरंग जीवन से हे अवगत नहीं होता, अपितु तादात्म्य स्थापित कर लेता है। जीवनीकार जीवनी में प्राय: उन स्थलों पर विशेष बल देता है, जिनके द्वारा पाठक प्रेरणा ग्रहण कर अपने जीवन को ज्यादा उन्नतिशील बनाने में समर्थ हो सके। जीवनी का प्रामाणिक होना आवश्यक है। हिन्दी के जीवनी साहित्य को समृद्ध बनाने में डॉ. गुलाबराय, रामनाथ सुमन, डॉ. रामविलास शर्मा, विष्णु प्रभाकर, अमृतराय, सुमंगल प्रकाश, राही मासूम रजा, ओंकार शरद, डॉ. शान्ति जोशी, भगवती प्रसाद सिंह आदि ने उल्लेखनीय कार्य किए हैं। हिंदी साहित्य में आधुनिक

काल में हिंदी की गद्य विधा के रूप में जीवनी का विकास विस्तृत रूप में हुआ है। जिसमें महान राजनेताओं, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, साहित्यकारों आदि की जीवनी द्वारा पाठकों का जीवन प्रेरित करता रहा है।

१२.२ जीवनी की परिभाषाएँ एवं स्वरुप

विविध साहित्यकारों के अनुसार जीवनी को परिभाषित निम्नलिखित रूप से किया है।

पं. श्रीराम शर्मा के अनुसार, "जीवनी किसी व्यक्ति के जीवन का शब्द - चित्र है और इसलिए जीवनी लेख की लेखनी तालिका से अंकित चित्र यथार्थ होने चाहिए। उसे निष्पक्ष रूप से न्यायाधीश की भाँति जीवन- नायक के जीवन पर सम्मति देनी चाहिए हाँ लेखन कला कौशल इसी में है जीवनी चित्र में रंग आवश्यकता से अधिक गहरा या फीका न हो और चरित्र विश्लेषण के आधे भाग में जीवनी नायक की घटनाओं अथवा दुर्घटनाओं सम्बन्धी सामग्री होनी चाहिए न कि अपनी मनोभावना मात्र।"

बाबू गुलाबराय के अनुसार, "जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं, वरन् चित्रण है। वह साहित्य की विधा है और उसमें साहित्य एवं काव्य के सभी गुण हैं। वह एक मनुष्य के अन्तर और बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण है। जिस प्रकार चित्रकार अपने विषय का एक ऐसा पक्ष पहचान लेता है, जो उसके विभिन्न पक्षों में ओत - प्रोत रहता है और जिसमें नायक की सभी कलायें और छटाएँ समन्वित हो जाती हैं। उसी प्रकार जीवनीकार अपने नायक के व्यक्तित्व की कुंजी समझकर उसके आलोक में सभी घटनाओं का चित्रण करता है।"

श्री रामनाथ 'सुमन' के अनुसार, "जीवन की घटनाओं के विवरण का नाम जीवनी नहीं है। लेखक जहाँ नायक के जीवन में छिपे उसके विकास के उसके व्यक्तित्व के रहस्य को, उसकी मुख्य जीवन - धारा को खोलकर पाठकों के सामने रख देता है। वहाँ जीवनी, लेखन, कला सार्थक होती है। ऊपर से दिखायी पड़ने वाले रूप को दिखाकर ही जीवनी लेखन कला सन्तुष्ट नहीं होती है वह उस आवरण को भेदकर अन्तःस्वरूप और आन्तरिक सत्य को प्रत्यक्ष करती है।"

१२.३ जीवनी के भेद

जीवनी के मुख्य रूप से दो प्रकार हो सकते हैं। एक तो ऐसी जीवनियाँ , जिनमें लेखक चरित्र नायक के गुण व दोषों का ज्यों का त्यों वर्णन कर दे तथा पाठक अपनी रुचि के अनुसार उसका निष्कर्ष निकाल ले। दूसरी वे जीवनियाँ , जिन्हें लेखक एक विशिष्ट दृष्टिकोण से लिखता है। ऐसी जीवनियाँ अधिक मात्रा में लिखी गयी हैं एवं अभी भी लिखी जा रही हैं। प्रथम प्रकार की जीवनियाँ बहुत ही कम दिखाई देती हैं। बौसवेल द्वारा लिखित डॉ . जॉन्सन की जीवनी प्रथम प्रकार की जीवनियों का एक अच्छा उदाहरण है।

विषय की दृष्टि से जीवनी के मुख्य रूप से पाँच भेद कर सकते हैं।

१. सन्त चरित्र:

इस कोटि में सन्त महात्माओं के जीवन की विशिष्ट घटनाओं को आधार मानकर लिखे गये ग्रन्थ आते हैं। इनमें गोपाल शर्मा शास्त्री द्वारा लिखित 'दयानंद- दिग्विजय', चिम्मन लाल वैश्य द्वारा लिखित स्वामी दयानन्द', मन्मथनाम गुप्त द्वारा लिखित 'गुरुनाथ', सुशीला नायर द्वारा लिखित 'बापू के कारावास की कहानी' एवं बलदेव उपाध्याय द्वारा लिखित 'श्री शंकराचार्य' इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ इत्यादि महात्माओं की जीवनियों को प्रतिपादित किया गया है।

२. ऐतिहासिक चरित्र:

ऐतिहासिक पुरुषों की जीवनियों को लिखने वाले साहित्यकारों में राधाकृष्ण दास, जगमोहन वर्मा, देवी प्रसाद मुंसिफ, कार्तिक प्रसाद खत्री एवं सम्पूर्णानन्द के नाम उल्लेखनीय हैं। देवी प्रसाद मुंसिफ ने 'मानसिंह', 'मंगलदेव', 'उदयसिंह महाराणा', 'जसवन्त सिंह' व 'प्रतापसिंह महाराणा' नामक ग्रन्थों के द्वारा कई इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनियाँ व्यक्त की हैं। राधाकृष्ण कार्तिक प्रसाद खत्री व जगमोहन वर्मा की कृतियों में क्रमश: बाप्पा महाराज विक्रमादित्य एवं बुद्धदेव महत्वपूर्ण हैं। सम्पूर्णानन्द ने हर्षवर्धन, अशोक व छत्रसाल जैसे इतिहास प्रसिद्ध सम्राटों की जीवनियाँ व्यक्त की हैं।

३. साहित्यिक चरित्र:

साहित्यकारों की जीवनियों में मदनगोपाल की कलम का मजदूर, डॉ. रामविलास शर्मा की - निराला की साहित्य साधना, अमृतराय की कलम का सिपाही, विष्णु प्रभाकर की - आवारा मसीहा तथा भगवती प्रसाद की - मनीषी की लोक यात्रा इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

४. राजनीतिक चरित्र:

भारतीय राजनीति को करने वाले महापुरुषों में लाला लाजपतराय, सुभाषचन्द्र बोस, पं. जवाहर लाल नेहरू, इन्दिरा गाँधी, जयप्रकाश नारायण, मदनमोहन मालवीय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, दादाभाई नौरोजी, चन्द्रशेखर आजाद तथा महात्मा गाँधी इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। आधुनिक काल में कई साहित्यकारों ने इन महापुरुषों की जीवनियाँ प्रतिपादित की हैं।

५. विदेशी चरित्र:

विदेशी महापुरुष सम्बन्धी जीवनियों में रमाशंकर व्यास्कृत- नेपोलियन बोनापार्ट, शिवनारायण वेदीकृत - कोलम्बस, देवीप्रसाद कृत- महात्मा सुकरात, सत्यव्रतकृत- अब्राहम लिंकन, सत्यभक्त कृत- कार्ल मार्क्स तथा राहुल सांकृत्यायन कृत - माओ त्से तुंग इत्यादि। जीवनी के लेखकों में राहुल सांकृत्यायन का विशेष स्थान है। उनकी जीवनियों में महात्मा बुद्ध, माओ त्से तुंग, लेनिन, सरदार पृथ्वी सिंह, वीरचन्द्र सिंह गढ़वाली, स्टालिन एक जीवनी कार्लमार्क्स, भारत के नए नेता इत्यादि प्रमुख हैं। इसी परम्परा में विश्वनाथ वैशम्पायन के माध्यम से रचित क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद की जीवनी व वीर सिन्धु कृत सरदार भगत सिंह पर शोधपूर्ण जीवनी विशेषतः वर्णनीय हैं।

१२.४ जीवनी का उद्भव एवं विकास

जीवनी साहित्य भारतवर्ष के चिन्तक, मनीषी कवि और कलाकार प्राकृतजन गुणगान से विरत रहना श्रेयस्कर मानते थे। जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण वे उन तत्त्वों की खोज को महत्त्व देते थे, जो शाश्वत और अमर हों। इसलिए इस देश में अवतारी पुरुषों और महामानवों की आदर्शीकृत गाथाएँ तो लिखी गयीं, किन्तु जनसाधारण का जीवन वृत्त उपेक्षित रहा मध्ययुग में भक्तों की परम्परा में 'भक्तमाल' लिखे गये, किन्तु इन्हें जीवनी साहित्य के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं कर सकते। संतों और भक्तों के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा होने के कारण उनके जीवन - वृत्त के इर्द - गिर्द अनेक अलौकिक घटनाएँ संघटित हो गयी हैं। आधुनिक युग वैज्ञानिक और बौद्धिक जीवन - दृष्टि के विकास के साथ ही जीवनी साहित्य लिखने की परम्परा पल्लवित हुई और अब तो जीवनी - साहित्य हिन्दी - गद्य की एक पृथक् विधा के रूप में मान्य है।

१२.४.१ भारतेन्दु युग:

जीवनी साहित्य आधुनिक युग की अन्य अनेक विधाओं के समान जीवनी- साहित्य का आरंभ भी भारतेंदू युग में ही हुआ। स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने विक्रम, कालिदास, रामानुज, जयदेव, सूरदास, शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, मुगल बादशाहों, मुसलमान महापुरुषों तथा लॉर्ड मेयो, रिपन प्रभृति अंग्रेज शासकों से संबद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण जीवनियाँ लिखों, जो 'चरितावली', 'बादशाहदर्पण', 'उदयपुरोदय' और 'बूंदी का राजवंश' नामक ग्रंथों में संकलित हैं। विषयानुकूल तथा भावानुकूल भाषा - शैली के प्रयोग द्वारा व्यक्ति विशेष के जीवनवृत्त का सशक्त अंकन उनके जीवनी साहित्य की प्रमुख विशेषता है। भारतेंदु - युग के जीवनी लेखकों में कार्तिकप्रसाद खत्री ने अहिल्याबाई का जीवनचरित्र' (१८८७), 'छत्रपति शिवाजी का जीवनचरित्र' (१८९०) और 'मीराबाई का जीवनचरित्र' (१८९३), नाम्नी जीवनियाँ लिखीं। काशीनाथ खत्री ने हिंदुस्तान की अनेक रानियों का जीवन चरित्र' (१८७९) और 'भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के जीवनचरित्र' (१८८३) की रचना कर जीवनी साहित्य की श्रीवृद्धि की रमाशंकर व्यास की उल्लेखनीय कृति 'नेपोलियन बोनापार्ट का जीवनचरित्र' (१८८३) है। इस युग के सर्वप्रसिद्ध जीवनी लेखक देवीप्रसाद मुंसिफ़ है। उन्होंने ' महाराज मानसिंह कच्छवाल वाले अमीर का जीवनचरित्र' (१८८९), 'राजा मालदेव का जीवनचरित्र' (१८८९), 'उदयसिंह महाराजा' (१८९३), 'अकबरनामा' (१८९३), 'राणा भीम' (१९९३), 'जसवंत सिंह (१८९६) आदि ऐतिहासिक जीवनियाँ लिख कर जीवनी साहित्य को समृद्ध किया राधाकृष्णदास ने 'आर्यचरितामृत बाप्पा रावल' (१८८४) के अतिरिक्त 'श्रीनागरीदास जी का जीवनचरित्र' (१८९४), 'कविवर विहारीलाल' (१८९५), 'सूरदास' (१९००) आदि साहित्यकारों की जीवनियाँ लिखीं। गोपाल शर्मा शास्त्री, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, गोकुलनाथ शर्मा, बलभद्र मिश्र तथा अंबिकादत व्यास ने क्रमशः 'दयानंद- दिग्विजय' (१८८१).. 'आर्यचरितामृत' (१८८४), 'हरिदास गुरमानी' (१८९६), 'श्री देवीसहायचरित्र' (१८९७), 'स्वामी दयानंद महाराज का जीवनचरित्र' (१८९७) और स्वामी भास्करानंद से संबद्ध 'स्वामी चरितामृत' (१८९९) नामक जीवनीग्रंथ लिखे। इनमें से 'आर्यचरितामृत' बंगला से अनूदित है। हिंदी - जीवनी साहित्य के विकास में विदेशी मिशनरियों ने भी पर्याप्त योग दिया 'विक्टोरिया महारानी का वृत्तांत' (१८९६), 'सिकंदर महान का वृत्तांत' (१८९९) आदि पुस्तकें ईसाई मिशनरियों के प्रयत्नस्वरूप ही प्रकाशित हुई। विदेशी महापुरुषों की

जीवनियों में रमाशंकर व्यास कृत 'नेपोलियन बोनापार्ट' (१८८३) भी महत्त्वपूर्ण है। किंतु भारतेंदुयुगीन जीवनी साहित्य का समग्र रूपेण मूल्यांकन करने पर यह कहा जा सकता है कि परिमाण की दृष्टि से अत्यल्प न होने पर भी इस युग के जीवनी - साहित्य में प्रायः न तो परिमार्जित एवं प्रतिनिष्ठित भाषा प्रयोग परिलक्षित होता है और न चित्ताकर्षक शैली ही मिलती है। वस्तुतः इस युग को जीवनी साहित्य का बीजवपनकाल कहना ही उचित होगा

१२.४.२ द्विवेदी युग:

जीवनी साहित्य की दृष्टि से भारतेन्दु काल समृद्ध काल माना जाता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने स्वयं जीवनी लेखन के क्षेत्र में रचनाकारों को जीवनी लेखन में प्रेरित किया। उसी प्रकार महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी अपने काल में अनेक रचनाकारों को प्रेरित किया इस गद्य विधा लेखन में रूचि ली द्विवेदी द्वारा रचित जीवनियाँ 'प्राचीन पंडित और कवि' १९१८, 'सुकवि-संकीर्तन १९२४, चरित चर्चा १९२९ आदि ग्रंथो में संकलित है। उनके अतिरिक्त जिन अनेक लेखकों ने जीवनी साहित्य को समृद्ध किया, उन सबकी रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में मुख्यत: पांच प्रकार का जीवनी साहित्य लिखा गया- (क) आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानंद तथा अन्य महापुरुषों से संबंधित जीवनियाँ (ख) राष्ट्रीय महापुरुषों से संबंधित जीवनियाँ, (ग) ऐतिहासिक महापुरुषों से संबंधित जीवनियाँ, (घ) विदेश के महापुरुषों से संबंधित जीवनियाँ, (ङ) महिलाओं जीवनियाँ। इनमें से महर्षि दयानंद का जीवनचरित्र अधिक परिमाण में लिखा गया, कारण यह था कि इस युग में आर्यसमाज द्वारा किये गये कार्य अपनी पराकाष्ठा पर थे। सर्वश्री रामविलास सारदा, दयाराम, चिम्मनलाल वैश्य और अखिलानंद शर्मा ने विभिन्न दृष्टिकोणों से स्वामी दयानंद के जीवन के विविध पक्षों को उभारते हुए क्रमश: 'आर्य धर्मेंदु जीवन महर्षि' (१९०४), 'स्वामी दयानंद' (१९०७) और 'दयानंद दिग्विजय'। इन जीवनियों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि कर लिखे जाने के फलस्वरूप ये प्रचारात्मक (१९०१), 'दयानंद (१९१०) शीर्षक के प्रचार - प्रसार चरितामृत' कृतियों की रचना को दृष्टिपथ में रख अधिक आर्यधर्म हो गयी हैं। इस वर्ग की एक अन्य उल्लेखनीय कृति माधवप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित 'विशुद्धानंद चरितावली' है, जिसमें महात्मा विशुद्धानंद का जीवनचरित्र दिया गया है। आलोच्य युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। इस काल में अंग्रेज़ी शासन को नष्ट करने के लिए जनता में अपूर्व संगठन - शक्ति पैदा हो गयी थी। फलस्वरूप कुछ लेखकों ने उन, महापुरुषों की जीवनियाँ भी लिखीं, जो युग की विचारधारा का नेतृत्व कर रहे थे। महादेव भट्ट, पारसनाथ त्रिपाठी मुकुंदीलाल वर्मा, संपूर्णानंद, नंदकुमार देव शर्मा, बद्रीप्रसाद गुप्त, बृजबिहारी शुक्ल, शीतलाचरण वाजपेयी मातासेवक आदि साहित्यकारों ने क्रमशः 'लाजपत महिमा' (१९०७), तपोनिष्ठ महात्मा अरविंद घोष' (१९०९), 'कर्मवीर गांधी' (१९१३), 'धर्मवीर गांधी' (१९१४), 'महात्मा गोखले' (१९१४), 'दादाभाई नौरोजी' (१९१४), 'मदनमोहन मालवीय (१९१६), 'रमेशचंद्र दत्त' (१९१७), 'लोकमान्य तिलक का चरित्र (१९१८) आदि रचनाएं लिखीं। अपने युग के कर्मवीर महापुरुषों के प्रेरणाप्रद कार्यों का निरूपण करने वाली इन जीवनियों का मूल उद्देश्य तयुगीन जनता के मन में देशप्रेम की भावना जाग्रत करना था। राष्ट्रीय चेतना को बल प्रदान करने में पूर्ववर्ती प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवन - गाथाएं भी सहायक सिद्ध होती हैं। यही कारण है कि इस युग के लेखकों ने ऐतिहासिक जीवनियाँ पर्याप्त मात्रा में लिखी हैं। इस दृष्टि से कार्तिकप्रसाद, बलदेवप्रसाद मिश्र, देवीप्रसाद, ज्वालादत्त शर्मा, आनंदकिशोर मेहता रघुनंदनप्रसाद मिश्र,

संपूर्णानंद और लक्ष्मीधर वाजपेयी द्वारा क्रमशः लिखित 'छत्रपति शिवाजी का जीवनचरित्र' (१९०१), 'पृथ्वीराज चौहान' (१९०२), 'महाराणा प्रतापसिंह' (१९०३), 'सिक्खों के दस गुरु' (१९०९), 'गुरु गोविंदसिंह जी' (१९१४), 'शिवाजी और मराठा जाति' (१९१४), 'महाराज छत्रसाल (१९१६) तथा 'छत्रपति शिवाजी' (१९१७) शीर्षक कृतियाँ विशेषतः पठनीय हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अपने देश की महान विभूतियों के जीवनवृत्त ही नहीं, विदेशी महापुरुषों के जीवनचरित्र भी पर्याप्त प्रेरणाप्रद होते हैं। द्विवेदी - युग के लेखक इस तथ्य से अपरिचित न थे। उन्होंने विदेश के अनेक महामानवों के जीवनवृत्त लिखे हैं, जिन्होंने त्याग, बलिदान तथा कर्तव्य - भावना से प्रेरित हो कर अपने - अपने राष्ट्रों के उत्थान के लिए अनथक प्रयत्न किये। उदाहरणार्थ, सिद्धेश्वर वर्मा, उमापति दत्त शर्मा, नाथूराम प्रेमी, ब्रह्मानंद, लक्ष्मीधर वाजपेयी, कृष्णप्रसाद सिंह अखौरी, इंद्र वेदालंकार, द्वारकाप्रसाद शर्मा और चंद्रशेखर पाठक द्वारा क्रमश: रचित 'गैरीबाल्डी' (१९०१), 'नेपोलियन बोनापार्ट की' (१९०५), 'जान स्टुअर्ट मिल' (१९१२), 'जर्मनी के विधाता' (१९१४), 'गेरिफ मैजिनी' (१९१४), 'नेलसन' (१९१४), 'प्रिंस बिस्मार्क' (१९१५), 'महात्मा साकूटीज़' (१९१५) एवं 'नेपोलियन बोनापार्ट' (१९१६), शीर्षक कृतियाँ अवलोकनीय हैं। विदेशी महापुरुषों से संबद्ध रचनाओं में नेपोलियन बोनापार्ट संबंधी जीवनियाँ ही सर्वाधिक मात्रा में लिखी गयी हैं। इनके अतिरिक्त राजस्थान के इतिहास लेखन में महत्त्वपूर्ण योग देने वाले कर्नल जेम्स टॉड के संबंध में एक अन्य महत्त्वपूर्ण जीवनी गौरीशंकर ओझा ने 'कर्नल टॉड' (१९०२) शीर्षक से लिखी आलोच्य युग में देश - विदेश की महान महिलाओं से संबंधित जीवनियाँ भी पर्याप्त मात्रा में लिखी गयीं। गंगाप्रसाद गुप्त, परमानंद, हनुमंत सिंह, पन्नालाल, यशोदादेवी, द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी देवेंद्रप्रसाद जॅन, ललिताप्रसाद शर्मा, रामजीलाल वर्मा, लालताप्रसाद वर्मा, सूर्यनारायण त्रिपाठी, रामानंद द्विवेदी तथा दत्तात्रेय बलवंत पारस ने क्रमशः 'रानी भवानी' (१९०४), 'पतिव्रता स्त्रियों के जीवनचरित्र' (१९०४), 'रमणीय रत्नमाला' (१९०७); 'वीर पत्नी संयोगिता' (१९१२), 'आदर्श महिलाएँ' (१९१७), 'ऐतिहासिक स्त्रियां' (१९१२), 'विदुषी स्त्रियां' - भाग १, २ (१९१२), 'भारतीय विदुषी' (१९१२), 'भारतवर्ष की वीर माताएं' (१९१३), 'रानी दुर्गावती' (१९१४). "नूरजहां (१९१२), 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई (१९१८) शीर्षक जीवनियों की रचना कर इस दिशा में प्रशंसनीय योग दिया। जैसा कि इस विवरण से स्पष्ट है, इस युग में लेखकों का झुकाव भारतीय महिलाओं के गुण - स्तवन की ओर ही अधिक रहा। समग्रतः यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन जीवनी साहित्य पर्याप्त समृद्ध एवं वैविध्यपूर्ण है।

१२.४.३ छायावाद युग:

जीवनी साहित्य छायावाद युग में जीवनी-लेखन की दिशा में पर्याप्त कार्य हुआ। तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन के प्रभावस्वरूप स्वभावतः लेखकों की सर्वाधिक अभिरुचि राष्ट्रीय नेताओं से संबंधित जीवनी लिखने की ओर रही। इसके साथ ही इतिहासप्रसिद्ध महापुरुषों और महान महिलाओं के जीवन वृत्त प्रस्तुत करने को ओर भी ध्यान दिया गया। राष्ट्रीय नेताओं के संदर्भ में नवजादिकलाल श्रीवास्तव, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, रामदयाल तिवारी, रामनरेश त्रिपाठी, नरोत्तमदास व्यास, डॉ. राजेंद्रप्रसाद, नंदकुमारदेव शर्मा, व्यथितहृदय, गणेशशंकर विद्यार्थी, इंद्र वाचस्पति, जगपति चतुर्वेदी तथा मन्मथनाथ गुप्त ने क्रमशः 'देशभक्त लाला लाजपतराय' (१९२०), 'बाल गंगाधर तिलक' (१९२०), 'गांधी - मीमांसा' (१९२१), 'गांधी जी कौन हैं' (१९२१), 'गांधी - गौरव' (१९२१), 'चंपारन में महात्मा गांधी'

(१९२२), 'लाजपत - महिमा' (१९२२), 'पं. जवाहरलाल नेहरू' (१९२६) श्री गांधी' (१९३१), 'जवाहरलाल नेहरू' (१९३३), 'लाला लाजपतराय' (१९३८), 'चंद्रशेखर आजाद' (१९३८) आदि रचनाओं के माध्यम से जीवनी साहित्य को समृद्ध किया। गांधी जी इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे। समसामयिक राष्ट्रीय विभूतियों के अतिरिक्त इस काल में भारतीय इतिहास के महापुरुषों से संबंधित जीवनियाँ भी पर्याप्त संख्या में लिखी गयीं। रामनरेश त्रिपाठी, संपूर्णानंद, चंद्रशेखर पाठक, सुखसंपतिराय भंडारी, रामवृक्ष शर्मा, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, गंगाप्रसाद मेहता, प्रेमचंद आदि ने क्रमशः पृथ्वीराज चौहान' (१९१९), 'सम्राट् हर्षवर्द्धन' (१९२०), 'राणा प्रतापसिंह' (१९२०), 'शिवाजी' (१९२५), 'महाराणा प्रतापसिंह' (१९२७), 'चंद्रगुप्त विक्रमादित्य' (१९३२), दुर्गादास (१९३८) आदि कृतियों की रचना कर इस साहित्यविधा के विकास देश और समाज के विभिन्न कार्यक्षेत्रों में निष्ठावती महिलाओं के इतिहास प्रसिद्ध जीवनचरित्र लिखने की ओर भी कुछ लेखकों का ध्यान गया। शिवव्रतलाल वर्मन, मनोरमाबाई, जहूरबख्श, जटाधरप्रसाद शर्मा विमल, जगन्नाथ शर्मा, भगवददत आदि ने क्रमशः 'सच्ची देवियां' (१९२१), 'विद्योत्तमा' (१९२४), 'आर्य महिलारत्न' (१९२४), 'अहिल्याबाई' (१९२६), 'रमणी नवरत्न' (१९२७) तथा भारतीय महिला' (१९३५) नाम्नी रचनाओं का प्रणयन कर एतद्विषयक साहित्य की अभिवृद्धि की। इस प्रकार इस युग के जीवनी लेखकों की दृष्टि पाठकों को राष्ट्रप्रेम और जनसेवा की प्रेरणा देने की ओर रही है। फलस्वरूप उद्बोधनात्मकता, आदर्शवाद, ओजस्विता सहज, स्पष्ट भाषा - शैली आदि का संयोजन सभी लेखकों के लिए अभीष्ट रहा है। जीवनियाँ दुर्लभ नहीं हैं, जिनमें इतिवृत्तात्मकता मात्र न हो कर विषय का आत्मीयतापूर्ण प्रतिपादन है।

१२.४.४ छायावादोत्तर काल:

छायावादोत्तर युग में जीवनी साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ। लोकप्रिय नेताओं, संत - महात्माओं, साहित्यकारों, विदेशी महापुरुषों, वैज्ञानिकों, खिलाड़ियों, उद्योगपतियों आदि से संबंधित जीवनियाँ प्रचुर परिमाण में लिखी गयी। महात्मा गांधी इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे, फलतः उनसे संबंधित जीवनियाँ सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध होती हैं। घनश्यामदास बिड़ला, काका कालेलकर, सुमंगल प्रकाश सुशीला नायर, डॉ. राजेंद्रप्रसाद तथा जैनेंद्र कुमार द्वारा क्रमशः लिखित 'बापू' (१९४०), 'बापू की झांकियां' (१९४८), 'बापू के क़दमों में' (१९५०) और 'अकाल पुरुष गांधी' (१९६८) इस दिशा में उल्लेखनीय कृतियां हैं। महात्मा गांधी विषयक जीवनियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति रोमां रोलां की है। हिंदी में उसका अनुवाद तीन भागों में महात्मा गांधी : विश्व के अद्वितीय पुरुष' (१९४७) शीर्षक से हुआ। महात्मा गांधी के अतिरिक्त भगतसिंह, सुभाषचंद्र बोस तथा जवाहरलाल नेहरू से संबंधित जीवनियां लिखने की ओर भी लेखकों की पर्याप्त अभिरुचि रही। भगतसिंह पर लिखी गयी जीवनियों में पहली महत्त्वपूर्ण कृति रतनलाल बंसल - विरचित' सरदार भगतसिंह' (१९४९) है। इस कृति में भगतसिंह के बलिदान का मूल्यांकन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया गया है। भगतसिंह पर लिखे गये अन्य जीवनी - ग्रंथों में वीरेंद्र सिंधु की शोधपूर्ण कृति 'युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' (१९६८) तथा मन्मथनाथ गुप्त - विरचित 'क्रांतिदूत भगतसिंह और उनका युग' (१९७२) अलग - अलग दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। वीरेंद्र सिंधु भगतसिंह के बहुआयामी व्यक्तित्व का आंकलन ऐतिहासिक तथ्यों के आलोक में किया है।

भारतीय जनजीवन में संत - महात्मा सदा से पूण्य रहे हैं। उनका उज्ज्वल चरित्र तथा अमूल्य उपदेश इस देश के लोगों में नये जीवन का संचार करता रहा है। अतएव , यह स्वाभाविक ही है। कि विभिन्न लेखकों ने महात्मा बुद्ध, हजरत मुहम्मद, शंकराचार्य आदि के जीवन को आधार बना कर अपनी कृतियों की रचना की। इस दृष्टि से भदंत आनंद कौशल्यायन, सुंदरलाल, भवानीदयाल संन्यासी, दीनदयाल उपाध्याय, बलदेव उपाध्याय, पंडित ललिताप्रसाद, ब्रह्मचारी शिवानंद आंजनेय तथा अमृतलाल नागर का नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने क्रमश: 'भगवान बुद्ध' (१९४०), 'हजरत मुहम्मद' (१९४०), 'स्वामी शंकरानंद' (१९४२), 'जगद्गुरु शंकराचार्य' (१९४७), 'श्री शंकराचार्य' (१९५०), 'श्री हरिवाया' (१९५७), 'हमारे श्री महाराज जी' (१९७०) तथा 'चैतन्य महाप्रभु' नाम्नी कृतियों की रचना की। इनमें बलदेव उपाध्याय विरचित जीवनी में जहां शंकराचार्य के जीवनचरित विचारधारा तथा व्यक्तित्व का प्रामाणिक एवं प्रभावी निरूपण है, वहीं दीनदयाल उपाध्याय ने शंकराचार्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के लिए उपयुक्त प्रेरक व्यक्तित्व के दर्शन किये हैं। 'श्री हरिबाबा' को आधुनिक युग का चैतन्यदेव माना जाता है। पंडित ललिताप्रसाद कई दशाब्दियों तक उनके साथ रहे थे। अतएव, लेखक को चरितनायक के आंतरिक व्यक्तित्व की प्रामाणिक झांकी प्रस्तुत करने में अनायास सफलता मिल गयी है। वह उनके रूप, शील, विद्या, तप तथा भगवत् प्रेम का प्रभावी प्रत्यंकन करने में समर्थ हो सका है।

इस युग में भारतीय इतिहास के महापुरषों की जीवनियाँ लिखने में भी प्रवृत्त होती है। जहाँ छत्रपति शिवाजी को आधार बनाकर जीवनियाँ लिखी गई। इसमें लाजपतराय द्वारा रचित जीवनी ‘छत्रपति शिवाजी १९३९ प्रमुख है तथा भीमसेन विद्यालंकार द्वारा रचित शिवाजी १९५१ उल्लेखनीय है। सीताराम कोहल द्वारा रचित, 'रंजीत सिंह' (१९३१), द्वारकाप्रसाद शर्मा कृत 'भीष्म पितामह' (१९४०), जीवनलाल प्रेम - प्रणीत 'गुरु गोविंद सिंह' (१९४५), चंद्रबली त्रिपाठी कृत 'धर्मराज युधिष्ठिर' (१९५१) इस वर्ग की अन्य उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

इस कालखंड में विदेशी महापुरुषों को जीवनगाथा को आधार बना कर भी अनेक कृतियां लिखी गयीं। इस दृष्टि से राहुल सांकृत्यायन तथा रामवृक्ष बेनीपुरी के नाम उल्लेखनीय हैं। राहुल सांकृत्यायन ने 'स्तालिन' (१९५३), 'कार्ल मार्क्स' (१९५४),' लेनिन' (१९५४) तथा 'माओ चे तुंग' (१९५६) नामक ग्रंथों की रचना की इतिहासकार की तटस्थ शैली में लिखी है। बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा विरचित' ‘अराजकतावादी लुई’ (१९३९), रामइकबाल सिंह कृत 'स्टालिन' (१९३९), लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज - विरचित ‘इटली का तानाशाह मुसोलिनी’ (१९४०), अनंतप्रसाद विद्यार्थी द्वारा लिखित 'मि.चर्चिल' (१९४२) तथा रामनारायण यादवेंद्र कृत 'हिटलर' (१९५०) इस कालखंड की अन्य उल्लेखनीय कृतियां हैं।

जीवनी - लेखन के क्षेत्र में इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण देन साहित्यकारों के जीवनचरित्र हैं। कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद के जीवन को आधार बना कर सबसे अधिक जीवनियाँ लिखी गयीं। प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी प्रेमचंद ने 'प्रेमचंद घर में' (१९५६) में अट्ठासी उपशीर्षकों के अंतर्गत प्रेमचंद के बचपन से लेकर अंतिम दिन तक के संघर्षमय जीवन को पूरी ईमानदारी एवं सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय (१९२१-१९९६) द्वारा लिखी गयी प्रेमचंद की जीवनी 'क़लम का सिपाही' (१९६८) प्रसिद्ध रचना है। प्रेमचंद के जीवन पर एक अन्य महत्त्वपूर्ण कृति मदनगोपाल कृत 'कलम का मज़दूर (१९६५) है,

जिसमें लेखक ने चरितनायक के संघर्षमय जीवन की तेजोदृप्त छवि अंकित की है। जीवनी - लेखन के कार्य का श्रेय कमलकिशोर गोयनका को हैं, जिन्होंने 'प्रेमचंद विश्वकोश, भाग १' (१९८१) शीर्षक से कालक्रमानुसार प्रेमचंद का प्रामाणिक जीवनवृत्त प्रस्तुत किया है। गंगाप्रसाद पांडेय द्वारा लिखित 'महाप्राण निराला' तथा रामविलास शर्मा (१९१२-२०००) विरचित 'निराला की साहित्य साधना' (प्रथम भाग, १९६९) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कहा जा सकता है कि इस युग में जीवनी साहित्य का विकास विस्तृत रूप से हुआ है।

१२.४.५ समकालीन युग २००० से अब तक:

समकालीन युग में भी जीवनी साहित्य का विकास समृद्ध है, जिसमें अनेक लेखकों ने महापुरुष, साहित्यकार, संत-महात्माओं के जीवन पर लेखन किया है। जिसमें से 'उत्सव पुरुष'- नरेश मेहता (२००३ ई.), वट वृक्ष की छाया में (२००६ ई.), कुमुद नागर; भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक व्यक्तित्व चित्र' (२००४ ई.) ज्ञानचन्द जैन, 'मेरे हमसफर' (२००५ ई.) गायत्री कमलेश्वर; 'कल्पतरु की उत्सव लीला' (२००५ ई.) डॉ . कृष्णबिहारी मिश्र; आलोचक का स्वदेश (२००८ ई.) डॉ. विजय बहादुर सिंह; व्योमकेश दरवेश (२०११ ई.) डॉ . विश्वनाथ त्रिपाठी; मन्टो जिन्दा है (२०१२ ई.) नरेन्द्र मोहन; 'दर्पण देखे साँप के' (परसाई जीवन और चिन्तन) डॉ. रामशंकर मिश्र; 'बगावां में बहार' (२०१४ ई.) उर्मिला शिरीष; 'गोविन्द मित्र की जीवनी', 'गोविन्द के गीत गोविन्द' (२०१७ ई.) सुधीर सक्सेना की सेठ गोविन्द दास की जीवनी आदि उल्लेखनीय हैं।

रामकृष्ण परमहंस कल्पतरु की उत्सव लीला (२००४) की रचना प्रसिद्ध आत्मव्यंजक निबन्ध लेखक और गद्य शिल्पी श्रीकृष्णबिहारी मिश्र ने की है। श्री रामकृष्ण परमहंस उन्नीसवीं शती की दिव्य विभूति थे। बड़ा से बड़ा विद्वान् अलौकिक व्यक्तित्व का अंकन पूरी तन्मयता से करता है। इस कृति में उनकी शोध - वृत्ति और लालित्यपूर्ण लेखन का साहित्य में अद्भुत समन्वय लक्षित होता है। हिन्दी जीवनी लेखन की परम्परा में यह कृति अन्यतम है। कमलेश्वर 'मेरे हमसफर' (२००५ ई.) की रचना प्रख्यात साहित्यकार श्री कमलेश्वर की पत्नी गायत्री कमलेश्वर ने की है। श्री कमलेश्वर का जीवन बहुआयामी और घटना बहुल रहा है। सफल कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार और पत्रकार होने के अलावा टेलीविजन और फिल्मों से भी जुड़े रहे हैं। गायत्री कमलेश्वर द्वारा रचित इस कृति को हम उनके जीवन का दर्पण कह सकते हैं।

१२.५ सारांश

जीवनी साहित्य हिंदी साहित्य में प्राचीनतम विधा है इसका विकास मध्यकाल से ही माना जाता है। इसमें संतों, महात्माओं, ऐतिहासिक युगपुरुषों की जीवनियों के माध्यम से इनके कार्यक्षेत्र तथा इनका गुणगान हुआ है। जिसके कारण पाठको को प्रतिभाशाली जीवन जीने के लिए प्रेरणा मिली है। हिंदी साहित्य में जीवनी बहुत महत्वपूर्ण विधा मानी गई है। जीवनी के माध्यम से कई ऐतिहासिक पुरूषों के जीवन की शौर्यगाथा से लोग प्रभावित होते है तथा जीवन के सफलताओं की तरफ बढ़ने का मार्गदर्शन मिलता है।

१२.६ दिर्घोत्तरी प्रश्न

१. जीवनी की परिभाषा एवं स्वरुप स्पष्ट करे।

२. जीवनी की विशेषताएँ एवं भेद लिखिए।

३. जीवनी का उद्भव एवं विकास यात्रा लिखिए।

१२.७ वैकल्पिक प्रश्न

१) वट वृक्ष की छाया में यह जीवनी किसके जीवन पर आधारित है।

१. भारतेन्दु

२. महावीर प्रसाद द्विवेदी

३. जयशंकर प्रसाद

४. अमृतलाल नागर

२) आवारा मसीहा किसके द्वारा रचित जीवनी है

१. जयशंकर प्रसाद

२. अमृतलाल नागर

३. विष्णु प्रभाकर

४. महादेवी वर्मा

३) 'महात्मा गांधी : विश्व के अद्वितीय पुरुष' किसके द्वारा रचित जीवनी है।

१. रामधारी सिंह दिनकर

२. मैथलीशरण गुप्त

३. रोमा रोला

४. जयशंकर प्रसाद

४) महवीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित जीवनी नहीं है।

१. 'प्राचीन पंडित और कवि

२. सुकवि-संकीर्तन

३. चरित चर्चा

४. वट वृक्ष की छाया में में

५) 'मेरे हमसफर' जीवनी किस पर लिखी गई है।

१. कमलेश्वर

२. प्रेमचंद

३. अमृतलाल नागर

४. इनमें से कोई नहीं

*****

१३

संस्मरण

इकाई की रूपरेखा

१३.० उद्देश्य
१३.१ प्रस्तावना
१३.२ संस्मरण की परिभाषा
१३.३ संस्मरण का विशेषता एवं तत्व
    १३.३.१ संस्मरण के तत्व
१३.४ संस्मरण का उद्भव एवं विकास यात्रा
१३.५ सारांश
१३.६ दिर्घोत्तरी प्रश्न
१३.७ वैकल्पिक प्रश्न
१३.८ संदर्भ ग्रंथ

१३.० उद्देश्य

विद्यार्थी इस इकाई के माध्यम से संस्मरण विधा का अर्थ, परिभाषा और विकास क्रम का प्रदीर्घ अध्ययन कर सकेंगे। साथ ही संस्मरण विधा लिखने वाले प्रमुख लेखक व प्रमुख संस्मरण की भी जानकारी हासिल कर सकेंगे।

१३.१ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में हिंदी की अन्य गया विधाओं में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा - वृत्तांत, रिपोर्ताज आदि माना जाता है। प्राचीन काल के साहित्य में अन्य विधाओं का विकास समृद्ध रूप में नहीं हुआ, जिसके कारण हिंदी साहित्य में अन्य गद्य विधा का विकास नहीं हुआ। भारतेन्दु काल के बाद ही इस विधा के संदर्भ में लेखकों की रूचि दिखाई गई और इसमें ही विस्तृत रूप से इसका विकास हमारे समक्ष दिखाई देता है।

बीसवीं सदी की शुरुआत में हिंदी साहित्य में प्रकट होनेवाली यह आधुनिक विधा पश्चिम की देन है। वर्तमान में समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, साहित्य- हर क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन और अभिनव प्रयोग दिखाई देते हैं। हिंदी साहित्य में संस्मरण और रेखाचित्र एक दूसरे से मिलती-जुलती गद्य-विधाएँ हैं। इनका विकास आधुनिक हिन्दी गद्य की विशेषता है। संस्मरण किसी 'स्मर्यमाण' की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहल वे सन्दर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है, जो महत, विशिष्ट, अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता और दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता मृत रह जाते विचित्र और प्रिय हो। स्वयंमाण को है। संस्मरण में विषय पूर्णतः तटस्थ नहीं रह पाता। वह अपने 'स्व' का पुनः

सर्जन करता है। इस प्रकार संस्मरण में अपने जीवन में सम्बंधित व्यक्तियों के जीवन का वर्णन किया जाता है।

१३.२ संस्मरण की परिभाषा

संस्मरण का तात्पर्य है 'सम्यक् स्मरण' यानि संस्मरण में लेखक स्वतः अपनी अनुभव की हुई किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना का आत्मीयता तथा कलात्मकता के साथ विवरण पेश करता है। अन्य शब्दों में, जब किसी महान् व्यक्ति से सम्बन्धित कुछ घटनाओं अथवा कथनों को स्मृति के आधार पर जब कोई दूसरा व्यक्ति रोचक व कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है तो उस रचना को संस्मरण कहा जाता है। इसमें लेखक अपनी अपेक्षा उस व्यक्ति को अधिक महत्व देता है, जिसका वह संस्मरण लिखता है। इसमें किसी विशेष व्यक्ति का स्वरूप, आकार-प्रकार, आदत, भाव - भंगिमा, आचरण, जीवन के प्रति दृष्टिकोण, दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध, वार्तालाप इत्यादि समस्त बातों का विश्वसनीय रूप में आत्मीयता के साथ उल्लेख होता है। हिन्दी के मुख्य संस्मरण लेखकों में श्रीनारायण चतुर्वेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, पद्मसिंह शर्मा इत्यादि सम्मिलित हैं।

संस्मरण का अर्थ एवं परिभाषाएँ 'संस्मरण' शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक 'स्मृ' (याद करना) धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय के योग से बना होता है जिसका तात्पर्य है - 'सम्यक् संस्मरण' यानि अच्छे से स्मरण करना। हम अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रतिदिन कई व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं। संसार का सामान्य व्यक्ति इन पलों को अक्सर भूल जाता है परन्तु ये पल संवेदनशील लेखक के अन्तः पटल पर सदा के लिए अंकित हो जाते हैं। जब इन पलों की याद लेखक की अन्तरात्मा को झकझोरती है, तो वह संस्मरण साहित्य की रचना हेतु प्रवृत्त होता है इस प्रकार यह कह सकते हैं कि स्मृति के आधार पर किसी व्यक्ति अथवा विषय के सम्बन्ध में लिखे गए लेख अथवा ग्रन्थ को संस्मरण कहते हैं।

इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों द्वारा निम्नलिखित परिभाषाएँ दृष्टव्य हैं।

डॉ. चौहान के अनुसार, "संस्मरण लेखक किसी घटना, स्थान या व्यक्ति से सम्बन्धित निजी अनुभूतियों की स्मृति को साकार रूप प्रदान करता है, जो अन्दर ही अन्दर उसके मन को कुरेदती हैं और अभिव्यक्ति के लिए उसके मन व प्राण को उद्वेलित करती हैं।"

डॉ. त्रिगुणायत के अनुसार, "भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ स्मरणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत - शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट बनाकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है, तब वह संस्मरण कहलाता है।" उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि 'संस्मरण' आधुनिक गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। जिसका स्वयं का एक विशेष स्वरूप है।

१३.३ संस्मरण की विशेषताएं एवं तत्व

संस्मरण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं।

१. संस्मरण यथार्थ पर आधारित होता है।

२. संस्मरण लेखक की वैयक्तिक अनुभूतियों पर आधारित होता है।

३. संस्मरण में संवेदना, आत्म - तत्व व अनुभूति का बहुत अच्छा समावेश होता है।

४. संस्मरण में स्मरणकर्ता व स्मरणीय दोनों की समाप्ति की स्थिति होती है।

५. संस्मरण में शैलीगत प्रभावोत्पादक गुण- रोचकता, स्पष्टता, लाघवता तथा अभिव्यंजनात्मकता आवश्यक है।

१३.३.१ संस्मरण के तत्व:

संस्मरण के तत्व संस्मरण के निम्नलिखित तत्व हैं।

१. वर्ण्य विषय:

वर्ण्य विषय संस्मरण का मुख्य तत्व है। इसमें लेखक स्वयं के सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति विशेष के जीवन की विशेष घटनाओं का वर्णन किया करता है। संस्मरण के वर्ण्य - विषय को प्रस्तुत करने में रोचकता, यथार्थता व सुसंगठितता होनी चाहिए। विषय का इस प्रकार से वर्णन करना चाहिए कि नीरस विषय भी रोचक दिखाई दे। लेखक की कोमल अनुभूतियों का कल्पना मिश्रित संस्पर्श वर्ण्य विषय को सरल बनाने में सहायता करता है। संस्मरण में यथार्थ का समावेश आवश्यक है। संस्मरण की स्पष्टता ही उसको सम्प्रेषण बनाती है।

२. पात्र तथा चरित्र चित्रण:

संस्मरण नायक के जीवन के भिन्न - भिन्न पक्षों का कलात्मक चित्रण ही संस्मरणकार का उद्देश्य होता है। संस्मरण में लेखक का अपना व्यक्तित्व भी प्रतिबिम्बित होता है। उसकी अपनी अभिरुचियाँ भी संस्मरण में दिखाई देती हैं। एक आलोचक - संस्मरणकार, संस्मरण - नायक की गतिविधियों पर समीक्षात्मक दृष्टि रखता है। मनोवैज्ञानिक संस्मरण लेखक अपने चरितनायक के व्यक्तित्व की विशेषताओं को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में प्रकट करता है। उसकी इसी में सफलता है कि संस्मरण- नायक के व्यक्तित्व की प्रभावपूर्ण घटना के वर्णन के माध्यम से उसके समग्र व्यक्तित्व की झाँकी दिखाई देने लगे।

३. देशकाल तथा वातावरण:

संस्मरण - नायक के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने हेतु देशकाल का चित्रण भी आवश्यक है। राजनीतिक क्षेत्र के नायक के व्यक्तित्व के मूल्यांकन हेतु राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण आवश्यक है। अगर नायक साहित्यिक है तो लेखक को साहित्य में उसके स्थान का निर्धारण करने हेतु साहित्यिक परिस्थितियों का भी वर्णन करना होगा। देशकाल के सफल चित्रण हेतु स्थानीय बोध का होना भी आवश्यक है।

४. भाषा-शैली:

संस्मरण में शब्द - चयन विषय के अनुरूप होना चाहिए। संस्मरण में सरल व प्रसाद - गुण- सम्पन्न भाषा में सरलता व रोचकता का समावेश करती है। संस्मरणकार का हर एक शब्द वर्ण्य - विषय को पाठक के सामने मूर्तरूप देता है। संस्मरण में भाषा की भाँति ही शैली का

भी उचित महत्व है । संक्षिप्तता, रोचकता, प्रभावोत्पादकता तथा आत्मीयता इत्यादि संस्मरण की शैली की विशेषताएँ हैं।

५. उद्देश्य:

किसी भी विधा के मुख्य तत्वों में उद्देश्य का विशेष स्थान होता है । उद्देश्यहीन रचना निरर्थक होती है। संस्मरणकार संस्मरण लेखन के माध्यम से आत्मतोष तो पाता ही है, इसके साथ ही उसका यह भी उद्देश्य रहता है कि संस्मरण में वर्णित घटनाएँ पाठकों को समय - समय पर प्रेरणा देकर उनके जीवन में नयी स्फूर्ति का संचार करती रहें।

१३.४ संस्मरण का उद्भव एवं विकास यात्रा

संस्मरण और रेखाचित्र में सामान्यतः भेद करना कठिन है। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा भी है- संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित इन तीनों का एक दूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक की सीमा दूसरे से कहाँ मिलती है और कहाँ अलग हो जाती है, इसका निर्णय करना कठिन है। "महादेवी वर्मा ने अपने स्मृतिचित्रों के सम्बन्ध में लिखा है "इन स्मृतिचित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं, उसके बाहर तो वे अनन्त अंधकार के अंश हैं परन्तु मेरा निकटताजनित आत्म-विज्ञापन उस राख से अधिक महत्त्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही अंगारों को घेरे रखती है।" संस्मरण और रेखाचित्रों के इस नैकट्य के कारण ही प्राय: दोनों की चर्चा एक साथ की जाती हैं। हिन्दी में यों तो पं. पद्मसिंह शर्मा के 'पद्मपराग' से सफल संस्मरणों की परम्परा का प्रारम्भ स्वीकार किया जाता है; किन्तु अधिक कलात्मक और सजीव संस्मरण द्विवेदी-युग के बाद ही लिखे गये हैं। इस प्रसंग में श्रीराम शर्मा कृत 'बोलती प्रतिमा' (१९३७ ई.), महादेवी वर्मा कृत 'अतीत के चलचित्र' (१९४१ ई.), 'स्मृति की रेखाएँ' (१९४७ ई.) और 'पथ के साथी' (१९५६ ई.), 'मेरा परिवार' (१९७२ ई.), बनारसीदास चतुर्वेदी कृत 'हमारे आराध्यै', 'संस्मरण' (१९५२ ई.) और 'रेखाचित्र' (१९५२ ई.) रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'माटी की मूरतें (१९४६ ई.), प्रकाशचन्द गुप्त कृत 'मिट्टी के पुतले' तथा 'पुरानी स्मृतियों और नये स्केच' शिवपूजन सहाय कृत 'वे दिन वे लोग' (१९४६ ई.), सेठ गोविन्ददास कृत 'स्मृति कण' (१९५९ ई.), विष्णु प्रभाकर कृत 'जाने अनजाने' (१९६२ ई.), माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'समय के पाँव' (१९६२ ई.), जगदीशचन्द्र माथुर कृत 'दस तसवीरें' (१९६३ ई.), कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' कृत 'भूले हुए चेहरे' आदि कृतियों का उल्लेख किया जा सकता है। इन कृतियों के अतिरिक्त पत्र - पत्रिकाओं में जब - तब अनेक नये लेखक रेखाचित्र लिखते रहते हैं।

संस्मरण विधा में रामवृक्ष बेनीपुरी और प्रकाशचन्द्र गुप्त को अधिक सफलता मिली है। डॉ. नगेन्द्र और विनयमोहन शर्मा के रेखाचित्रों में भी व्यक्तियों के शील वैशिष्ट्य का सफल बिंबाकन हुआ है। महादेवी वर्मा के संस्मरणनुमा रेखाचित्र बेजोड़ हैं। साधारण व्यक्तियों और निर्जीव पदार्थों को रेखांकित करना अपेक्षाकृत कठिन है। नये लेखक भी संस्मरणात्मक शैली में अपने मित्रों, सहधर्मियों और आदरणीयों का व्यक्तित्व अंकित करते हैं, किन्तु ऐसा कम हुआ है। अधिकतर संस्मरण बुजुर्ग लेखकों ने ही लिखे हैं। बिगत वर्षों में प्रकाशित

संस्मरणों में बच्चन निकट से (१९६८ ई.) अजित कुमार और ओंकारनाथ श्रीवास्तव, गाँधी संस्मरण और विचार (१९६८ ई.) काका साहेब कालेलकर, संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ (१९६९ ई.) रामधारी सिंह 'दिनकर', व्यक्तित्व की झाँकियाँ (१९७० ई.) लक्ष्मीनारायण सुधांशु, अंतिम अध्याय (१९७२ ई.) पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, 'स्मृति की त्रिवेणिका' (१९७४ ई.) लक्ष्मी शंकर व्यास, चंद संतरें और (१९७५ ई.) अनीता राकेश, मेरा हमदम मेरा दोस्त (१९७५ ई.) कमलेश्वर, रेखाएँ और संस्मरण (१९७५ ई.) क्षेमचन्द्र सुमन, मैंने स्मृति के दीप जलाये (१९७६ ई.) रामनाथ सुमन, बीती यादें (१९७६ ई.) परिपूर्णानन्द, स्मरण को पाथेय बनने दो (१९७८ ई.) विष्णुकान्त शास्त्री, कुछ ख्वाबों में कुछ ख्यालों में (१९७८ ई.) शंकर दयाल सिंह, अतीत के गर्त से (१९७९ ई.) भगवतीचरण वर्मा, श्रद्धांजलि संस्मरण (१९७९ ई.) मैथिलीशरण गुप्त, पुनः (१९७९ ई.) सुलोचना रांगेय राघव, यादों के झरोखे (१९८० ई.) कुँवर सुरेश सिंह, यादों की तीर्थयात्रा (१९८१ ई.) विष्णु प्रभाकर, औरों के बहाने (१९८१ ई.) राजेन्द्र यादव, जिनके साथ जिया (१९८१ ई.) अमृतलाल नागर, सृजन का सुख-दुख (१९८१ ई.) प्रतिभा अग्रवाल, हंस बलाका (१९८२ ई.), आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री युगपुरुष (१९८३ ई.) रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', दीवान खाना (१९८४ ई.) पद्मा सचदेव, स्मृति लेखा (१९८६ ई.) 'अज्ञेय', हजारीप्रसाद द्विवेदी, कुछ संस्मरण (१९८८ ई.) कमल किशोर गोयनका, भारतभूषण अग्रवाल : कुछ यादें - कुछ चर्चाएँ (१९८९ ई.) बिन्दु अग्रवाल आदि उल्लेखनीय हैं।

श्री क्षेमचन्द्र सुमन स्वयं में हिन्दी साहित्यकारों के विश्वकोश है। रेखाएँ और संस्मरण में आपने ३१ दिवंगत आचार्यो, साहित्यकारों तथा पत्रकारों एवं नेताओं के व्यक्तित्व का अंकन किया है। रामनाथ सुमन अच्छे संस्मरण लेखक हैं। मैंने स्मृति के दीप जलाये में उन्होंने चौदह साहित्यकारों- पुरुषोत्तमदास टण्डन, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, हनुमानप्रसाद पोद्दार, शिवपूजन सहाय, कृष्णदेवप्रसाद गौड़, सेठ गोविन्ददास, पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, जनार्दनप्रसाद झा 'दिन', विनोदशंकर व्यास, भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', गोपाल सिंह नेपाली के संस्मरण लिखे हैं। श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, बेचनशर्मा 'उग्र' और विनोदशंकर व्यास के संस्मरण अधिक मार्मिक हैं। मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिन्दी साहित्य के जीवित इतिहास थे। वे राजनेताओं और साहित्यकारों के बीच सेतु का कार्य करते थे। उनके संस्मरणों का ऐतिहासिक महत्व है। सुलोचना रांगेय राघव स्व. रांगेव राघव की पत्नी हैं। राजेन्द्र यादव प्रसिद्ध कथाकार हैं। 'औरों के बहाने' उनके द्वारा लिखित संस्मरणों का संग्रह है। इसमें रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी, अमरकान्त, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', ओमप्रकाश, प्रेमचन्द काफ्का और चेखव के रचनात्मक व्यक्तित्व का संस्मरणात्मक आंकलन किया गया है।

पद्मा सचदेव डोगरी प्रख्यात कवयित्री है। उन्होंने हिन्दी में भी बहुत कुछ लिखा है दीवानखाना उनके संस्मरणों का संग्रह है। इसमें अमृतलाल नागर, पं. रविशंकर, हरिवंशराय बच्चन, राजेन्द्र सिंह बेदी, उस्ताद अल्लारखा खां, सितारा देवी, इस्मत चुगताई, रामधारी सिंह 'दिनकर', लता मंगेशकर, अमृता प्रीतम, श्री सराफ (डोगरी पत्रकारिता के जनक), पंडित शिवकुमार शर्मा, रेश्म (गायिका) और शेरे कश्मीर शेख अब्दुल्ला के संस्मरण संगृहीत हैं। लेखिका ने चूँकि बहुत से बुजुर्गों के सम्बन्ध में भी लिखा है, इसलिए इस संस्मरण में

साक्षात्कार के तत्व भी हैं । इसमें साहित्यकारों के अतिरिक्त पत्रकार, राजनेता और संगीतकारों को भी याद किया गया है।

स्मृति लेखा स्मृति शेष श्री 'अज्ञेय' के संस्मरणों का संग्रह है । इसमें सरोजिनीनायडू, मैथिलीशरण गुप्त, रायकृष्णदास, प्रेमचन्द, 'निराला', 'पन्त', 'होमवती देवी', माखनलाल चतुर्वेदी, 'रेणु', 'दिनकर', हजारीप्रसाद द्विवेदी, और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से सम्बन्धित संस्मरण संगृहीत हैं । इन संस्मरणों में 'अज्ञेय' जी ने जिन रचनाकारों का चयन किया है, उनसे वे कहीं बहुत गहरे प्रभावित रहे हैं। स्वयं 'अज्ञेय' के व्यक्तित्व को पूर्णता और समग्रता देने में इनका भी योगदान रहा है । पं. विद्यानिवास मिश्र जी के शब्दों में- "स्मृति - लेख ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है, पर स्मृति का विशिष्ट सर्जनात्मक उपयोग है, समकालीन साहित्य के इतिहास को एक नया चौखटा इस लेखा से मिलता है और इस दृष्टि से यह इतिहास रचना को एक नया आयाम देगा यह इसकी एक गौण उपलब्धि है। इसकी मुख्य उपलब्धि तो यह है कि लेखक, लेखक को कैसे देखता है - बस इस देखने को आप देखते रहें : आपकी आँखे नम हो जायेंगी । "श्री कमलकिशोर गोयंका अत्यन्त श्रमशील और जिज्ञासु प्रवृति के लेखक है। आपने 'प्रेमचन्द विश्वकोश' प्रस्तुत करके ख्याति पायी है। ‘हजारीप्रसाद द्विवेदी : कुछ संस्मरण’ में आपने ३६ लेखकों द्वारा लिखित आचार्य द्विवेदी सम्बन्धी संस्मरणों का संग्रह किया है। लेखकों में द्विवेदीजी के परिवार के लोग , उनके शिष्य और हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वान् सभी तरह के लोग हैं। इसलिए इसमें द्विवेदीजी के व्यक्तित्व के अनेक आयाम उभर कर सामने आये हैं । बिन्दु अग्रवाल, स्व. भारतभूषण अग्रवाल की पत्नी हैं। आपने अग्रवालजी के दिवंगत होने के बाद भारतभूषण अग्रवाल : कुछ यादें कुछ चर्चाएँ नाम से उनसे सम्बन्धित सभी तरह की सामग्री एकत्र कर दी है। पुस्तक के प्रथम खण्ड में 'संस्मरण और साक्षात्कार' है। इनमें भारतभूषण अग्रवाल के अन्तरंग जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने वाले कुछ संस्मरण भी है। इस दृष्टि से संग्रह का विशेष महत्त्व है। हम हशमत एक लम्बी जीवन - चित्र - कथा है, जिसमें व्यक्तियों और स्थितियों को अत्यन्त जीवन्त शैली से मूर्त किया गया है। इसमें निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, कृष्ण बलदेव वैद, गोविन्द मिश्र, मनोहर श्याम जोशी, महेन्द्र भल्ला, नागार्जुन आदि प्रसिद्ध लेखक, पत्रकार और बुद्धिजीवी तो हैं ही, 'राजकमल प्रकाशन' की प्रख्यात पुस्तक प्रकाशिका शीला संधू, टैक्सी ड्राइवर, नानवाई और वेटर भी है। पुस्तक के फ्लैप पर ठीक ही कहा गया है- " हम हशमत' बोलते शब्द - चित्रों की एक घूमती हुई रील है। एक विस्तृत जीवन - फलक जैसे घूमता है और सामने चित्र उभरते हैं - साफ और जीवन्त चित्र, एक के बाद एक।"

'हशमत' और कोई नहीं प्रसिद्ध कथा लेखिका कृष्णा सोबती हैं। अपने प्रत्येक शब्द - चित्र में आप स्वयं भी अपने शोख और तीखे अन्दाज में उपस्थित हैं। आदमी से आदमी तक में भीमसेन त्यागी ने दिल्ली के निकट खुली जिन्दगी व्यतीत करने वाले राजस्थानी गाड़िया लोहारों के जीवन का रेखांकन किया है। लेखक ने इसे शब्द - चित्र कहा है। हरिपाल ने प्रत्येक शब्द - चित्र को रेखा - चित्र में प्रस्तुत करके लेखक के मन्तव्य को पूर्ण कर दिया है।

पिछले कुछ वर्षों के भीतर संस्मरण लेखन की प्रवृत्ति बढ़ी है। चर्चित संस्मरणों में - सृजन के सेतु (१९९० ई.) विष्णु प्रभाकर, याद हो कि न याद हो (१९९२ ई.) काशीनाथ सिंह, निकट मन में (१९९२ ई.) अजित कुमार (१९३१-२०१७), जिनकी याद हमेशा रहेगी (१९९२ ई.) अमृत राय, सुधियाँ उस चन्दन के वन की (१९९२ ई.) श्री विष्णुकांत शास्त्री,

लाहौर से लखनऊ तक (१९९४ ई.) प्रकाशवती पाल, सप्तपर्णी (१९९४ ई.) गिरिराज किशोर, लौट आ ओ धार (१९९५ ई.) दूधनाथ सिंह, स्मृतियों के छंद (१९९५ ई.) और अपने - अपने रास्ते (२००१ ई.) रामदरश मिश्र, अतीतजीवी (१९९५ ई.) प्रफुल्लचन्द्र ओझा, सृजन के सहयात्री (१९९६ ई.) रवीन्द्र कालिया, अभिन्न (१९९६ ई.) विष्णुचन्द्र शर्मा, यादें और बातें (१९९८ ई.) विन्दु अग्रवाल, हम हशमत, (भाग - दो) कृष्णा सोबती, अमराई (१९९९ ई.) पद्मा सचदेव, वे देवता नहीं है (२००० ई.) राजेन्द्र यादव, याद आते हैं (२००० ई.) रमानाथ अवस्थी, नेपथ्य नायक लक्ष्मीचन्द्र जैन (२००० ई .) सं . मोहनकिशोर दीवान, यादों के काफिले (२००० ई.) देवेन्द्र सत्यार्थी , स्मरामि (२००० ई.) नरेन्द्र कोहली, अंतरंग संस्मरणों में प्रसाद (२००१ ई.) सं . पुरुषोत्तमदास मोदी , एक नाव के यात्री (२००१ ई.) विश्वनाथप्रसाद तिवारी, प्रदक्षिणा अपने समय की (२००१ ई.) नरेश मेहता, चिड़िया रैन बसेरा (२००२ ई.) विद्यानिवास मिश्र, लखनऊ मेरा लखनऊ (२००२ ई.) मनोहर श्याम जोशी, लौटकर आना नहीं होगा (२००२ ई.) कान्ति कुमार जैन, नेह के नाते अनेक (२००२ ई.) कृष्णबिहारी मिश्र, स्मृतियों का शुक्ल पक्ष (२००२ ई.) डॉ. रामकमल राय, साहित्य के स्वप्न पुरुष (२००२ ई.) विष्णु प्रभाकर, रघुवीर सहाय रचनाओं के बहाने एक संस्मरण (२००३ ई.) मनोहरश्याम जोशी, आँगन के वन्दनवार (२००३ ई.) और मेरे सुहृदय श्रद्धेय (२००५ ई.) डॉ. विवेकी राय, ये जो आइना है (२००६ ई.) मधुरेश, काशी का अस्सी (२००२ ई.), आछे दिन पाछे भये (२००४ ई.) डॉ. काशीनाथ सिंह , लाई हयात आए (२००४ ई.) डॉ. लक्ष्मीधर मालवीय, तुम्हारा परसाई (२००४ ई.), जो कहूँगा सच कहूँगा (२००६ ई.), अब तो बात फैल गई (२००७ ई.), और बैकुण्ठपुर में बचपन (२०१० ई.) डॉ. कान्तिकुमार जैन, पर साथ - साथ चल रही याद (२००४-१०) श्री विष्णुकान्त शास्त्री, नंगा तलाई का गाँव (२००४ ई.) डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, सुमिरन के बहाने (२००५ ई.) केशवचन्द वर्मा, घर का जोगी जोगड़ा (२००६ ई.) डॉ . काशीनाथ सिंह, एक दुनिया अपनी (२००७ ई.) डॉ. रामदरश मिश्र, कुछ यादें कुछ बातें (२००८ ई.) अमरकान्त, दिल्ली शहर दर शहर (२००९ ई.) डॉ. निर्मला जैन, कालातीत (२००९ ई.) मुद्रा राक्षस, कितनी शहरों में कितनी बार (२०१० ई.) ममता कालिया, हाशिये की इबारतें (२००९ ई.), मेरे भोजपत्र (२००९ ई.) चन्द्रकान्ता, कविवर बच्चन के साथ (२००९ ई.) एवं जिनके संग जिया (२०१५ ई.) अजीत कुमार, अमृत लाल नागर की बाबूजी बेटाजी एण्ड कम्पनी (२००९ ई.) अचला नागर, जे एन यू में नामवर सिंह (२०१० ई.) सम्पादक डॉ. सुमन केशरी, अंधेरे में जुगनू (२०१० ई.) अजीत कुमार, यादों के गलियारे (२०१० ई.) नासिरा शर्मा, कल परसों के बरसों (२०११ ई.) ममता कालिया, स्मृति में रहेंगे वे (२०११ ई.) शेखर जोशी, टिगरिया का लोकदेवता भवानी प्रसाद मिश्र (२०११ ई.) डॉ. प्रेमशंकर रघुवंशी, अतीत राग (२०११ ई.) नन्द चतुर्वेदी (१९२३-२०१४ ई.), मेरे हिस्से का शहर (२०११ ई.) सुधीर विद्यार्थी, दिल्ली हमेशा दूर (२०११ ई.) अजीत कुमार, स्मृतियों के गलियारे से (२०१२ ई.) नरेन्द्र कोहली, गंगा स्नान करने चलोगे (२०१२ ई.) डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, माफ करना यार (२०१२ ई.) बलराम, अपने - अपने अज्ञेय, दो खण्ड (२०१२ ई.) सम्पादक ओम थानवी, यादों का सफर (२०१२ ई.) प्रकाश मनु, हम हशमत भाग -३ (२०१२ ई.) कृष्णा सोबती, नेह के नाते (२०१२ ई.) डॉ. कमलाप्रसाद , लता मंगेशकर ऐसा कहा से लाऊँ (२०१२ ई.) पद्मा सचदेव, ज्ञानरंजन के बहाने (२०१२ ई.) नीलाभ, दरख्तों के साये (२०१३ ई.) मधुकर गंगाधर, जहाँ से उजास (२०१३ ई.) राजी सेठ, कृति और कृतिकार (२०१३ ई.) मृदुला गर्ग, एक पेड़ की याद

(२०१३ ई.) शेखर जोशी, कथाशिल्पी कमलेश्वर (२०१३ ई.) सं. महावीर अग्रवाल, फिर मुझे रहगुजर याद आया (२०१३ ई.) शैलेन्द्र सागर धीमी - धीमी आँच (२०१३ ई.) बलराम, ई इलाहाबाद है भइया (२०१३ ई.) विमलचन्द पाण्डेय स्मृतियों का साक्ष्य (२०१४ ई.) हृदयेश, महागुरु मुक्तिबोध : जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर (२०१४ ई.) कान्तिकुमार जैन, बोरुंदा डायरी (२०१५ ई.) मालचन्द तिवाड़ी, गुरुजी की खेती - बाड़ी (२०१५ ई.) डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, मेरे हमकलम (२०१५ ई.) रवीन्द्र कालिया, एक था राजा (२०१५ ई.) डॉ. कान्तिकुमार जैन, यादें - यादे... और यादें (२०१६ ई.) पुष्पा भारती, मैं और वे (२०१५ ई.) मधुरेश , आवा हयामि (२०१६ ई.) रमेश चन्द्र शाह, बारह दरी (२०१६) पद्मा सचदेव, वो सफर था कि मुकाम था : मेरी नजर में राजेन्द्र यादव (२०१६ ई.) मैत्रेयी पुष्पा, पकी जेठ का गुलमोहर (२०१६ ई.) भगवानदास मोरवाल, मेरी साहित्य यात्रा (२०१६ ई.) भीष्म साहनी, वो सूरतें (२०१७ ई.) संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ (२०१७ ई.) पंकज विष्ट, रंजिश ही सही (२०१७ ई.) डॉ. अजीत कुमार, गुरुवर बच्चन से दूर (२०१७ ई.) अजीत कुमार, शब्दों के लोग : कुमार पंकज, शेक्सपियर वाया प्रो. स्वामीनाथन (२०१७ ई.) डॉ. कान्ति कुमार जैन, लौट जाती है उधर को भी नजर (२०१७ ई.) डॉ. कान्ति कुमार जैन, सबको अमर देखना चाहता हूँ (२०१७ ई.) दूधनाथ सिंह, कथा से इतर (२०१७ ई.) असगर वजाहत, मूरतें माटी और सोने की (२०१७ ई.) नंदकिशोर नवल आदि।

श्री विष्णु प्रभाकर प्रख्यात कथाकार और जीवनी लेखक हैं। 'सृजन के सेतु' में आपने कुल पन्द्रह लेखकों को याद किया है। लेखक नई पीढ़ी के भी हैं और पुरानी पीढ़ी के भी इन्द्र विद्या वाचस्पति और वियोगी हरि जैसे पत्रकार और समाज सुधारक भी यहाँ आदर पूर्वक याद किए गए हैं। शेष संस्मृत रचनाकार है- अमृतलाल नागर, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' , रामवृक्ष बेनीपुरी, 'अज्ञेय', रावी, सर्वेश्वर, सुदर्शन, सोमदत्त, शांतिप्रिय द्विवेदी, ऋषभ चरण जैन, वृन्दावनलाल वर्मा और रामनारायण उपाध्याय विष्णुजी ने अपने स्वभाव के अनुसार सभी संस्मृत साहित्यकारों के प्रदेय को स्वीकारा है और सभी को यथोचित मान देते हुए याद किया है। याद हो कि न याद हो काशीनाथ सिंह की एक बहुचर्चित संस्मरण पुस्तक है। इसमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, त्रिलोचन, नामवर सिंह, राजेन्द्रयादव, धूमिल, कमलेश्वर, रवीन्द्र कालिया और विजय मोहन जैसे रचनाकारों एवं लेखकों के व्यक्ति चित्र तो हैं ही, बनारस के अस्सी चौराहे को व्यक्तित्व प्रदान कर दिया गया है। 'जिनकी याद हमेशा रहेगी' प्रसिद्ध समीक्षक और कथाकार अमृतराय के संस्मरणों का संग्रह है । इसमें कथाकार अमृतलाल नागर, कहानीकार कृष्णचंदर, जैनेन्द्र, प्रेमचन्द, 'निराला', फादर कामिल बुल्के, महादेवी वर्मा, रांगेयराघव, राहुल सांकृत्यायन और सुमित्रानन्दन पंत जैसे जाने माने हिन्दी साहित्यकारों के साथ बँगला कहानीकार राधाकृष्ण उर्फ लाल बाबू, बँगला कवि सुभाष मुखोपाध्याय, उर्दू शायर सुहैल अजीमाबादी, प्रसिद्ध चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन और प्रख्यात फिल्म निर्माता सत्यजीत राय को याद किया गया है। इस संस्मरण - संग्रह की दो विशेषताएँ हैं। एक तो यह कि इसका स्मृति संसार विस्तृत है। दूसरी यह कि इसमें अमृत का समीक्षक व्यक्तित्व की निरन्तर सक्रिय रहा है । 'लाहौर से लखनऊ तक'- श्रीमती प्रकाशवती पाल द्वारा लिखित प्रख्यात कथाकार यशपाल के जीवन संघर्ष का संस्मरणात्मक दस्तावेज है। अप्रैल १९३० में प्रकाशवतीजी की सगाई यशपाल से हुई थी। तब से लेकर २६ दिसम्बर १९७६ को यशपाल के देहावसान तक दुःख - सुख के प्रत्येक

क्षण में वे उनके साथ रही हैं । इसलिए यशपाल के अंतरंग जीवन का साक्षात्कार करने के लिए इससे अधिक विश्वसनीय माध्यम दूसरा नहीं हो सकता । विप्लव कार्यालय को यशपालजी ने अपने खून - पसीने से सींचकर एक अन्तरराष्ट्रीय सांस्कृतिक संस्थान का रूप दिया था, उस पर गत कई वर्षों से किन्ही सहदेव सिंह एडवोकेट का गैर कानूनी कब्जा है और प्रकाशवतीजी न्याय के लिए गुहार करती फिर रही हैं । इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि आजादी के लिए अपना सब कुछ निछावर कर देने वाले शिखर साहित्यकारों की स्मृतियों के लिए भी कोई स्थान नहीं है । 'सप्तपर्णी' सुप्रसिद्ध कथाकार गिरिराज किशोर की कई गद्य - विधाओं का संग्रह है । लौट आओ धार कवि कथाकार दूधनाथ सिंह के घर से चुपचाप निकलकर इलाहाबाद आने , असहाय भटकने , बीमार होने और मृत्यु के मुख से निकलने से लेकर विश्वविद्यालय के अध्यापक और प्रतिष्ठित रचनाकार होने तक की संस्मरणात्मक संघर्ष गाथा है। इस प्रकार द्विवेदी युग के बाद संस्मरण विधा में लेखन का कार्य विस्तार पूर्वक हुआ है । अधिकतर रचनाकारों के अपने जीवन की जुडी तमाम घटनाओं तथा प्रभावी व्यक्तियों के व्यक्तिव का विश्लेषण उन्होंने इस विधा के माध्यम से किया है।

१३.५ सारांश

निष्कर्षतः स्मृति के आधार पर किसी विषय पर अथवा किसी व्यक्ति पर लिखित आलेख संस्मरण कहलाता है। इसमें कथा का प्रमुख पात्र स्वयं लेखक होता है। संस्मरण लेखक का दृष्टिकोण भिन्न रहता है। संस्मरण में लेखक जो कुछ स्वयं देखता है और स्वयं अनुभव करता है उसी का चित्रण करता है। लेखक की स्वयं की अनुभूतियाँ तथा संवेदनायें संस्मरण में अन्तर्निहित रहती हैं । इस वह अपने चारों ओर के जीवन का वर्णन करता है। इतिहासकार के समान वह केवल यथातथ्य विवरण प्रस्तुत नहीं करता है। अतः जीवन में जिन चरित्रों या घटना का प्रभाव लेखक के जीवन पर पड़ता है उसे लेखक यथार्थ रूप से चित्रित करता है। जिसे संस्मरण कहा जाता है। इस विधा के माध्यम से लेखन अपने आस पास के वातावरण तथा सकारत्मक प्रभावी जीवन के चरित्र को उजाकर करने का प्रयास करता है। और समाज के असामाजिक तत्वों को उजागर करता है।

१३.६ दिर्घोत्तरी प्रश्न

१. संस्मरण विधा के उद्भव और विकास को विस्तार पूर्वक लिखिए।

२. संस्मरण विधा के विशेषता एवं तत्वों को स्पष्ट कीजिये।

१३.७ वैकल्पिक प्रश्न

१) 'याद हो की न याद हो' यह संस्मरण किसके द्वारा लिखा गया है।

१. भारतेन्दु

२. दूधनाथ

३. कशी नाथ

४. अज्ञेय

२) सृजन के सेतु में कुल कितने संस्मरण संग्रहीत है ?

१. १५

२. १०

३. १२

४. १४

३) 'लौट आओ धार' किसकी रचना है।

१. भारतेन्दु

२. दूधनाथ

३. कशी नाथ

४. अज्ञेय

४) 'हम हशमत' कुल कितने खण्डों में विभाजित है ?

१. २

२. ३

३. ४

४. ५

५) 'लाहौर से लखनऊ तक' यह संस्मरण किसके जीवन पर आधारित है।

१. यशपाल

२. कमलेश्वर

३. काशीनाथ

४. दूधनाथ

१३.८ संदर्भ ग्रंथ

- हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य का इतिहास – संपादित डॉ. नगेन्द्र
- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ बच्चन सिंह
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – गणपतिचन्द्र गुप्त
- हिंदी साहित्य का संवेदनात्मक इतिहास – रामस्वरूप चतुर्वेदी

- हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास- डॉ बच्चन सिंह
- हिंदी साहित्य का गद्य इतिहास – रामचंद्र तिवारी
- हिंदी साहित्य का सरल इतिहास – विश्वनाथ त्रिपाठी
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तिया – डॉ जयकिशन खंडेलवाल
- हिंदी साहित्य का अतीत – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

*****

नमुना प्रश्न पत्र

Semester - VI | Course - IV

समय: 3:00 घंटे | पूर्णांक : 100

सूचना: 1. सभी प्रश्न अनिवार्य है।

2. सभी प्रश्नों के लिए समान अंक है।

प्रश्न 1. आधुनिक काल की युगीन परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए। 20

अथवा

भारतेन्दु युग की प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय दीजिए।

प्रश्न 2. प्रगतिवादी कविता की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। 20

अथवा

नई कविता की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3. हिंदी उपन्यास के विकास - क्रम को स्पष्ट कीजिए। 20

अथवा

हिंदी आलोचना के विकास - क्रम को विस्तार से समझाइए।

प्रश्न 4. हिंदी जीवनी साहित्य के विकास क्रम पर प्रकाश डालिए। 20

अथवा

हिंदी आत्मकथा साहित्य के विकास क्रम का विवेचन कीजिए।

प्रश्न 5. क) किन्हीं दो विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए। 10

1. द्विवेदी युगीन कविता

2. छायावादी काव्य

3. समकालीन कविता

4. हिंदी उपन्यास

ख) वस्तुनिष्ठ प्रश्न- 05

1. भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण काल की संज्ञा किसने दी है।

2. 'पुष्प की अभिलाषा कविता के कवि कौन है?

3. 'क्रांति की भावना' किस कविता की एक प्रमुख विशेषता है?

4. 'स्वर्ग की झलक' नाटक के रचनाकार कौन हैं?

5. 'अर्धनारीश्वर निबंध संग्रह के लेखक कौन हैं?

ग) विकल्प प्रश्न- 05

1. आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवर्तक किसे माना जाता है?

i) प्रतापनारायण मिश्र ii) भारतेन्दु

iii) प्रेमपन iv) बालकृष्ण भट्ट

2. सरोज स्मृति किसकी रचना है?

i) प्रसाद ii) निराला

iii) सुमित्रानंदन पंत iv) महादेवी वर्मा

3. इनमें से प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषता क्या है?

i) व्यक्तिवाद ii) शोषकों प्रति घृणा

iii) सौंदर्य भावना iv) रहस्यवाद

4. प्रयोगवादी कविता कि निम्नलिखित कौन-सी प्रमुख विशेषता है?

i) लघु मानव ii) शिल्प की नवीनता

iii) नगर बोध iv) ग्राम बोध

5. इनमें से भीष्म साहनी की कहानी कौन सी है?

i) चीफ की दावत ii) प्रतीक्षा

iii) मवाली iv) नीली झील

*****